संगीत प्रिय श्याम

श्रीहरिः

श्रीमद्भागवत-दर्शन—

भागवती-कथा

(तैंतालीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

—:०:—

प्रकाशक

सङ्कीर्तन-भवन

प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

—:※:—

द्वितीय संस्करण
१००० प्रति

वैशाख—२०२३ विक्र०

मू० १-२५ पै०

भागवती कथा खण्ड ४२

की विषयसूची

रासलीला और धर्म-मर्यादा

(भूमिका)

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० २७, २८ श्लो०)

छप्पय

कामी, जड़मति, अज्ञ, धर्मद्वेषी, व्यभिचारी ।
ढोंगिनि रचि रचि रास धरम मरियाद बिगारी ॥
बनें कलियुगी कृष्ण कामिनिनि चित्त चुरावें ।
पाप करम छिपि करें रूप अगनितन बनावें ॥
कृष्ण बनें दुष्कृत करें, नरकहु निरखि लजात है ।
कहें—'शैल धारन करो' तब नानी मर जात है ॥

---

*महाराज परीक्षित् श्रीशुकदेवजी से कह रहे हैं—"भगवन् ! जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तो धर्म की संस्थापना और अधर्म के प्रशमनार्थ अपने अंशों सहित अवनिपर अवतरित हुए थे। फिर उन्होंने धर्मर्यादा के वक्ता धर्मर्यादाके रचयिता और धर्मर्यादा के रक्षक होकर भी परस्त्रीगमन जैसा धर्मविरुद्ध आचरण क्यों किया ?"

भगवान् की रासलीला साधारणतया धर्म मर्यादा के विपरीत-सी प्रतीत होती है। बड़े लोग जिस काम को करते हैं, जिसे वे प्रमाण मान लेते हैं, अन्य लोग भी उसका अनुवर्तन करते हैं। रासलीला का प्रसंग सुनते-सुनते राजा परीक्षित् को शंका हुई, कि यदि सब लोग भगवान् की रासलीला को प्रमाण मानकर उसका अनुकरण करने लगें, तब तो धर्म की कोई मर्यादा रहेगी ही नहीं, सर्वत्र कदाचार व्यभिचार फैल जायगा। पातिव्रत, तथा एकपत्नीव्रत ये धर्म की बातें तो नष्ट ही हो जायँगी, इसलिये उन्होंने एक शंका तो रास के आरम्भ में की और उसे ही प्रकारान्तर से रास के अन्त में दुहराया।

परम भगवद्भक्त महाराज परीक्षित् को तो शंका होनी ही क्या थी, उन्होंने जन साधारण का प्रतिनिधित्व करते हुए शंका की। उसका भगवान् शुकने किस प्रकार समाधान किया इस तो "भागवती कथा" के पाठक कथा के अगले अध्यायों में पढ़ेंगे ही, उसे यहाँ भूमिका में दुहराने की आवश्यकता नहीं। हमें तो यहाँ महाराज परीक्षित् की शङ्का पर विचार करना है। उनके कथन का सार यह है कि भगवान् चाहे पाप पुण्य से रहित हों, किन्तु फिर भी वे जब अवनि पर अवतीर्ण होते हैं; तो धर्म संस्थापनार्थ होते हैं। वे अपनी वाणी से धर्म को ही कहते हैं, धर्म के ही कार्य करते हैं, और धर्म मर्यादा की रक्षा करते हैं। ऐसे होते हुए भी भगवान् ने यह अधर्म का कार्य क्यों किया? अधर्म कार्यों में भी तारतम्य होता है, किन्तु चोरी और पर स्त्री-गमन ये तो बहुत बड़े पाप हैं। भगवान् ने पर स्त्रियों के साथ ऐसी रसीली क्रीड़ायें क्यों की? दूसरे लोगों को इससे अवसर मिल जायगा, वे भी रासका अनुकरण करेंगे।

महाराज परीक्षित् की शङ्का निर्मूल नहीं थी। उसका परिणाम आज प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है। धूर्त, ढोंगी, व्यभिचारी लोग

कुछ महिलाओंको फँसाकर उनके कानमें कह देते हैं—'तुम गो हो मैं कृष्ण हूँ।' इसका परिणाम वही होता है जो होना चाहि व्यभिचार बढ़ता है, घरमें कलह होती हैं तथा भ्रूण हत्या बड़े-बड़े पाप होते हैं। जो स्वार्थी हैं वे दोषको तो देखते न कि हमारे इस कार्यका परिमाण क्या होगा, ये तो अप तनिक-सी स्वार्थसिद्धिके लिये जघन्यसे जघन्य पाप क डालते हैं।

एक यवन राजा था। उसने सैकड़ोंस्त्रियों को अपने अन्त पुरमें रख रखा था। अपनेको कृष्ण कहता था और उनके साथ सब प्रकारकी घृणित क्रीड़ायें करता था। भारतके प्रत्येक प्रान्त में ऐसी घटनायें सुननेमें आती हैं, कि अमुक व्यक्तिके पास बहुत-सी स्त्रियाँ जाती हैं और वह उनके साथ रासका अनुकरण करता है। अभी थोड़े ही दिन पूर्व गुजरातमें ऐसा ही एक कलियुगी कृष्ण पैदा हुआ। उसने कितनी कन्याओंको दूषित किया, अन्त में वह पकड़ागया, जेल गया, क्या क्या हुआ। अपनी जानकारीमें मैंने भी ऐसे ढोंगी मिथ्या कृष्ण बने ठगोंको देखाहै, किन्तु हम उनका कुछ कर नहीं सकते। यह काम तो राजाका है, कि ऐसे धर्मद्वेषी धूर्तोंको दण्ड दे। किन्तु हमारे धर्म निरपेक्ष शासकों के विधानसे बलात्कार तो दोष है, किन्तु परदाराभिगमन कोई पाप ही नहीं। इसलिये उनसे तो आशा ही नहीं। सदासे यह कार्य समाजका रहा है, जिस समाजके नियम-बन्धन जितने ही कड़े होंगे, वह समाज दुराचारसे उतना ही बचा रहेगा। आज हमारे सामाजिक बन्धन अत्यन्त शिथिल हो गये हैं लोग मनमानी करने लगे हैं। साधुका वेष कितना पवित्र समझा जाता था, साधुपर समाजका कितना विश्वास था। था ही नहीं अब तक है, किन्तु कुछ स्वार्थी धूर्तोंने मिथ्या वेष बनाकर इस पवित्र वेषको कलंकित कर दिया। समाजने साधुओंको

साधुतापर कभी शङ्का नहीं की। उनकी पवित्रतापर विश्वास किया। कोई ऊँच नीच काम बन भी गया, तो उसे समाजने क्षमा कर दिया। आज भी भारतवर्षमें साधुवेषका जितना आदर है उतना किसीका नहीं। साधुको देखकर प्रायः सभीग मस्तक स्वाभाविक झुक जायगा। एक सज्जन मुझे बताते थे, कि किसी सड़कसे एक बड़ा भारी शासक जा रहा था। सब लोगोंने खड़े होकर उसका अभिवादन किया, उसके पीछे ही एक वृद्ध दण्डी महात्मा आ रहे थे। वे विशेष पढ़े लिखे भी नहीं थे, फिर भी सब लोगोंने उठकर उनके चरण छुए। तब उस शासक ने कहा—"यथार्थ शासक तो ये साधुही हैं। हिन्दुओं के हृदयमें इनका आदर है। हमें तो ये भयवश अनिच्छा पूर्वक एक हाथसे प्रणाम करते हैं। इन साधुओंका हृदयसे आदर करते हैं।,,

वास्तविक बात ऐसी ही है। वंशपरम्परासे हमारी ऐसी धारणा हो गयी है, कि साधुसे कभी किसीका अकल्याण न काहो। "साधुतें होहि न कारज हानी" इसलिये साधु गृहस्थियोंके घरोंमें निर्भय होकर घुस जाते हैं, उनसे कोई परदा-नहीं कोई संकोच नहीं। हमारी बहिन बेटी तथा घरकी अन्य स्त्रियाँ उनसे चाहें जैसी बात करें हमारे मनमें कभी शङ्का उठती ही नहीं। औषधि बेचनेवाले जब अपनी औषधिके विज्ञापनमें किसी महात्माका उल्लेख कर देते हैं। तो सर्वसाधारण उसका अधिक विश्वास करते हैं। किसी औषधिके विज्ञापनमें कोई लिखते हैं "महात्माप्रदत्त श्वेतकुष्टकी दवा" लोग मुझसे पूछते हैं—"क्या महाराज श्वेतकुष्टकी दवा आपकी है?" वे प्रदत्तके स्थानमें प्रभुदत्त समझते हैं। बहुत-सी औषधि बेचने वाली स्त्रियाँ विज्ञापन करती हैं—"ऐसे-ऐसे उदास बैठी थी उसी समय एक महात्मा भिक्षा लेने मेरे घर आये। मुझे उदास देखकर उन्होंने

पूछा—"बेटी ! उदास क्यों है ?" तब मैंने बताया—"मुझे प्र
रोग है।" तुरन्त उन्होंने मुझे एक औषधि बतायी,मैंने उसे
तीन दिनमें मेरा प्रदर चला गया।" कोई कहती है—"मेरे स
नहीं होती थी, एक महात्माने जड़ी दी। उससे मेरे तीन
हैं। वह औषधि लागत दाम पर हमारे यहाँ मिलती है।'
प्रकार पुरुष औषधि बेचने वाले लिखते हैं—'मुझे धातुक्षीणक
रोग था। एक दिन अमुक पहाड़ पर मुझे महात्मा मिले, उन्होंने
अमुक औषधि बतायी, उससे मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया।' कोई
अपने सुरमेका नाम रखते हैं "फकीरी सुरमा" इनमें बहुत-से
कुछ सत्य भी लिखते होंगे बहुत-से झूठ भी, किन्तु मेरे कहने
का सारांश इतना ही है, कि साधुके प्रति अब भी लोगों की श्रद्धा
है, किन्तु अब वह शनैः शनैः घटती जा रही है। अधिकांश
व्यवसायी धूर्त, स्वार्थी, कपटी लोग साधुवेष बनाकर लोगों को
ठगते हैं और इस पवित्र वेषको कलंकित करते हैं।

पहिले वर्णाश्रम धर्मकी एक निश्चित मर्यादा थी। ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण थे। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ
और सन्यास ये चार आश्रम थे। ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ,
वानप्रस्थ और सन्यास-चारों आश्रमों में जाने का अधिकार था।
क्षत्रियके लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीन ही आश्रमों का
विधान था। क्षत्रियके लिये सन्यासका विधान नहीं। वर्णाश्रम
धर्मके अनुसार क्षत्रिय अपने धर्मका विधिवत् अनुष्ठान करे तो
वह दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होकर सन्यास ग्रहण करेगा और
अन्तमें मुक्ति प्राप्त करेगा। क्षत्रिय कोई सन्यास नहीं लेते थे।
उनके लिये वीर सन्यासका विधान है अर्थात् अन्नजल छोड़कर
उत्तरा खंडकी ओर चलता ही रहे। तब तक चलता रहे जब तक
शरीरपात न हो जाय। जैसा कि पांडवोंने किया था। क्षत्रियों
के लिये कहीं सन्यासका उल्लेख आवे भी तो उसे अलिंग

सन्यास समझना चाहिये। वैश्योंके लिये ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दो ही आश्रमोंका विधान है। उनके लिये वानप्रस्थ या सन्यासका विधान नहीं है। वह चाहे तो कार्पटिक वेष धारणकर सकता है। तीर्थयात्रा करनेके लिये कापायवस्त्र पहिनकर कंधेपर काँवर रखकर वह तीर्थयात्रा करे। विधिवत् वानप्रस्थी नहीं हो सकता सन्यासकी तो बात ही पृथक्। शूद्रके लिए एक गृहस्थाश्रम का अधिकार है। संस्कार करानेका यज्ञकरानेका तथा दीक्षा देनेका अधिकार वर्णाश्रम धर्ममें केवल ब्राह्मणको ही है, दूसरे वर्णके लोग न संस्कार करा सकते हैं, न दीक्षा दे सकते हैं। आज यह वर्णाश्रम की मर्यादा छिन्न-भिन्न हो गयी है। लोग मनमानी घर जानी करने लगे हैं। सभी वर्ण के लोग कपड़े रंग कर साधु वेष बनाकर अपनी आजीविका चलाने लगे हैं। मंत्रदीक्षा देने के पवित्र कार्य को लोगों ने व्यवसाय बना लिया है। एक सज्जन मुझसे कहते थे, कि हमारे गाँव का एक चमकार था, वह साधु का वेष बनाकर मध्यप्रान्त की ओर जाता, उसने बहुत से गाँव के लोगों को मंत्र देकर शिष्य बना लिया उनमेंबहुत-से ब्राह्मणभीथे। पीछे वे लोग किसी कारण से अकस्मात् उसके घर आए और उसे चमकारका कार्य करते देखकर चकित रह गए। ऐसी एक नहीं अनेकों घटनायें हैं। जिसमें तनिक बोलने की-बात बनाने की शक्ति होती है, वह भोली-भाली जनताको सबसेपहिले फँसाने को मंत्रदीक्षा ही देते हैं। ऐसा करके वे स्वयं तो नरक के अधिकारी बनते ही हैं, अपने उन शिष्यों कोभी नरक ले जानेका प्रयत्नकरते हैं। जो लोग वेद और वर्णाश्रम को मानते नहींजैसे सिक्ख आदि। उनके यहाँ तो यह प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु जो कहते हैं, कि हम वर्णाश्रम को मानते हैं और फिर ऐसी धर्मविरुद्ध बातें करके लोगों को ठगते हैं उन स्वार्थियों को कौन रोक सकता है। यदि शास्त्रोंकोमानतेहो तो शास्त्रोंमें कहीं भी ब्राह्मणके अतिरिक्तदूसरेको

दीक्षा देने का अधिकार नहीं, किन्तु वे स्वार्थ के वश ऐसे अन्धे जाते हैं, कि शास्त्रकी इन बातों की अवहेलना कर जाते हैं वर्णाश्रम धर्म में केवल ब्राह्मणको ही सन्यास का अधिकार उसीको ज्ञान होता और ज्ञानसे मुक्ति। भक्ति मार्गमें सभी और सभी आश्रमियोंका अधिकार है, उसमें भगवत् भ-परमगति प्राप्त कर सकते हैं, उसमें किसी का निषेध नहीं। किं भी वैष्णव धर्म में दीक्षा लेने का परमगति प्राप्त करने का सबको अधिकार होनेपर भी दीक्षा देनेवाले आचार्य प्रथम वर्ण के ही होते थे अब यह मर्यादा भी टूट रही है। कालका प्रभाव है। लोग स्वार्थ मे अन्धे होकर गुरु बन जाते हैं।

स्वार्थी लोग गुरु बनकर स्त्रियों से प्रथम तन, मन और धन सर्वस्व अर्पण करा लेते हैं, अपनेको भगवान् बताकर पापकर्म करते हैं। और इसमें गोपियों का और श्रीकृष्णका दृष्टान्त देते हैं। कुछ लोग कहते हैं—"प्रेममें कोई नियम नहीं रहता।" अरे, भाई प्रेममें तो नियम नहीं रहता यह सत्य है, प्रेम हो तब न ? यह तो कामवासना है। कामकी पूर्तिके लिये तुम प्रेम शब्द को कलंकित क्यों करते हो ?

कुछ लोग कहते हैं—"यदि उनमें कुछ सत्व न होता, तो उनकी ओर हमारा इतना आकर्षण क्यों होता। एक आदमीके पीछे इतने स्त्री पुरुष क्यों घूमते हैं ?"

आकर्षण कई प्रकारका होता है, यह बात नहीं कि सात्विक आकर्षण ही हो। राजस और तामस आकर्षण भी होता है। इतना संयमी, सदाचारी, कुलीन तथा कर्मकाण्डी अजामिल वेश्याके रूपपर इतना लट्टू हो गया, कि उसने कुलमर्यादा तथा वेद मर्यादा सभीको तिलाञ्जलि देदी। यह धर्म-विरुद्ध रूपका आकर्षण था। इसी प्रकार किसी सुन्दर, सुवेष, युवकको देखकर असती स्त्रियों का आकर्षण होता है, अपने पापको छिपानेको वे ऊपरसे

भक्ति कथा कीर्तन का ढोंग बनाते हैं और भीतर ही भीतर अपनी कामवासना को व्यक्त करते हैं। स्वर्गकी अप्सराओं का जब पुण्य क्षीण हो जाता है, कुछ यत्किंचित् पुण्य शेष रह जाता है, तो वे पृथिवीपर आकर अत्यन्त सुन्दरी वेश्यायें होती हैं। उस पुण्यके प्रभावसे उन्हें सौंदर्य की प्राप्ति होती है, उसीके आकर्षण से बहुतसे कामी युवक उनके आस पास घूमते हैं। इसी प्रकार गन्धर्व, किंपुरुष या मनुष्य किसी पुण्य के प्रभाव से स्वर्गादि लोकों का सुख भोगकर जब अपने पुण्य पापकर्मोंका फल भोगने पृथिवी पर आते हैं, तो कुछ पुण्य शेष रहनेसे वे सुन्दर, गायक, वक्ता या कोई और वाक्चातुरी आदि कला से युक्त होकर जन्म लेते हैं। उनकी कलाके आकर्षणसे कामनियाँ और पथभ्रष्ट पुरुष उन्हें घेर लेते हैं। इसीसे उन्हें अभिमान हो जाता है—"मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं धन सम्पत्ति तथा शक्तिवान हूँ मेरे सदृश दूसरा कौन हो सकता है।" वे अभिमानमें भरकर बड़े-बड़े लोगों का अपमान कर देते हैं, किसीको कुछ समझतेही नहीं। उनके अनुयायी भी ऐसे मिल जाते हैं, कि उनकी मिथ्या प्रशंसा कर करके उन्हें और बढ़ावा देते रहते हैं, इससे वे समाज में और कदाचार बढ़ाते रहते हैं। उनकी एक टेक रहती है, हम अपने अनुभवसे कहते हैं। वे अपने मूढ़ अनुयायियों को नित्यप्रति पढ़ाते रहते हैं। "साधुकी महिमा वेद न जाने।" वे स्वयं तो वेद शास्त्रसे कोरे रहते ही हैं। अपने अनुयायियों को भी कोरा रखते हैं। अपनी ही पूजा कराते हैं अपना ही महत्व बढ़ाते हैं। पाप पुण्यमें कुछ भेदभाव नहीं करते मनमाना आचरण करते हैं। उनसे कोई कुछ कहे, तो उसे धूर्त ढोंगी, ईर्ष्यालु और न जाने क्या क्या बताते हैं। ऐसे शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवालों का ढोंग बहुत दिनों तक नहीं चलता। अन्तमें उनके अनुयायियों में से ही कुछ लोग स्वार्थ सिद्धि न हो

से, या उनके दुराचरणसे ऊबकर अथवा अन्य किसी ... उनसे पृथक् हो जाते हैं, उनके विपक्षमें दलबन्दी होने लग... उसके परिणामस्वरूप या तो उनपर राजअभियोग चलता ... या उन्हीं दुराचारी पुरुष स्त्रियों द्वारा मार डाले जाते हैं, असाध्य भयंकर रोग हो जानेसे उन्हें सब छोड़ देते हैं, वे ... दुर्गतिके साथ मरते हैं। कोई इस लोकमें बच भी गया,तो ... उन्हें कभी भी न छोड़ते होंगे। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, आखों देखे हैं। फिर भी लोग इन पापकर्म पाखंडों को करते हैं, क्योंकि वे विवश हैं उन लोगों से हमें कुछ भी नहीं कहना है, जो अपनी इन्द्रियतृप्ति के निमित्त उनके अनुयायी बनते हैं, उनसे भी हमें कुछ कहना नहीं है। कहना तो हमें उन साधकोंसे है जो साधनाकी भावनासे जाते हैं और उनके दुराचरणको देखकर भी यह सोचकर चिपटे रहते हैं कि ये महापुरुष हैं इनके लिये विधि-निषेध कुछ नहीं है। उनको मैं सचेत किये देता हूँ कि यह उनका भ्रम है। जहाँ भी ऐसे दुराचरण देखें वहाँ समझलें कि यह ढोंग है। जहाँ श्री कृष्ण और गोपियोंकी आड़ लेकर रासका अनुकरण किया जाय, वहाँ समझ लो यह कामवासनाका जाल है।

यह कार्य है यह अकार्य है, यह कर्तव्य है यह अकर्तव्य है इसमें तो शास्त्र ही प्रमाण है। इस लिये शास्त्रीय विधानको जानकर साधनमें प्रवृत्त होना चाहिये। यह तो मोटी पहिचान है, जहाँ सदाचार है वहाँ सात्विक साधना है। जहाँ दुराचार है वहाँ कामवासना है। भगवान् शिवजीसे बढ़कर कौन सिद्ध होगा। सतीजीने कुछ क्षणको झूठमूठ मायाकी सीताका रूप रख लिया था। केवल इसी कारण फिर उन्होंने सतीजीका पत्नी भाव से कभी भी स्पर्श नहीं किया। जब उन्होंने अपने शरीरको भस्म करके दूसरा पार्वतीका शरीर धारण किया, तभी उन्हें स्वीकार किया। शिवजीके लिये विधिनिषेधका क्या बन्धन था ?

किन्तु उन्होंने धर्ममर्यादाका पालन किया। लोकमर्यादाका भी ध्यान रखना होता है। भगवान् रामचन्द्रजीने केवल लोकमर्यादा-को बनाये रखनेके लिये ही निष्कलंक निष्पाप सीताजी का परित्याग कर दिया था। जो शास्त्रकी मर्यादाको छोड़कर मनमाना आचरण करता है, उसको कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। न उसे इस लोकमें सुख मिलता है, न परलोकमें उसकी सुगति ही होती है; अतः शक्ति भर धर्म-मर्यादाका पालन करना ही चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं—"कलियुग में तो धर्ममर्यादाका पालन हो ही नहीं सकता। सभी शास्त्रोंमें लिखा है। कलियुगमें धर्म नहीं रहेगा। मर्यादा न रहेगी, वर्णाश्रमधर्म नहीं रहेगा। नीच लोग गुरु बनकर—उच्चासनपर बैठकर-उपदेश देंगे। ब्राह्मणोंसे सेवा करावेंगे। जब सब अवश्यम्भावी है, तो फिर इन वर्णाश्रम धर्मके पीछे क्यों पड़े रहें? क्यों धर्ममर्यादा धर्ममर्यादा चिल्ला चिल्लाकर असफल प्रयास करें।" यह सत्य है कलियुगमें वर्णाश्रम धर्म न रहेगा। यह भी सत्य है कि कलियुगी स्त्री पुरुष मनमानी करेंगे। ये धर्म मर्यादाको नहीं मानेंगे। फिर भी हमें अपनी शक्तिके अनुसार जब तक जितनी कर सकें उतनी धर्ममर्यादाका पालन करना ही चाहिये। हम जानते हैं हमारा वृद्ध पिता एक दिन अवश्य ही मरेगा, वह सदा जीवित न रहेगा, फिर भी ज्वर आनेपर रुग्ण होने पर-यथाशक्ति औषधि करनी ही चाहिये। अपनी शक्तिभर उपेक्षा करना उचित नहीं, होगा तो वही जो भगवान्का विधान होगा।

कुछ लोगोंका कहना है कि कुछ भी हो, श्रीकृष्णने प्रेमके वशीभूत होकर गोपियोंके साथ रास तो किया ही था। हमारा भी जिनसे प्रेम है उनके साथ हम प्रेमवश रासक्रीड़ा करते हैं तो इसमें हानि ही क्या है?

अब करनेवालोंको तो कोई रोक नहीं सकता, करते ही हैं।

किन्तु हमारी प्रार्थना इतनी है, कि वह धर्म के नामपर, ... के नामपर न किया जाय। अधर्म और कामके ही नामपर ... जाय। यदि श्रीकृष्ण के ही रास का अनुकरण किया जाय ... इतनी बातों पर ध्यान रखा जाय।

(१) श्रीकृष्ण भगवान् ने जब रास किया था तब उनकी ... नौ-दश वर्ष की थी।

(२) भगवान् ने रास अवरुद्ध सौरत अर्थात् अस्खलित होकर किया था।

(३) भगवान्ने जितनी गोपियाँ थीं उतनेही रूप बना लिये थे।

(४) भगवान् ने गोपियों के दिव्य देहसे रास रचा था, उनके स्थूल देह तो घरमें पतियों के पास पड़े रहे। सबने उन गोपियोंको अपने पास ही देखा।

(५) भगवान्ने इतनी मर्यादाके साथ रास किया कि उन भाग्यवती गोपियों और परमभक्तोंके अतिरिक्त किसीको उसका भान भी नहीं हुआ। शिशुपालने भगवान्को इतनी गालियाँ दीं, किन्तु रासका उल्लेख करके कहा भी लांछित नहीं किया।

यदि इन सबको करने की सामर्थ्य हो, तब तो रास का अनुकरण कीजिये, नहीं अपनी कामवासना पूर्तिके लिये 'रास' शब्द को कलंकित न कीजिये। भागवती कथाके पाठकोंसे मेरी आत्मीयता है। आत्मीयताके नाते मैं उन्हें सम्मति देता हूँ, कि ऐसे शास्त्र विरुद्ध जहाँ आचरण देखें, वह चाहे कितना भी प्रभावशाली व्यक्ति हो, उससे शक्तिभर दूर रहने की चेष्टा करें। जिनका ऐसे लोगोंसे स्वार्थ सधता है वे तो मेरी सम्मतिको मानेंगे ही क्यों? उनके लिये यह सम्मति है भी नहीं, किन्तु जो परमार्थके पथिक हैं और किसी भ्रमवश भूलसे ऐसे धर्मविरुद्ध आचरण करनेवालों के फंदेमें फँस गये हैं, उन्हें पुनः स्वस्थचित्त होकर अपने आचरण पर विचार करना चाहिये। भूल तो सबसे ही हो

जाती है, बड़े बड़ों से हो जाती है, किन्तु उस भूलको भूल समझकर उसके लिये पश्चात्ताप करना—प्रायश्चित्त करना—यह उन्नतिका लक्षण है। पाप करके उसे छिपाना, गर्व करना और अनेक युक्तियों से उसका समर्थन करना, यही पतनका निष्कण्टक राजमार्ग है।

कुछलोगों का कथन है कि इस अनाचर कदाचारका मूल कारण है रासपंचाध्यायी। यदि इस रासपंचाध्यायीको ही भागवतसे निकाल दिया जाय, तो सब झंझट दूर हो जायँ। इस रसीली कामवर्धक कथाको ही पढ़कर लोगों की ऐसी प्रवृत्ति होती है।

यह तो वही बात हुई कि नाकपर मक्खी आकर बैठती है इस लिये नाकको ही काट दो। ईश्वरके कारण ही अनेक मतमतांतर होते हैं, इसलिये ईश्वरको ही मिटा दो। धर्मके नामपर ही कलह होती है, अतः धर्मको ही तिलाञ्जलि दे दो। ईश्वर धर्मको कोई मिटाना भी चाहे, तो नहीं मिटा सकता। इसी प्रकार श्रीमद्-भागवतमें से रासपञ्चाध्यायी निकाली ही नहीं जा सकती। वही तो भागवतके पंचप्राण हैं। रासपंचाध्यायीके पढ़ने से काम भावना की वृद्धि नहीं होती, अपितु कामवासनाका शमन होता है। मैने पाठकोंको व्यालीसवें खण्डमें अश्वासन दिलाया था, कि मैं इस सम्बन्धमें अपने जीवनकी एक सत्य घटना सुनाऊँगा, उसे चौवालीसवें खण्डमें पाठक पढ़ें। भगवान्‌की रासलीला एक आत्मरमणकी लीला है। वह तर्क से नहीं जानी समझी जा सकती। रासपंचाध्यायी का नित्य श्रद्धासे पाठ करने से ही जानी जा सकती है। रासके नामपर कदाचार करने व्यक्तियों का उल्लेख करना भी पाप है, पवित्र कार्यों के सदासे स्वार्थी लोग अनाचार करते आये हैं कर रहे आगे करेंगे। जिसका जिससे स्वार्थ सधता है

लाख समझावे तो भी वह मानेगा नहीं। उन्हें तो ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते। इस कथन का अभिप्राय इतना ही है, कि जिज्ञासु साधक ऐसे ढोंगी सिद्ध सद्गुरुओं से सावधान रहें। अन्त में रास-रसिकेश्वर आनंदकन्द श्रीकृष्णचन्द्र प्रभु के पादपद्मों में प्रार्थना है, कि हम दिव्य रास का जीवन में कभी अनुभव कर सकें। भगवान् के दिव्य रास का आस्वादन कर सकें।

छप्पय

जे त्यागें निज धरम विषय में चित्त लगावें।
परधनमहँ मन रखहिँ व्यरथकी बात बनावें॥
जे साधन अपवर्ग स्वार्थ साधैं नित तिनतें।
सावधान नित रहें प्रेम साधकगन उनतें॥
कथा कीरतन कृष्ण को, करैं नियमतें नारिनर।
फँसे न ते जगफंद में, यही मार्ग है सुगतिकर॥

संकीर्तन भवन, झूसी
आषाढ़ कृ० १०।२००८ प्रभुदत्त

श्रीराधाजी को भी मान

[६८१]

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोपिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥*
(श्री भ० १० स्क० ३० अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

उनकेहू मन मान भयो सोचें—हौं सरबस ।
अखिलभुवनपति श्याम करे अब मैंने निजबश ॥
जहाँ मान तहँ वास करें कैसे गिरधारी ।
परबशवत् घनश्याम लखे तब बोली प्यारी ॥
पैदल अब नहिं चल सकौं, कितव ! कहाँ लै जात हैं ।
पग चाँपौ घोड़ा बनौं, प्यारे ! पाँइ पिरात हैं ॥

मान वियोग का पूर्व रूप है। जिसको लेकर मन में मान हो अहंकार आ जाय, समझो वह हमसे पृथक् होने वाला है। धनका मान, रूपका मान, ऐश्वर्य का मान, सुन्दरता का मान तथा औरभी गुणों का मान उस गुण की न्यूनता प्रकाशित करने के ही निमित्त

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् सब गोपियों के बीच से जिस गोपी को एकान्त में ले गये थे, अब उसे मान हुआ। उनने समझा मैं ही सब गोपियों में श्रेष्ठ हूँ, इसीलिये प्यारे समस्त कामातुरा कामिनियों को छोड़कर मेरा ही भजन करते हैं।"

होता है, किन्तु प्रेम मार्ग में यह बात नहीं। प्रेम की तो मान से और वृद्धि होती है, प्रेम तो मान से और निखरता है। यद्यपि यहाँ भी मानके अनन्तर विरह होता है और विरहजन्य दुःख भी सहन करना पड़ता है, किन्तु वह विरह दुःख कोटि सुखों से भी अधिक सुखकर है। उन विरह में निरन्तर प्यारे की स्मृति बनी रहती है। प्रेम मार्ग में शरीर सम्मिलन को उतना महत्व नहीं दिया गया है। शरीर का मिलन तो तुच्छ है। यथार्थ मिलन तो मन का है। मन से जिससे सदा मिले रहें, जिसकी स्मृति निरन्तर बनी रहे, सोते जागते उठते बैठते जिसकी मधुरमूरति नयनों के आगे नाचती रहे वही नित्य संयोग है। विरह में हृदय द्रवीभूत हो जाता है। हृदय में दीनता आ जाती है, प्यारे की एक-एक बात एकान्त में याद आने लगती है। उस अवसर पर उन्होंने ऐसा कहा था, ऐसा उन्होंने क्यों कहा? क्योंकि वे मुझे अत्यधिक प्यार करते थे, हाय! मैंने अभिमान के वशीभूत होकर उनका सम्मान नहीं किया। आने पर अभ्युत्थान नहीं दिया। इस प्रकार की उनकी अतीत की स्मृतियाँ चल चित्रों के सदृश हृदय पलटपर आती हैं, विलीन हो जाती हैं, पुनः नूतन आती हैं, फिर स्मृति नूतन वेष बनाकर आ जाती है। इस प्रकार यह क्रम निरन्तर चलता रहता है; अतः प्रेम मार्ग में पूर्वराग मिलन और मिलन के अनन्तर मान का स्थान है। मान होने पर ही मदन मोहन अन्तर्धान होते हैं और तभी विरह ज्वाला उत्पन्न करके समस्त अशुभों को भस्मसात करके अन्तःकरण को विशुद्ध बना देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मन्मथ के भी मनको मथन करने वाले मदन मोहन अपनी परम प्रेयसी श्रीमती राधिकाजी को लेकर सब सखियों के बीच से अन्तर्धान हो गये। सखियाँ तो उनकी खोज में उन्मत्त हुई इधर भटक रही हैं और श्रीराधिकाजी एकान्त में उनके साथ सुखद क्रीड़ायें कर रही हैं। जो

जितना ही बड़ा होता है, उसका आवेग भी उतना ही बड़ा होता है। छोटे की भावना भी छोटी होती है। छोटों का आकर्षण भी छोटा होता है। बड़े लोग पहिले तो किसी की ओर आकर्षित नहीं होते। यदि कदाचित् हो जाते हैं, तो फिर उनका वह आकर्षण सहज में हटता नहीं। बड़ों की सभी बातें बड़ी होती हैं। बड़े हों चाहे छोटे जो जिस मार्ग पर पैर रखेंगे, उन्हें उसके सुख दुःख सहने ही होंगे। गिलहरी का मुख कपास के एक टेंट से ही भर जाता है। हथिनी का मुख एक बोझ ऊख से भी नहीं भरता। पात्र जितना ही बड़ा होगा, रस भी उसमें उतना ही अधिक आवेगा।

अन्य गोपिकायें तो प्रेम की निचली ही सीढ़ियों पर थीं, अतः उन्हें तो थोड़े ही सौभाग्य पर मान हो गया। वे ऐश्वर्यमद में मदमाती हो गयीं, अतः श्यामसुन्दर ने सब को एक साथ ही अन्तर्हित होकर विरह का अनुभव कराया, किन्तु श्रीमती राधिकाजी के लिये इतना सार्वजनिक सम्मिलन सुख कोई विशेष महत्व की वस्तु नहीं थी, अतः श्यामसुन्दर सबका परित्याग करके एकाकी ही उन्हें ऐकान्तिक रति सुख का अनुभव कराने सघन निकुंजों में दूर ले गये। वहाँ उन्होंने उनके साथ कितनी सुखद, कितनी मनोज्ञ कितनी अलौकिक लीलायें कीं ये अनिर्वचनीय हैं, उनका कथन करना तो पृथक रहा, अनुभव करना भी मानवीय बुद्धि के परेकी बात है। उनका अनुभव तो वही भाग्यशाली भक्त कर सकता है, जिसे भक्त भावन भगवान् कृपा करके स्वयं ही करा दें; अतः उसके विषय में यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

प्रेम महासागर में तो एक के पश्चात् दूसरी और दूसरी के पश्चात् तीसरी ऐसे निरन्तर हिलोरें आती रहती हैं। वह बिना बढ़े रह नहीं सकता। निरन्तर बढ़ते रहना ही उसका स्वभाव है। लीला एक सी तो रहती नहीं उसमें नित्य नूतनता प्रतीत

होती है, नूतनता का ही नाम लीला है। सम्मिलन सुख के अनंतर मान की हिलोर आती है। इस बात का हम बार बार स्मरण दिलावे हैं, इसे आप लोग पुनरुक्तिदोष न मानें क्योंकि यह मान प्राकृत, निकृष्ट मान कभी हो नहीं सकता। यह तो प्रेम वृद्धिका प्रकार है।

श्रीप्रियाजी ने जब देखा-"श्यामसुन्दर तो मेरे संकेत पर नाचते हैं। मेरे पैरों को कष्ट न हो, इसलिये मुझे कंधे पर चढ़ाते हैं। मैं जो माँगती हूँ, उसे तुरन्त लाकर देते हैं। अपने पीताम्बर से मेरे पसीने को पोंछते हैं। अपने हाथ से मुझे खिलाते हैं। स्वयं मेरी वेंणी गूंथते हैं। बार बार मुझे दर्पण दिखाते हैं, मेरे वस्त्राभूपणों को सम्हालते हैं। मुझे अंक में स्थित करके मेरे मुख को दीनता के साथ जोहते रहते हैं। मेरे मुखकी आकृतिका अध्ययन करते रहते हैं। हर समय शंकित से बने रहते हैं। मुझे जिससे प्रसन्नता हो, उस काम को हठ पूर्वक करते हैं। सारांश यह कि वे मेरी कृपा के निरन्तर इच्छुक बने रहते हैं। अहा! मैं कितनी बड़-भागिनी हूँ। जिनकी कृपा के लिये ब्रह्मादिक देवता तरसते रहते हैं, जो बड़ी-बड़ी स्तुति करने पर उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते वे ही आज छोटी से छोटी नीच से नीच सेवा कर रहे हैं। कितनी ललनायें इनके दृष्टिपात के लिये तरसती रहती हैं, वे उन सबको तुच्छ समझकर मुझे ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानकर मुझे यहाँ एकान्त में ले आये हैं और आज्ञाकारी अनुचर की भाँति मेरी प्रेम पूर्वक परिचर्या कर रहे हैं। जिन कामिनियों को ये रोती बिलखती छोड़कर आये हैं, वे सब इनमें अनुरक्ता थीं, इनकी भक्ता थीं, फिर भी मेरे कारण उनकी उपेक्षा कर दी। मेरा उन सबसे अधिक सम्मान किया।" इस प्रकार के विचार उठते ही उनके मन में प्रेम का गर्व उत्पन्न हुआ। प्रेम गर्विता वनिता को नायक को नचाने में एक प्रकार के अद्भुत

आनन्दकी अनुभूति होती है। अधिकाधिक उसे अधीन करना चाहती है; अतः प्यारेके अधिक संस्पर्श सुखकी अनुभूतिके लोभसे श्रीमतीजी उनसे बोलीं—"प्यारे! तुम मुझे कहाँ यहाँ बीहड़ वनमें लिये डोलते हो?"

अत्यन्त ही अनुरागके साथ श्यामसुन्दर बोले—"प्रिये! मैं तुम्हें रिझानेके लिये, तुम्हारी कृपा पानेके लिये ये सब कार्य कर रहा हूँ। यहाँसे अति निकट ही एक गहवर है, वहाँ तुम्हें ले जाकर सुन्दर-सुन्दर दृश्य दिखाऊँगा। तुम्हारे लिये सुन्दर-सुन्दर सुमन लाकर सभी अंगोंके स्वयं आभूषण बनाऊँगा। पुष्पोंका शृङ्गार करके तुम्हें सजाऊँगा और तुम्हारे लिये अति कोमल पुष्पोंकी शैया बनाऊँगा।"

तुनककर प्रेमके कोपके स्वरमें प्यारीजी बोलीं—"न जाने कितना दूर है आपका गहवर वन। मुझसे तो चला नहीं जाता।"

ममताभरी वाणीमे मदनमोहन बोले—"थक गयीं क्या? अब तो समीप ही आ गये, देखो कैसी सुन्दर-सुन्दर भीनी-भीनी गंध आ रही है। वह जो सामने सघन लताओंका वितान दिखायी देता है, वहीं तो चलना है। अति सन्निकट ही है। चली चलो।"

श्रीजी डाँटकर बोलीं—"चली कैसे चलूँ, मुझसे तो अब एक पैर भी नहीं चला जाता। कहाँ ऊबड़-खाबड़में ले आये हो? चलते-चलते पैर पिराने लगे। सभी अंग शिथिल हो गये हैं।"

अनुराग भरित स्वरमें श्यामसुन्दर बोले—"लाओ चरण सेवा कर दूँ।"

तुनककर श्रीमतीजी बोलीं—"चलो, हटो मुझे तुम्हारी सेवा नहीं चाहिये।"

अधीन होकर प्यारे बोले—"अप्रसन्न हो गयीं.

मुझसे कुछ अपराध बन गया क्या ? मेरे अपराधको क्षमा करो, यहाँकी भूमि सम नहीं है। आगे बड़ा सुखद स्थल है। मेरे कंधेको पकड़कर चली चलो।"

इसपर प्यारीजी बोलीं—"देखो, तुम मुझसे बहुत वाद-विवाद मत करो। मैं एक डग भी नहीं चल सकती। यदि तुम्हें उस सघन निकुञ्जमें चलना है, तो मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर जहाँ चाहो तहाँ ले चलो। पैदल तो मैं जानेकी नहीं।"

श्यामसुन्दर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"अहा ! मेरा अहो भाग्य। मेरा शरीर प्यारीजीके ऐसे सुखद कैंकर्यमें आवेगा। आपको उछलकर चढ़नेमें कष्ट होगा यह टीला है इसपर मैं तुम्हें जेट भरके चढ़ाये देता हूँ, मैं इसके नीचे खड़ा हो जाऊँगा। इसपरसे तुम सहजमें ही मेरे कंधेपर चढ़ सकती हो।"

प्यारीजी यह सुनकर गर्वके साथ बोलीं—"अच्छी बात है यही सही तुम मुझे इस टीलेपर चढ़ा दो।"

श्यामसुन्दरने उन्हें अंकमें भरकर उस टीलेपर खड़ाकर दिया और आप तनिक झुककर उनके चरणोंके समीप कंधेको ले जाकर विनम्रता पूर्वक खड़े हो गये। प्रियाजीका गर्वपराकाष्ठापर पहुँच चुका था। उन्होंने नूपुर, पाइजेब, कड़े, छड़े, साँकर, बिछुआ तथा छल्ली छल्ला और पगपानसे मंडित अपने दायें चरणको श्रीकृष्णके क्रन्धेपर चढ़ानेको ज्यों ही उठाया त्यों ही श्रीकृष्ण तुरन्त वहाँके वहीं अन्तर्धान हो गये।

सूतजी कहते हैं—'मुनियों ! जब प्रियाजीका रुनझोल और छम-छमकी ध्वनि करता हुआ चरण ज्योंका त्यों ही अधरमें रहा आया और नीचे श्रीकृष्णको जब उन्होंने नहीं देखा तो वे भौचक्की-सी रह गयीं। उन्होंने पैरको पुनः पृथ्वीपर रखकर नीचे देखा, नन्दनन्दन वहाँ नहीं हैं। इधर देखा उधर देखा

श्यामसुन्दर कहीं भी दिखायी नहीं दिये। तब तो उनका सौन्दर्य-का अभिमान, रूपका गर्व तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठ होनेका मद चकनाचूर हो गया। वे भूली-सी भटकी-सी ठगी-सी अपनेको असहाय अनुभव करने लगीं और आँखोंसे आँसू बहाती हुई बिलख-बिलखकर रोने लगीं। जिनके ऊपर अभिमान था, जब वे ही अन्तर्हित हो गये, तो अब अभिमान किसपर करतीं। जड़के बिना वृक्ष रह कैसे सकता है। अभिमान भग गया और उसका स्थान दीनताने ले लिया। वे अत्यन्त दीन होकर रुदन करने लगीं।"

छप्पय

तब हँसि बोले श्याम चढ़ो [illegible] ।
सुनि अति हरषित भईं चढ़नकूँ [illegible] ॥
त्यों ही अन्तरधान भये [illegible] ।
इत उत खोजहिँ फिरहिँ [illegible] ॥
नाथ ! रमन ! प्रियतम परम ! [illegible]
देहु दरस अब दुखहरन, [illegible]

विरहविह्वला कृष्णप्रिया

(६८२)

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३० अ० ४० श्लो०)

छप्पय

हाय ! कहँतजिगये रमन ! मुखकमल दिखाओ।
भयो दर्प मम दलन दयानिधि आओ आओ ॥
भ्रमरी भूखी फिरहिं कमल ! मधु अधरपिआओ।
मरति चातकी प्यास श्यामघन रस बरसाओ ॥
यों प्यारी प्रिय बिरहमहँ, कुररी सम रोवति फिरति।
सम्मुख निरखति चर अचर,पूछतिपति बिलखति गिरति॥

अहा ! इन विरहियोंका साहस भी धन्य है। भगवान् जिसे जितना बड़ा दुख देते हैं, उसे उतनी ही दुख सहनेकी शक्ति भी दे देते हैं। नहीं तो आप अनुमान लगावें। जिनके दर्शनोंको आँखें सदा प्यासी बनी रहती हैं। चित्त चाहता रहता है इनकी

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! विरहविह्वला श्रीराधिकाजी विलाप करती हुई कह रही हैं—"हा नाथ ! हे रमण ! हे प्रियतम ! हे महाबाहो ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? इस दीना दासीपर दया करके दर्शन दो प्यारे !"

मधुरिमाको अपलक भावसे पान ही करते रहें। आँखें चाहती हैं इन्हें पुतलियोंकी भाँति सदा पलकोंके भीतर छिपाये रहें। जिनका एक पलभरका वियोग भी कोटि कल्पोंके सदृश प्रतीत होता है ऐसे प्रियतमके बिना इतनी लम्बी लम्बी अँधेरी रात्रिया बिना सोये करवट बदलते आह भरते बिता दी जाती हैं, सचमुच विरहिनियोंके हृदयको भगवान् अश्मसारका बना देते हैं। इसीलिये वह न फटता है न टूटता है। संसारमें सबसे बड़ा सुख क्या है ? प्रियदर्शन ! जिस समय प्यारेसे साक्षात्कार हो जाय, मानों स्वर्ग, अपवर्ग वैकुण्ठ सब कुछ यहीं मिल गया। संसारमें दुःख क्या है ? प्यारेका वियोग। जो क्षण प्यारेके बिना बिताये जायँ, वे क्षण नहीं, स्वासोंको पूरा करना है, प्रारब्धके भोगोंको भोगना है।

वियोगके अनेक भेद हैं, किन्तु मुख्य दो भेद हैं। एक संभावित वियोग दूसरा असंभावित वियोग। संभावित वियोग तो वह है, जैसे चकवा चकवीका होता है। दिनमे मिल जाते हैं, किन्तु रात्रिमें साथ-साथ नहीं रह सकते। सायंकाल हुआ कमलोंको संकुचित करते अरविन्दैकबन्धु भगवान् भुवनभास्करने जहाँ अस्ताचलकी ओर प्रस्थान किया, तहाँ चकवी उस पार चली जाती है, चकवा इस पार पड़ा रह जाता है। इसमें किसीका कुछ वश नहीं, ऐसा होना ही है, दूसरा असंभावित विरह है। जैसे सारस सारसीका। सारस सारसी सदा ही साथ रहते हैं। वे पल भरको भी एक दूसरेसे पृथक् नहीं होते। सहसा कोई लुब्धक बहेलिया आया उसने चुपके से आकर सारसको विष बुझे बाणसे मार दिया। अब सारसी अकेली तड़फड़ाती रहती है। उसे संभावना नहीं थी, मैं कभी अपने प्रियतमसे पृथक् हो जाऊँगी, किन्तु संभावना न होनेपर भी दैव उसके प्रतिकूल हो गया। उसने उसके पतिको उसकी दृष्टि से ओझल कर दिया।

संभावित विरहसे असंभावित विरह अत्यन्त ही दुखदायी होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! श्रीराधिकाजीको गर्व हो गया था, कि मैं सबसे अधिक सुन्दरी हूँ, तभी तो श्यामसुन्दर सबको छोड़कर अकेली मुझे ही यहाँ एकान्तमें ले आये हैं और मुझे समस्त सुख प्रदान कर रहे हैं। मेरे अधीन हो गये हैं। मेरी छोटीसे छोटी सेवाको भी वे उल्लास और उत्साहके साथ कर रहे हैं। मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी कामिनी और संसारमें कौन होगी। अब तो मैंने प्रियतमको अपनी प्रेमफँसरीसे कस-कर बाँध लिया है। अब यह संभव नहीं वे पल भर भी मुझसे पृथक् रह सकें। अब हम सदा इसी प्रकार मिले रहेंगे।" इन विचारोंमें वे विरहजन्य व्यथाको भूल ही गयी थीं। इस बातका उन्हें स्मरण ही नहीं रहा, कि संयोग सदा वियोगके ही लिये होता है। जीवन मरणके ही लिये होता है। जो अंकुर उत्पन्न हुआ है और उसे खाद तथा जलादि सम्बन्धी अनुकूल परिस्थिति प्राप्त है, तो वह अवश्य ही फूलेगा फलेगा। संयोगसुख रूप वृक्षका वियोग ही फल है। वियोगके बिना संयोगकी मिठास बढ़ती नहीं, उसमें नूतनता आती नहीं। प्रेमका स्वरूप है नित्य नूतन होना। वियोगसे संयोगकी प्यास और बढ़ती है। जैसे पिपासा रोगमें ठहर ठहरकर जितना ही जल पिया जाता है उतनी ही जलकी तृषा और बढ़ती है। अतः देखा जाय, तो वियोग कोई बुरी वस्तु नहीं। जिसको जितना ही अधिक स्नेह होगा, उसे उतना ही अधिक वियोगजन्य दुःख होगा। श्रीराधिकाजीको असंभावित विरहकी प्राप्ति हुई। कहाँ तो वे प्यारेके कन्धेपर कुदककर चढ़नेवाली थीं, कहाँ वहाँ प्यारे ही न रहे। अधिक प्यास शान्त करने क्षीरसागरके समीप गये वहाँ जाकर ज्यों ही अंजुली भरनेको उद्यत हुए कि क्षीरसागर ही सूख गया। सुमेरुके शिखरपर चढ़ना चाहते थे, सहसा

देखते हैं हम तो रसातलमें खड़े हैं। दैवकी कैसी विडम्बना हैं। कहाँ वे नित्य संयोगके स्वप्न देख रहीं थीं, कहाँ सहसा वियोगजन्य दुःख के गर्त में गिर गयीं। श्याममे उनका विछोह हो गया। अब तक अयोगजन्य उत्कंठा थी, अब वियोगजन्य वेदना हो गयी।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! अयोग और वियोगमें क्या अन्तर है ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! जिसके रूप तथा गुणोंको सुनकर, पढ़कर तथा अन्य किसी प्रकार जानकर जिससे प्रेम हो जाय, किन्तु उसके दर्शन न हो सकें, उससे कभी संयोग न हो, उसके लिये सदा तड़पते रहें इसीका नाम अयोग है। इसमें बड़ी व्याकुलता होती है। सर्वप्रथम व्यावहारिक लीलामे श्रीराधिकाजी ललितादि सखियोंके सहित पुष्पचयनके निमित्त श्रीवृन्दावनकी रासस्थलीके निकट गयीं। वहाँ उन्होंने ललिताजीसे पूछा—"सखि ! यह कौन सी भूमि है ? बड़ी सरस है बड़ी सुखद है, बड़ी मनोज्ञ है। मेरा चित्त स्वतः ही इस लहरियादार बालूमे आवृत विविध भाँतिके पुष्पोंके भारसे नमित निकुञ्ज बाहुल्य अवनिको देखकर खिंच रहा है। इस स्थलका नाम क्या है भला ?"

ललिता बोलीं—"इसका नाम है रासस्थली।"

"रासस्थलीका अर्थ क्या ? रासस्थली किसे कहते हैं ? यहाँ क्या होता है ?" भोलेपन के साथ वृषभानुनन्दिनीने पूछा।

ललिता बोलीं—"यहाँ श्रीकृष्ण रास रचते हैं।"

"श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण !! श्रीकृष्ण कौन भला ?" अकचकाकर श्रीजी ने पूछा।"

"श्रीकृष्ण नन्दनन्दन हैं। यदुमतिसुत हैं। व्रजवल्लभ हैं। रासेश्वर हैं श्रीकृष्ण।"

बस, श्रीकृष्ण नाम कानोंमें पड़ते ही, श्रीजी मूर्छित हो गयीं। मनही मन श्रीकृष्ण नामका मंत्रकी भाँति जप करने लगीं। "जिसके नाममें ऐसा जादू है उसकी मोहिनी मूरति कैसी होगी। श्रीकृष्णके दर्शन कैसे हों? मेरे ये नेत्र सार्थक कैसे हों? हाय! श्रीकृष्णदर्शन मुझे कब होंगे? श्रीकृष्ण कब कृपा करेंगे, कब मेरे इन नयनोंको सफल करेंगे।" इस प्रकार निरन्तर दर्शनों के लिये उत्कंठित रहना यही अयोग कहलाता है। इसमें सदा उत्सुकता बनी रहती है, संभव है आज दर्शन हो जायँ। दिनभर प्रतीक्षा करनेपर भी दर्शन नहीं होते तो अपने को धिक्कारते है। हाय? आजका दिन व्यर्थ चला गया। प्यारेके दर्शन नहीं हुए। चित्तमें बड़ी दीनता आजाती है, कोई प्यारेकी चर्चा करता है तो नेत्र हरे हो जाते हैं, वे बहने लगते हैं। मन ही मन बड़ी आत्मग्लानि बनी रहती है। निरन्तर निर्वेदकी अनुभूति होती रहती है। दर्शनों के लिये चित्तमें चिन्ता बनी रहती है। दर्शनों के लिये चपलता बढ़ जाती है। प्रिय के विषय में सोचते-सोचते शरीरमे जड़ता-सी आ जाती है। उन्माद तथा मोह आदि भी दर्शन न होनेसे हो जाते हैं। इसी का नाम अयोग है। दर्शन न होनेके पूर्व जो विरहकी अनुभूति है उसे अयोग कहते हैं।

वियोग होता है संयोग के अनन्तर। प्यारेसे भेट हो गयी। उनके साथ कमनीय क्रीड़ायें भी कीं। संयोग सुखका अनुभव किया। तदनन्तर सहसा वे हमसे पृथक् हो गये हैं। इसीका नाम वियोग है। वियोग के अनन्तर जो सहयोग होता है उसमें और भी अधिक मिठास बढ़ जाती है। संयोगके अननन्तर जो विछोह होता है, उसमे बड़ी मर्मान्तक पीड़ा होती है। निरन्तर संयोग सुख की स्मृति बनी रहती है। सम्मुख चाहे स्मरण न भी हो उनके पीठ के पीछे वे सभी बातें याद आती हैं। उन बातोंको याद कर करके

बड़ा भारी मनमें संताप होता है। शरीर कृश हो जाता है। निद्रा या तो कम हो जाती है या आती ही नहीं। तनिक झपकी लगी कि फिर उसीकी बातें याद आने लगती हैं। आलस्य शून्यताका अनुभव होने लगता है। हाय! उनके बिना हम कैसे जीयेंगे। उनके दर्शनों के बिना इस संसारमें किसके आश्रयसे जीवन बितायेंगे। किनका मुख देखकर धैर्य धारण करेंगे। धैर्यका सुदृढ़ बाँध टूट जाता है। शरीरमें जड़ता आ जाती है। किसी काम में मन नहीं लगता। शरीर रोगग्रस्त-सा हो जाता है। घर वाले वैद्य बुलाते हैं। वैद्य वात,पित्त और कफका निर्णय करता है, किन्तु वह व्याधि त्रिदोष जन्य नहीं होती। विरहकी व्याधिकी चिकित्सा तो प्यारा ही अपने हाथ रखकर कर सकता है। विरह में उन्माद, मूर्छा और यहाँ तक कि मृतक सदृश अवस्था हो जाती है। उसीका निरन्तर ध्यान रहता है, जिह्वा उसीके नामका सतत उच्चारण करती है, नेत्र उसीके लिये जल बहाते रहते हैं। श्रीकृष्णके विरहमें श्रीराधिकाजीकी ऐसी ही सब दशायें हुईं।

श्रीकृष्णके अन्तर्हित होते ही वे संयोग सुखको स्मरण करके तथा अपने गर्वके लिये बारबार पश्चात्ताप करती हुईं,रुदन करने लगीं। वे वन वनमें रात्रिके समय भटकती हुईं चिल्ला रही थीं हा नाथ! ओ मेरे प्राणोंके प्यारे! मुझ अबलाको इस बीहड़ वनमें अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? प्यारे! आओ! आओ! दरश दिखाओ! हृदय लगाओ! मत तड़पाओ, रस बरसाओ, हिय सरसाओ! अमृत पिलाओ! प्यारे! क्या तुम रूठ गये? कहीं अपनोंकी बातपर ध्यान दिया जाता है। मुझसे अपराध हुआ! अवश्य हुआ। किन्तु अब न होगा,अब तो मैंने अपने किये का फल पा लिया। तुम्हारी माधुरी मूर्ति नेत्रोंके सम्मुख है, किन्तु तुम हृदयसे मुझे नहीं लगा रहे हो,दूर दूर हट ऐसा मत करो मेरे जीवन सर्वस्व! आ आओ आ

तुम्हारी बाहुएँ कितनी बड़ी हैं। उन दोनों बाहुओंके बीच में मुझे कस लो। ऐसी कसो की फिर मैं तुमसे कभी विलग न होऊँ। श्यामसुन्दर आ जाओ आ जाओ! देखो, गुदगुदी उतनी ही अच्छी होती है जब तक हँसी हो, आँखोंमें पानी न आवे। अति सर्वत्र वर्जित है, तुम अति कर रहे हो मुझे आवश्यकतासे अधिक क्लेश दे रहे हो। यहाँ लाकर मुझे बीहड़ वनमें पटक दिया। तुम्हारे सान्निध्यमें तो बीहड़वन भी नन्दनकाननसे बढ़कर है, किन्तु तुम्हारे बिना तो वैकुण्ठ गोलोक भी सूना सूना है कोटि कोटि नरकोंसे भी अधिक क्लेशदायक है। नन्दनन्दन! अब देरी करने से काम न चलेगा। जब ये प्राण ही न रहेंगे तब तुम्हारे आनेसे लाभ ही क्या? जब खेती सूख जाय, तब चाहें इन्द्र अमृत ही क्यों न बरसावें सब व्यर्थ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार सुकुमारी कीर्तिकुमारी रोती रोती व्याकुल हो गयीं। चिल्लाते-चिल्लाते उनका गला पड़ गया। उन्हें शरीरकी सुधि बुधि नहीं रही। वे मूर्छित होकर धड़ामसे धरतीपर गिर गयीं। उन्हें शरीरकी तनिक भी सुधि नहीं रही। कृष्ण विरहमें उनकी दशवीं दशा हो गयी, मृततुल्या बनकर लम्बी लम्बी साँसें लेने लगीं उनके जीवनकी कोई आशा नहीं रही।"

छप्पय

करि-करि सुमिरन संग श्यामको रोवति राधा।
बन-बन विहरत विकल विरहकी बाढ़ी ब्याधा॥
दीखति दशमी दशा दुखी दरसन बिनु प्यारी।
व्याकुल बिलखति विरहमाँहि तनु दशा बिसारी॥
इत प्यारी मूर्छित परी, उत आईं ढूँढ़त सखीं।
अति अचेत आकुल अधिक, उत राधाजी सबने लखीं॥

व्रजाङ्गनाओं की कृष्णविरह में तन्मयता

[६८३]

तन्मनस्कास्तदालापास्तद् विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥❀
(श्रीभा० १० स्क० ३० अ० ४४ श्लो०)

छप्पय

गोपी बैठीं घेरि प्रियाकूँ सब समुझावें।
गोदीमाँहि लिटाइ कमल दल व्यजन डुलावें ॥
कछुक चेतना भई रसिककी बात चलाई।
आपु बीती सब बात दुखित ह्वै प्रिया बताई ॥
एक प्रान मन मिलि सकल, मानरहित अति दीन सब।
गावत गुन गोविन्द के, भईं ध्यान महँ लीन सब ॥

एक बार इस जीवने कभी सुख स्वरूप सर्वेश्वर के संग सुखका अनुभव किया था उसी सुखको यह रात्रि दिन खोजता है। अच्छी सुन्दर गुदगुदी शैया देखता है, तो भ्रमवश समझता है, संभव है इसमें सुख हो, किन्तु उसमें कहाँ। कभी उसे

❀श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उन सब गोपिकाओं का मन श्रीकृष्ण में ही लगा था, उन्हीं की सब बातें कर रहीं थीं, उन्हीं की चेष्टाओं का अनुकरण कर रहीं थीं तथा उन्ही के ध्यान में लीन थीं। इस कारण वे सब उन्हीं के गुणों का गान कर रहीं थीं, वे घर द्वारकी समस्त चिंताओं को भूल गयीं, तन्मय हो गयीं।"

नारी के अधरामृत में उसका आभास दिखायी देता है,किन्तु उससे इसकी प्यास नहीं बुझती। प्यास तो तब बुझे जब वह जल हो, वह तो मृगतृष्णा थी। मृगमरीचिका से आज तक किसी की प्यास बुझी भी है। सीपीमें रजत का भानहोने से उसे लेने दौड़ता है, संभव है इसी में सुख सन्निहित हो, किन्तु जो स्वयं मिथ्या है, अशाश्वत है, उसमें शाश्वती शान्ति की प्राप्ति संभव नहीं। जीव दशों दिशाओं में भटकता है, चक्कर लगाता है-सम्मुखजोभीवृक्ष, पशु, पक्षी मिलता है, उसी से उस सुख स्वरूप का पता पूछता है, किन्तु वे स्वयं भी सब इसकी खोज में व्यग्र हो रहे हैं। जो स्वयं अन्धा है वह दूसरों को क्या मार्ग बतावेगा। जीव इसी प्रकार भटकते रहते हैं। भटकते-भटकते जब उन्हें बोध होता है "अरे, श्यामसुन्दर तो हमारे भीतरी अभिमान के कारण अन्तर्हित हुए हैं। जो सुई घर में खोई हुई है, उसे खेतों में खोजना मूर्खता है, वे छिपे हैं भीतर हम उन्हें खोज रहे हैं बाहर। वे घर में दुबके बैठे हैं हम उन्हें वन में पुकारते हैं। अब कहीं भटकने का काम नहीं, यात्रा की आवश्यकता नहीं। जहाँ से ढूँढनेचले थे, वहीं लौट चलो। चंचलता छोड़कर स्थिर हो जाओ। पुनः पुलिन में आ जाओ। बाह्य दृष्टिको बंद कर लो। बाहरी नेत्रोंको बंद करो। भीतर ही उनका अनुभव करो। वे कहीं गये थोड़े ही हैं, मान से डरकर कहीं छिप गये हैं। तुम मानको निकाल दो, वहीं के वहीं प्रकट हो जायँगे। उन्हें दूर से कहीं आना न पड़ेगा। मणि के ऊपर आवरणपड़गया है प्रकाशित नहींहोती। आवरण हटाते ही स्वयं भी प्रकाशित होगी और भवन की समस्त वस्तुओं, को प्रकाशित करेगी। बाहरी खोज को बंद करो। भीतर खोजो, भीतर खोजो। तुम्हें सुखस्वरूप श्यामसुन्दर मिलेंगे, अवश्य मिलेंगे। फिर संयोग सुख देंगे, फिर अपने हृदय से सटावेंगे, फिर उनकी तपन बुझावेंगे। जिसे एक बार प्यारे का आलिङ्गन

प्राप्त हो चुका है, वह क्या जीवनभर उस सुखको भूल सकता है। एक बार सुख देकर श्याम तृष्णाको और बढ़ाते हैं। फिर योगी ध्यानमें अपने आपमें ही उन्हें अनुभव करते हैं, ब्रह्म संस्पर्श सुखको प्राप्त करते हैं। तन्मनस्क होकर तदालापमें ही कालयापन करो, घर द्वार कुटुम्ब परिवार स्वतः ही भूल जायँगे। मणि माणिक्य प्राप्त होनेपर कौड़ियों की याद कौन करता है ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह श्रीराधाकृष्ण विहार लीलारस प्राकृत पदार्थ नहीं। इसके पान करनेके अधिकारी विरले ही होते हैं। "फिर इसे सबके सम्मुख प्रकट क्यों करते हैं ?" प्रकट इसलिये करते हैं, कि जिन्हें अधिकारी समझकर उनसे कहते हैं, उनमें कोई एक तो ग्रहण कर ही लेगा। जो अनधिकारी है वह तो व्यर्थ समझकर उससे उपरत ही हो जायगा। श्रीराधाजीके सम्मुख से अन्तर्हित हो जाना उनकी क्रीड़ा मात्र ही है, रसकी अभिवृद्धिके लिये ही यह अभिनय है। जो श्रीराधिकाजी मदनमोहनकी माधुरी की मधुपात्री हैं। जो चितचोर चन्द्रकी मदचकित चकोरी हैं उनका भला वृन्दावनविहारीसे वियोग कभी संभव हो सकता है ? वे तो उनकी हृदयेश्वरी हैं, प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं, किन्तु नित नव नव लीलाभिनयसे रसवृद्धि होती है, प्रेमरूप अनंत सागर में उत्ताल तरङ्गें आती रहती हैं, जिससे वह शब्द करता हुआ प्रवृद्ध होता हुआ-सा प्रतीत होता है। उसमें नव चेतनता स्फूर्ति दिखायी देती है, इसीलिये लीला विलास है।

मुनियो ! जब श्रीराधिकाजी 'हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ ! कहाँ गये ? कहाँ गये ?' कह कहकर रोने चिल्लाने लगीं और मूर्छित होकर गिर पड़ीं। अचेत हो गयीं, तो उसी समय घूमतीं फिरतीं वे सब श्रीकृष्णकी विरह व्यथामें व्याकुल बनी व्रजङ्गनायें भी वहाँ आ पहुँचीं। प्रियाजीकी ऐसी दशा देखकर उन्हें दुःख भी हुआ। किसी-किसीको आन्तरिक सुख भी हुआ।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! दूसरेको दुखी देखकर सुखका अनुभव करना, यह तो खलोंके लक्षण हैं। उन कृष्णप्रेयसी इतनी उच्च कोटिके भाववाली व्रजाङ्गनाओंको मूर्छित हुई श्रीराधिकाजी को देखकर आन्तरिक सुख किस कारण से हुआ ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! यह प्रेमका मार्ग है ही ऐसा टेढ़ा। जिन्हें अब तक श्रीराधाजीके इतने बड़े सौभाग्यपर ईर्ष्या हो रही थी, उन्हें ही अपने समान तड़पते देखकर आत्मतोष होना स्वाभाविक है। किसीको हम ऐश्वर्यमें मत्त हुए कभी देखते हैं, वह हमसे बोलता भी नहीं। कालान्तरमें जब उसे भी अपने ही समान भीख मांगते दीन वचन कहते देखते हैं, तो एक प्रकार की आत्मतुष्टि-सी होती है। तब उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। फिर उससे आन्तरिक स्नेह हो जाता है। क्योंकि स्नेह समानशीलोंमें ही होता है। जहाँ छोटे बड़ेका, धनी निर्धनका, पंडित मूर्खका, उच्च नीचका भेद भाव है वहाँ प्रेम नहीं रह सकता। शिष्टाचार भले ही रह सकता है। एक ही पथके पथिक हों। दोनोंका एक ही उद्देश्य हो। एक-सी ही स्थिति हो तब स्नेह बढ़ता है, तब मिलकर उद्देश्यप्राप्तिके लिये सम्मिलित साधन हो सकता है। तब संघशक्ति संगठित होती है। तब पुकारमें बल आता है, तब श्यामसुन्दरको विवश होकर आना पड़ता है; अतः जिन गोपियोंको ईर्ष्या हुई या आत्मसन्तोष हुआ वह कृष्णप्राप्तिके निमित्तसे ही हुआ, कि इतनी भाग्यशालिनी जब हमें संगिनी मिल गयीं, तब तो हम श्यामसुन्दरको अवश्य ही खोज निकालेंगी; अतः वे सबकी सब आकर श्रीजीके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने लगीं। कोई उनकी धूलि झाड़ने लगी। किसीने उन्हें उठाकर अपनी कोमल-कोमल सुकुमार जंघाओंपर लिटा लिया। किन्होंने उनके सुकुमार चरणोंको अपनी गोदीमें ले लिया और उन्हें पोले पोले हाथोंसे दबाने

लगी। कोई दौड़कर पुष्करिणीसे कमलके पत्ते तोड़ लायी, उन्हींसे उनकी वायु करने लगी। सुन्दर सुगंधित शीतल जल उनके श्रीअंगपर छिड़कने लगी। कोई अपनी कोमल-कोमल कमल पंखुड़ियोंके सदृश पतली-पतली उँगलियोंसे उनकी ठोढ़ीको तनिक उठाकर कानमें 'श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण' इस महामन्त्रकी ध्वनि करने लगी।

कानमें कृष्णनामकी ध्वनि पड़ते ही श्रीजीको ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों कोई मेरे कर्णकुहरोंमें अमृत उड़ेल रहा है। अकचकाकर उन्होंने नेत्र खोल दिये और सहसा बोल उठीं—"प्यारे कहाँ हैं ? प्यारे कहाँ हैं ? प्यारे तुम कहाँ चले गये थे।"

प्यारीजीके मुखसे ऐसे शब्द सुनकर सभीको सन्तोष हुआ। सबको भरोसा हो गया, प्यारीजीके प्राण अभी शरीरमें शेष हैं। उनकी दशा मृतकके सदृश है। साक्षात् मृतक दशा उन्हें प्राप्त नहीं हुई है; अतः उन्हें चेत करानेके लिये वे कहने लगीं—"प्यारीजी ! उठो उठो, हमें तुम प्यारेका पता बताओ। प्यारे तो हम सबको बिलखती छोड़कर एक मात्र तुम्हें ही साथ लेकर यहाँ से चले आये थे। वे कहाँ हैं ?"

सहसा श्रीजीके मुखसे अपने आप ही निकल पड़ा—"वे मुझे भी छोड़ गये।"

"आपको तो वे कभी छोड़ सकते नहीं। आप तो उनकी प्राणों-से भी अधिक प्यारी हो, आपके ही मुखको जोहनेके लिये तो उनका जीवन है। आपकी चिन्ता करनेको ही तो उनका चित्त है। वे गोचारण आदि बाह्य कार्य करते हुए भी निरन्तर आपके ही सुन्दर मुखका चिन्तन करते रहते हैं। आपको भला वे कैसे छोड़ सकते हैं। असंभव है, सर्वथा असंभव है, हम त्रिकालमें भी इस बातपर विश्वास नहीं कर सकतीं।"

"हैं, श्यामसुन्दर मुझे इतना प्यार करते हैं। मुझे तो इसपर

विश्वास नहीं होता 'संभव है करते हों' इन विचारोंके उठते ही श्रीकृष्णके प्रेमकी याद आते ही श्रीजीकी मूर्छा भङ्ग हो गयी। वे उठ कर बैठ गयीं। पूछने लगीं—"बहिनाओ! तुम यहाँ कहाँसे आ गयीं? प्यारे कहाँ चले गये?"

श्रीजीको सचेत देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। जिस सखीने उन्हें गोदीमें बिठा रखा था, उसीने मन्द-मन्द मुसकराते हुए श्रीजीके हृदयकी वेगसे चलती हुई धुकधुकीपर अपने कोमल शीतल कर रखते हुए कहा—"प्यारेको तुमने यहाँ छिपा रखा है, जिससे वे हमें दिखायी न दें।"

श्रीजी यह सुनकर लज्जित हुईं। उनके बड़े-बड़े कमलके जैसे नेत्रोंकी कोरसे मोतियोंके समान स्वच्छ अश्रुबिन्दु निकलकर उनके गोल-गोल लोल कपोलोंपर लकीर करते हुए हृदयपर लुढ़क पड़े मानो हृदयस्थ हृदयेशको अर्घ्य प्रदान कर रहे हों। वे सब सखियोंपर दृष्टि डालती हुई बोलीं—"सखियो! मैंने मान किया था, मुझे अपने सौभाग्य सुखपर गर्व हो गया था। मैं प्रेमगर्विता बनिता बन गयी थी। मैंने सौभाग्यके मदमें भरकर मदनमोहनका अपमान किया इसीसे वे रूठ गये, मुझ अभागिनीको छोड़कर चले गये।" यह कहते-कहते श्रीजी पुनः विह्वल हो गयीं और पुनः सखीकी गोदीमें लुढ़क गयीं। सभी सखियाँ ढाह मारकर रोने लगीं। "श्यामसुन्दर आओ-आओ। अब अधिक न तरसाओ।"

श्यामसुन्दरका नाम सुनते ही श्रीजीकी मूर्छा पुनः भंग हुई वे बोलीं—"सखि! श्यामसुन्दर आ गये क्या?"

एक चतुर-सी सखी बोली—"श्यामसुन्दर वहाँ बैठे हैं, जहाँ उन्होंने पहिले पहिल वंशी बजायी थी।"

"रासस्थलीमें?", सहसा ये शब्द श्रीजीके मुखसे स्वतः ही निकल पड़े।

सखीने कहा—"हाँ रासस्थलीमें रासेश्वर अवश्य होंगे। वहाँ बैठे हुए हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ?"

"तो हम इस समय कहाँ हैं ? हम क्या रासस्थलीमें नहीं हैं ? रासस्थली कितनी दूर है सखि !" श्रीजीके मुखसे अपने आपही ये वचन प्रकट हो रहे थे।

सखीने कहा—"हम तो गह्वर वनके निकट हैं। रासस्थली तो यहाँसे दूर है। दूर भी नहीं समीप ही है।"

"अच्छा चलो, वहीं चलें, किन्तु मार्गके और वनोंको भी खोजती चलना। संभव है यहीं कहीं छिपे हों। वे बड़े छलिया हैं। समीप छिपे रहनेपर भी दूर दिखायी देते हैं। कभी-कभी दूर रहने पर भी समीप हो जाते हैं। अभी तो प्रकाश है। वे काले-काले दिखायी दे जायँगे। अंधकार में तो वे उसीके रूपमें मिल जायँगे। तब उन्हें खोजना अत्यंत कठिन हो जायगा। प्रकाशकी सहायतासे उनका पता लगावें। चन्द्रिकाके आलोक में उन्हें हम खोजें।"यह सुनकर वे सब एक साथ चल दीं। प्रकाशकी सहायता से खोजने लगीं किन्तु श्रीकृष्ण किसीकी सहायतासे नहीं मिलते। जब वे स्वयं ही मिलनेको उतावले हो जाते हैं, तो अपने आप प्रकटित हो जाते हैं। वे व्रजाङ्गनायें चन्द्रमाकी चाँदनीमें उन्हें एक वनसे दूसरे वनमें खोजती रहीं, श्यामसुन्दर नहीं मिले नहीं मिले।

चन्द्रका प्रकाश मन्द पड़ गया। वनमें तस्कर प्रियतम-का साम्राज्य-सा छा गया। श्यामघन की छायासे शशिका मुख म्लान हो गया। गोपिकायें थक गयीं, उनका ऐश्वर्यमद तो प्रथम ही चकनाचूर हो गया था, अब खोजनेका जो पुरुषार्थ सम्बन्धी अभिमान था, वह भी जाता रहा। श्रीकृष्ण हमारे पुरुषार्थ से प्राप्त न होंगे। वे तो स्वयं ही कृपा करके हमें वरण करलें, अपने आप ही आकर हमें बलपूर्वक उठाकर अपने

हृदयसे लगालें तभी उनकी प्राप्ति सम्भव है। स्वतः वे ही हाथ बढ़ाकर हमारे मुखको फाड़कर अमृत उड़ेल दें तभी अमरता सम्भव है। स्वयं हम अपने पुरुपार्थसे उन्हें न पा सकेंगी। चन्द्रमाके प्रकाशपर जो विश्वास था, वह भी मन्द पड़ गया। वनमें तमका साम्राज्य हो गया। अब तो रासस्थलो में ही चलकर बैठें उनकी कृपाकी प्रतीक्षा करें। उनके नाम गुणों द्वारा ही कालक्षेप करें। कभी तो वे कृपा करेंगे। यही सोचकर वे जहाँ से गयीं थीं वहीं लौट आयीं और धैर्यपूर्वक साधना रतिका अनुकरण करने लगीं।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! साधनारति क्या होती है ?"

सूतजी बोले—'महाराज ! रसशास्त्रोंमें रतिके अनन्त भेद बताये हैं, किन्तु सामान्यतया रति दो प्रकारकी होती है। एक सिद्धारति दूसरी साधनारति। सिद्धारतिमें कोई भी साधना नहीं हो सकती। मूर्छा या मृतकावस्थामें पड़े-पड़े निरन्तर प्यारे के ही भाव में भावित बने रहते हैं। नाम, रूप, लीला, धाम किसीकी भी स्मृति नहीं रहती। ऐसी स्थितिमें श्रीराधिका जी को प्रथम पड़े हुए सखियों ने देखा था। यह तो सिद्धारति हुई। साधन-रतिमें उनकी कृपाकी प्रतीक्षा करते हुए समयको काटने के निमित्त कुछ सामान्यसे साधन होते हैं। वे इस भावनासे नहीं होते, कि हमारे इन साधनोंसे सन्तुष्ट होकर श्यामसुन्दर विवश होकर दौड़े ही आवेंगे। ऐसे भावकी गन्ध भी नहीं, आवेंगे तो वे अपनी इच्छासे ही, किन्तु समय कैसे बितावें अपराध वे तो करना जानते ही नहीं। हमारे ही अपराध से वे छिप गये हैं। अपने अपराधपर साधक को क्षोभ होता है, किन्तु उसे भुला देता है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। पहिले जो पाप हो गये सो हो गये। अब ऐसा न करेंगे अब उनके नाम और गुणोंका गान करते ही

शेप समय को बिता देंगे। पहिली भावना तो साधन रतिमें यह होती है।

दूसरी भावना यह रहती है, कि हमारा यह शेप समय व्यर्थ न जाय। एक पल भी ऐसा व्यर्थ न बीते जिसमें प्यारे का चिंतन न हो। इसके लिये साधक निरन्तर जिह्वासे उन्हीं के नामों का उच्चारण करता रहता है। मन से उनके ही रूपका चिन्तन करता रहता है। भगवान् को और उनके भक्तों को बार बार साष्टाङ्ग प्रणाम करता है, उनकी स्मृति में निरन्तर नयनों से नीर बहाता रहता है. फिर भी ऐसा अनुभव मन से होता है, मेरा यह समय व्यर्थ ही जा रहा है हाय ! निरन्तर भगवत् स्मृति नहीं होती।

ऐसी दशा में स्त्री, पुत्र, धन, परिवार तथा समस्त संसारी सम्बन्धों से विरक्ति हो जाती है। पहिले जिस धन के लिये प्राण देते थे हृदय में रति होने पर ये सब तुच्छ प्रतीत होते हैं। प्यारे के ऊपर सब कुछ तृण के सदृश त्यागा जा सकता है, उनके ऊपर सर्वस्व निछावर कर दिया जाता है।

इस दशा में मान सर्वथा नष्ट हो जाता है। सुन्दरता का, कुलीनताका, धन, यौवन तथा अन्य सभी प्रकार के मानोंका अभाव हो जाता है। सब के साथ समान भाव से बैठकर अपने साध्य की प्राप्तिके लिये निरभिमान होकर जुट जाते हैं। जिसेभी देखते हैं उसी की वन्दना करते हैं।

मन में सदा आशा बनी रहती है, कभी न कभी तो प्यारे कृपा करेंगे ही। कभी न कभी तो दया करके दर्शन देंगे ही। कभी न कभी तो वे हमें अपनायेंगे ही। इसी आशा को लगाये वे कालयापन करते हैं।

साधनारति में समुत्कण्ठा सदा बनी रहती है। प्यारे के रूपको याद कर करके, उनके गुणों को याद करके मिलने की जो छट-

पटाहट है उसे ही समुत्कण्ठा कहते हैं। यह उत्कण्ठा प्रतिपल प्रतिक्षण बनी रहती है। प्यारे अब आये अब आये। अब उनके दर्शन होंगे। अब नेत्र सफल होंगे।

उत्कण्ठा के साथ-साथ प्यारेके सुमधुर नामों के गायन में अत्यधिक अभिरूचि उत्पन्न हो जाती है। हे नाथ! हे रमण! हे महाभुज! हे प्यारे! हे मेरे नयनों के तारे! कब आओगे! कब मेरे तनकी तपन बुझाओगे? इस प्रकार निरन्तर जिह्वा से प्यारे का नाम लेने से एक आन्तरिक सुखानुभूति होती है।

जिस स्थलपर प्यारे ने कमनीय क्रीड़ायें की हैं उन स्थलों में स्वाभाविक प्रीति हो जाती है। उन स्थलों को देख कर उनका स्मरण करके उद्दीपन होता है। यहाँ प्यारे ने यह लीला की थी, इस स्थलपर यह घटना घटित हुई थी। प्यारेके उन उन स्मृति स्थानोंमें जाना, उनका मन वचन तथा कर्मों द्वारा पूजन करना, उन स्थलोंके प्रति आदर करना यह भी रतिका सर्वश्रेष्ठ अंग है।

सबसे अधिक रतिकी वृद्धिमें कारण है तद्गुणाख्यान आसक्ति। प्यारेके सौन्दर्य माधुर्य और उनकी लीलाओंका गान करना उनका अनुकरण करना, उनका श्रवण करना इन सभी कारणों से साधना रतिकी वृद्धि होती है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! वे गोपिकायें लौटकर उसी स्थानपर आ गयीं जहाँ श्यामसुन्दरने सर्वप्रथम बाँसुरी बजाकर व्रजाङ्गनायें बुलायी थीं। वहाँ वे अपनी भूलपर पश्चात्ताप करती हुईं, मानशून्य होकर, उत्कंठापूर्वक श्रीकृष्ण दर्शनोंकी आशासे उस स्थलीके प्रति आदर प्रदर्शित करती हुईं भगवान् के नामोंको उच्चस्वर से लेकर, उनके गुणों का गान करती हुईं घर द्वार कुटुम्ब परिवार की सुधि भुलाकर कृष्ण-स्मृति में ही अपने समयका सदुपयोग करने लगीं। उन सबने परस्पर मिलजुल कर जो श्रीकृष्णगुणगान सम्बन्धी गीत गाये हैं, वे गोपीगीत के

नामसे प्रसिद्ध हैं। उन गीतोंका यत्किंचित् दिग्दर्शन मैं आगे कराऊँगा। आप सब उन मधुरातिमधुर गीतोंको प्रेमपूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

सुधि बुधि तजि घर द्वार यारकी कृष्ण पुकारें।
उत्कंठित अति भई करुण स्वर नाम उचारें॥
रूप सुमिरि घनश्याम हृदय पिघिले भरि आवे।
देह कँपी-कँपी उठे चित्त चंचल है जावे॥
करत प्रतीक्षा पुलिनमहँ, मिलि जुलि गावें गीतकूँ।
साधनसिद्धा सखी सब, प्रकट करें रस रीतिकूँ॥

गोपिका गीतकी प्रस्तावना

(६८४)

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ३१ अ० १ श्लो०)

छप्पय

गावें गोपी गीत जयति जय व्रजवनचन्दन।
व्रजजीवन सरवस्व नटवर नँदनन्दन ॥
कमल बदन हम जोहि मधुकरी जीवन धारें।
तिनहिँ अदरशन वायु बिना वल्लभ! क्यों मारें॥
प्रायेश्वर तव दरश बिनु, प्रानहीन हम भई सब।
खोजि थकीं दश दिशि दयित, देदू दया निधि दरश अब ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीकृष्ण विरहमे उनके गुणोका गान करती हुई गोपिकायें कह रही हैं—"हे दयित! आपके जन्म लेनेके कारण यह व्रजभूमि सबसे अधिक श्रेष्ठ है। इसीलिये लक्ष्मीजी यहाँ निरन्तर निवास करतीं हैं। हमारा जीवन एकमात्र आपके ही लिये है, हम आपको दशों दिशाओंमें खोज रही हैं। प्यारे! हमें दर्शन दो।"

जन्म लेते ही बच्चा गायनके साथ रोता है। गायन उसे कहते हैं, जिसे सुनकर सुहृदयोंका हृदय खिल उठे। रुदन उसे कहते हैं जिसे सुनकर मृदु हृदय हिल उठे, दयालु पुरुषों का हृदय पिघल उठे। सद्यःजात बच्चा प्रथम रुदन करता है। किन्तु उसका रुदन बेसुरा नहीं होता, बेसुरे शब्द से सुख नहीं होता सुखद रसकी उत्पत्ति नहीं होती। घृणाके भाव जागृत होते हैं। बालकके रुदनसे घरभरमें मोद छा जाता है सर्वत्र आनन्द प्रस्फुटित हो जाता है, इसीसे अनुमान लगाया जाता है। बाल्यरोदन सुस्वर है संगीत शास्त्रके अनुकूल है। इससे निष्कर्ष निकला जन्म लेते ही मनुष्य गाता है और रोता है। इसीलिये कहावत है "रोना और गाना किसे नहीं आता।"

जो महामूढ़ हैं, जड़ हैं तथा त्रिगुणातीत हैं, उनकी बात छोड़ दीजिये। उनकी गणना मानवोंमें नहीं की जाती। मानव की परिभाषा यही है, जो मोक्षके लिये साधन करे, अतः शास्त्रोंमें मनुष्यका एक नाम 'साधक' भी आता है। सभी साधक गाना और रोना जानते हैं। भगवान् भी दो ही साधनोंसे मिलते हैं, गाकर और रोकर। जो रोकर हृदयसे उनके नामका, उनके गुणों का गान करता है, उससे भगवान् दूर रह नहीं सकते। वे अश्रुओं से आर्द्र हुए करुणापूर्ण गायनके तन्तुसे बँधकर विवश होकर साधकके समीप चले आते हैं और उसे बाहुपाशमें बाँध लेते हैं इसीलिये भक्त दो ही काम करते हैं, उनके नाम और गुणोंका निरन्तर गान करते रहते हैं और रोते रहते हैं। रोने से हृदयका मल धुल जाता है, नेत्र निर्मल बन जाते हैं। गाने से वाणी पवित्र हो जाती है और पवित्र वाणीमें ही प्रभुका वास है।

जीव अत्यल्प है, प्रभु सर्वज्ञ हैं। प्रभु जैसी शिक्षा देंगे, जीव वही करेगा। जीवको भगवान्ने अपूर्ण बनाया है, अतः वह

अपूर्ण ब्रह्मकी ही कल्पना करेगा। जब वह उन्हींकी कृपासे पूर्ण ब्रह्मको पहिचान जायगा, तो उसकी अपूर्णता नष्ट हो जायगी वह भी पूर्ण बन जायगा, तो उसका जीव भाव नष्ट हो जायगा। अल्पज्ञ जीवकी सतत चेष्टा सर्वज्ञकी ओर बढ़ने की ही होती है, क्योंकि वह सर्वज्ञका अंश है। यदि उसमें अपूर्णता न होती तो साधनोंकी आवश्यकता ही क्या थी। तब वह *प्रयत्न ही क्यों करता। नदियाँ अपूर्ण होने से ही समुद्रकी* ओर दौड़ती हैं और उस महान्जलराशिको पाकर उसके हृदयसे हृदय सटाकर उससे मिलकर शांत हो जाती हैं चंचलता विहीन बन जाती हैं। जहाँ क्रिया है, वहाँ समझो अंश अंशीको पानेका प्रयत्न कर रहा है। अपने शरीरकी ओर दौड रहा है। व्यग्रताके बिना शीघ्र प्राप्ति नहीं, शब्दके बिना आकर्षण नहीं। अतः श्याम गाकर निज जनों को अपनी ओर बुलाते हैं। समीप आने पर हृदयमें व्याकुलता उत्पन्न करके—प्रेम प्रदर्शित करके—अन्तर्हित हो जाते हैं। बस, फिर उनके गुणों को गाते रहो, उनका नाम लेकर चिल्लाते रहो रोते रहो यही साधन है, यही उसने अपनी ओर बुलाते समय शिक्षा दी है। रोओ गाओ। रोओ गाओ। गाओ अवश्य सूखे हृदयसे मत गाओ, नेत्रोंके अश्रुओंसे खींचकर हृदयको आर्द्र बनाकर गाओ। रमण करने करानेवाले राम मिल जायँगे। सब दुख दुरित दूर जायँगे। इसीलिये भक्तिमार्गमें गाना और रोना इन दोनोंकी ही प्रधानता है। इसीलिये कुछ ज्ञानाभिमानी महानुभाव कहा करते हैं, कि भक्तिमार्ग तो स्त्रियों का मार्ग है। वास्तवमें यह सत्य है। जिसे अपने पुरुषत्वका अभिमान है वह कभी भक्ति-मार्गमें अग्रसर हो ही नहीं सकता। पुरुष तो एक ही है नन्दनन्दन। और सब या तो स्त्री हैं या नपुंसक। हम सब मनके अधीन होकर व्यापार करते हैं। संस्कृत साहित्यमें

मन को नपुंसक लिंग ही माना जाता है। ब्रह्मको भी नपुंसक लिंग माना है। अवतारों में सबसे प्रथम पुरुषावतार है, जिसकी पुरुषसूक्तसे स्तुति की गई है। उसे प्राप्त करना ही जीवका एक मात्र ध्येय है। कुछ लोग कहते हैं बालक बनकर उसे पा सकते हैं। कोई कहते हैं अपने को उनकी पत्नी मानकर उन्हें पतिभाव मानकर भक्ति हो सकती है। इस वाद विवाद में हमें नहीं पड़ना है कौन सा मार्ग अच्छा है। दोनों में से जिसे जो रुचिकर हो। हमारा कहना इतना ही है; कि चाहे छोरा बनो या लुगाई। स्वर दोनों को ही मधुर बनाना होगा। मधुर स्वर बनाकर चाहें रोओ या हँसो। गान करो या ध्यान करो। वाणी में जब तक मधुरता न होगी तब तक प्यारा रीझेगा नहीं। वाणी आकर्षक या तो बालकों की होती है या स्त्रियोंकी। बच्चों के कंठकी गुठली जब तक नहीं बढ़ती तब तक उनकी वाणी कोमल रहती है। जहाँ वह बालक से बड़ा हुआ। बड़प्पन का भूत उसके सिर-पर चढ़ा तहाँ ही उसकी वाणी भारी हो जाती है, उसमें आकर्षण नहीं रहता। स्त्रियों के कंठों में कभी गुठली होती नहीं। इसीलिए उनका कंठ सदा मधुर और आकर्षक बना रहता है। अतः गायन तो स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। पुरुष चेष्टा करता है, किन्तु वह आकर्षण कहाँ ?

हाँ तो ज्ञान मार्ग में ध्यान और तृप्ति ये दो प्रधान साधन हैं। निरन्तर ध्येय के ध्यान में ध्याता लगा रहे और तीनों त्रिपुटियोंको एक करके सदा आत्मतृप्त बनकर स्थित रहे। इसी प्रकार भक्ति-मार्ग में गान और अतृप्ति दो प्रधान साधन हैं। निरन्तर अपने इष्ट के नाम गुणों का गान करता रहे और सदा प्रेम के लिये तड़पता रहे अतृप्त बना रहे।

भक्ति के शास्त्रों में अनेक भेद बताये गये हैं। यह बड़ी ही अपार जलराशि है। इसमें से जिसने जितनी भी लहर गिन लीं

उसने उन्हीं को अपना सिन्धु मान लिया किन्तु इस जलराशिकी थाह नहीं, गणना नहीं इयत्ता नहीं। सामान्यतया भक्ति के तीन भेद बताये हैं एक साधन भक्ति, दूसरी भावभक्ति तीसरी प्रेमा भक्ति। साधन भक्ति के दो भेद बताये हैं एक वैधी भक्ति दूसरी रागानुगा। वैधी भक्ति उसे कहते हैं जो शास्त्र में भक्ति का आदेश दिया गया है, विधि बताई गई है। उन वचनो पर विश्वास करके विधिविधान पूर्वक भक्ति करना। रागात्मिका भक्ति वह कहलाती है, जो भगवान में किसी सम्बन्ध से राग हो जाय। वह राग दो प्रकार से होता है एक तो काम भाव से जैसे कुब्जाका हुआ, दूसरा सम्बन्ध से जैसे देवकी, वसुदेव, नंद, यशोदा, कुन्ती तथा श्रीकृष्ण के अन्य सम्बन्धियों का हुआ। अतः रागात्मिका भक्तिके भी कामरूपा और सम्बन्ध रूपा दो भेद बताये हैं। यह तो सामान्यतया साधन भक्ति का परिचय हुआ।

दूसरी है भाव भक्ति। हृदय में साधन के सम्बन्ध से स्वतः हा कैसे भी 'भाव' उत्पन्न हो जायँ मन मसोसता रहे, चित्त में उसी का भाव जम जाय यही भावभक्ति है। मन उसके भाव में भावित हो जाय। यह भाव साधन करते करते भी उदय हो जाता है, भगवान् तथा भगवद् भक्तों की कृपा से भी होता है, और सहसा किसी प्रभावशाला के दर्शनों से भी होजाता है उसके वचनों से भी होता है और कोई बिना दर्शन दिये, बिना आशीर्वाद दिये केवल हृदय से ही ऐसी कामना कर देते हैं कि वैसा भाव उत्पन्न हो जाता है। गोपिकाओं में बहुतों ने साधन करके प्राप्त किया था बहुत-सी नित्य परिकर की थीं, बहुतों ने भगवान्की आज्ञा से गोपकुलमें जन्म लिया था। किसी भीप्रकार से हो, उनके मन में कृष्ण हमारे प्रेष्ठ हैं, पति हैं यह भाव सुदृढ़ हो गया था। उन्हें वे अपना प्राणपति मानती थीं जब मन में भाव का अंकुर उत्पन्न होता है, तो संसारी विषयों से विरक्ति-

आदि अनुभाव स्वतः ही उत्पन्न होते हैं। जिनका कुछ दिग्दर्शन पीछे कराया गया है।

तीसरी प्रेमसंगताया प्रेम भक्ति है। भगवान्‌में कैसे भी ममत्व हो जाय प्रेम हो जाय भगवान् के बिना रहा ही न जाय। उसमें विधि निषेध का कुछ भान ही न रहे। श्रीकृष्ण हमारे हैं हम श्रीकृष्ण के हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार में और कुछ है ही नहीं। ये भेद कहने को तीन हैं वैसे जिस किसी प्रकार भी भगवान् के प्रति अनुराग हो जाय उसीका नाम भक्ति है। आचार्यों ने सामान्यतया ऐसा क्रम बताया है, कि पहिले अन्तःकरण में श्रद्धा होनी चाहिये। क्योंकि बिना श्रद्धा के लौकिक पारलौकिक कोई भी कार्य नहीं होता। जब हृदय में श्रद्धा होगी, तो साधुसंग की इच्छा होगी। साधुओं का संग प्यारा लगने लगेगा। मनुष्य जैसे का संग करता है, वैसे ही गुण उसमें आ जाते हैं। जब श्रद्धावान् पुरुष देखता है, ये साधु सदा भजन में लगे रहते हैं, तो उसकी भजन करने की इच्छा होती है। भजन करने से संसारी अनर्थोंकी निवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। तब उसकी भजन में निष्ठा हो जाती है, रुचि बढ़ जाती है। निष्ठा पूर्वक भजन पूजन करते करते उसमें आसक्ति हो जाती है। फिर कोई कितना भी कहे भजन छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती। तब भाव भक्ति की उत्पत्ति होती है। हृदय में भाव उत्पन्न होने से प्रेम बढ़ता है। प्रेमा भक्ति होती है। गोपिकायें प्रेमकी ध्वजा हैं। संसार में प्रेम भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण ब्रजाङ्गनायें ही हैं।

भावों के रसशास्त्र में अनेक भेद बताये हैं। जिन वस्तुओं के दर्शन श्रवण तथा स्पर्शन आदि से भाव उदय हों। रतिकी वृद्धि हो सामान्यतया उन्हें विभाव कहते हैं। उनके विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव तथा व्यभिचारी भाव ये भेद हैं। इनके द्वारा भगवान् में स्थाई भाव होता है। जिनके द्वारा रति सुख

अस्वादन हो उसे विभाव कहते हैं। उसके आलम्बन और उद्दीपन दो भेद बताये हैं। आलम्बन उसे कहते हैं जिसके द्वारा साक्षात् रति सुख प्राप्त हो जैसे श्रीकृष्ण हैं उनके भक्त हैं। श्रीकृष्ण ही रति सुख के प्रधान नायक हैं, वे ही भक्ति के एक मात्र आलम्बन हैं, वे सर्वगुणसम्पन्न हैं। उनका रूपमाधुर्य, वेणु-माधुर्य, लीलामाधुर्य ऐसा है जिसकी संसार में समता नहीं। वह हृदय को हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। दूसरा विभाव है उद्दीपन। उद्दीपन उसे कहते हैं, जिसे देखकर प्यारे की याद आ जाय। जैसे भगवान् के कायिक, वाचिक तथा मानसिक गुण। गुण जैसे किशोरावस्था, अनुपम सौन्दर्य, तथा अत्यन्त सुकोमल सुन्दर स्वरूप, मोहनता, उनकी मनोहर रासादिकी चेष्टायें, दुष्टों का वध करना, उनके वस्त्राभूषण, वेणु शृङ्ग, वृन्दावन, तुलसी और भी जिन्हें देखकर भाव उद्दीपन हो वे सब उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। यह सामान्यतया विभावों की बातें हुईं।

अनुभाव उसे कहते हैं, जो चित्त के भाव बाहर क्रियाओं में प्रकट हो जायँ जैसे प्रेम में नाच उठना, कुछ का कुछ बक देना, हँसते-हँसते या रोते-रोते लोटपोट हो जाना, गीत गाना, चिल्ला उठना, अँगड़ाई लेना, हुङ्कार मारना। विभाव हृदय की अनुभव-की वस्तु है। वे ही भाव जब शरीर में प्रकट हो जायँ, उन्हीं भावों में भावित होकर चेष्टा करने लगें वे ही अनुभाव हैं। अब तक गोपिकायें श्रीकृष्ण के भाव में विभोर थीं। उनकी एक-एक बात को यादकर करके दुखी हो रहीं थीं। अब आकर वे अपने भावों को गीत बनाकर गाने लगीं यह उनकी अनुभावकी दशा है। तीसरा सात्विक भाव है। इसमें प्यारे की स्मृति में स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय, आदि अनेक चेष्टायें होती हैं। रस शास्त्रों में इन सबका बड़ा विस्तार से वर्णन है।

चौथा है व्यभिचारी भाव। प्यारेकी स्मृति में जो भावों का व्यभिचार होना है, शरीरमें मनमें जो विकारोंका होना है उन्हें ही व्यभिचारो भाव कहा गया है। इसके भी निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का आदि अनेक भेद बताये हैं।

स्थाई भाव उसे कहते है, जो किसी भी भाव के उदय होने पर न हटे, स्थाई बना रहे। जैसे श्रीकृष्ण विषयकि रति। चाहें जैसी दशा हो जाय, श्रीकृष्णप्रेम सदा बना रहेगा। इस रतिके शास्त्रकारोंने अनेक भेद बताये हैं। उस गहन वनमें प्रवेश करने का हमारा अभिप्राय नहीं है। हमें तो केवल इतना ही बताना है, कि श्रीकृष्ण प्रेममें पगली भई वे गोपिकायें अपने मनोगत भावोंको अनुभाव रूपमें—गीतों द्वारा—प्रकट करने लगीं। सर्वप्रथम उन्हें वृन्दावनकी उस रासस्थली को देखकर उद्दीपन हुआ अतः सर्वप्रथम वृन्दावन धामकी ही प्रशंसा करती हुई गोपियाँ गाने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकायें पुलिन में आकर प्यारेके गुणोंका गान करने लगीं। उनमेंसे एक श्यामसुन्दरको शून्यमें सम्बोधित करके कहने लगी—प्यारे! व्रजवल्लभ! तुम्हें यह व्रजभूमि अत्यन्त ही प्यारी है। क्यों न हो, व्रजके अतिरिक्त गोवर्धन पर्वत कहाँ है? जहाँ तुम रमणियोंके साथ रास रचते हो। ऐसी रासस्थली वृन्दावनके अतिरिक्त तीनों भुवनोंमें और कहाँ मिल सकती है? यह वृन्दावन भूमि का भूषण है, जगत् का मनोज्ञ मुकुट है। वृन्दावन धामके माहात्म्यको समझकर कमला कमलवनका परित्याग करके निरन्तर यहाँ निवास करती हैं। स्वभावसे चंचला होने पर भी यहाँ अचञ्चला होकर आपके मुख को जोहती रहती है। आप बहुवल्लभ हो, उसकी ओर देखते भी नहीं। फिर भी वह तुम्हारे पीछे सूतरीमें बँधी कबूतरीकी भाँति फुदकती फिरती है। ९..

जब आप शेषशैयापर सुखसे शयन करते हैं, तब सापत्न्य भावसे रहित होकर यह आपके पैरोंको पलोटती रहती है किन्तु यहाँ ब्रजमें तो इसे आपके पादस्पर्श करने का भी अवसर प्राप्त नहीं होता। यह आपका अनुसरण अनुगमन संभव तथा इस हेतुसे करती रहती है, कि चरणस्पर्श का सौभाग्य न भी हो, तो आपके चरणचिह्न से चिह्नित वृन्दावन की पावन रज मेरे अंगपर पड़ जाय। इसीलिये चंचला होनेपर भी कभी ब्रजका परित्याग नहीं करती। लक्ष्मीजीको मद हो गया होगा कि मैं श्यामसुन्दरकी पत्नी हूँ, तुम ठहर मदहारी इसीलिये तुम उससे न बोलते होगे। तुम्हें प्रसन्न करने, तुम्हारा कृपालाभ करने के लिये उसने निरन्तर ब्रजवासका संकल्प कर लिया होगा। चैत्र सन्यास ले लिया होगा। तभी तो तुम्हें छोड़कर ब्रजके बाहर पैर नहीं रहता। हमसे भी भूल हो गयी। हम भी आप सर्वस्वतन्त्र ईश्वरको अपने अधीन समझने लगीं। हमें आपकी प्राणप्रिया होने का गर्व हो गया। इसलिये आप छिप गये। हमारा अभिमान चकनाचूर हो गया। प्रभो! आप स्वामी हैं, स्वतन्त्र हैं, ईश्वर हैं। हम आपकी दासी हैं। चरणसेविका हैं, *किंकरी हैं अधीना हैं। अन्तःपुरकी दासियोंकी सर्वत्र अव्याहतगति* होती है। स्वामी उनसे संकोच नहीं करते, उनसे न छिपते हैं न कोई बात छिपाते हैं। निःसंकोच उन्हें दर्शन देते हैं, यथेच्छ आज्ञा देते है, दासी भी हम ऐसी वैसी नहीं उच्छिष्ट भोजिनी दासी हैं। तुम्हारी उपयुक्त वस्तु ही हमारा आहार है, उसे ही खाकर हम जीती हैं। तुम्हारे पीये पयको ही पान करके अपनी प्यास बुझाती हैं। हम भूखी प्यासी भटक रही हैं। अपने *रूपासवको पिलाकर—अधरामृत चखाकर—हम मृतकों* को जिलालो। अपनी किंकरियोंको मरतेसे बचा लो। व्याधकी भाँति बीन बजाकर हिरनियोंकी भाँति रिझाकर हमें विष भरे बाणोंसे

आपने विद्ध कर दिया है। अब हम अधमरी-सी पड़ी हैं। न भली भाँति मरी ही हैं न जीवित ही। हम व्याकुल बनी दशों दिशाओंमें भटक रही हैं, इस बाणको शरीरसे निकालनेकी प्रार्थना कर रही है। अपने दर्शन रूप अमृतको हमारे ऊपर उड़ेलकर हमें नीरोग बनाकर अपना लो। श्यामसुन्दर! हमें दासी न भी मानो तो हमारा एक तुमसे सम्बन्ध भी है।

एक सखीने पूछा—"तुम्हारा श्यामसुन्दरसे सम्बन्ध क्या है?"

वह बोली—"श्यामसुन्दरको व्रजभूमि अत्यन्त प्रिय है। उसी व्रजमें वास करनेवाली हम व्रजवासिनी व्रजाङ्गनायें हैं। प्यारेके सम्बन्धकी सभी वस्तुएँ प्यारी लगती हैं। उनके वस्त्रोंकी गन्धभी सुखकर होती है। व्रजभूमिके सम्बन्धसे ही हमें दर्शन दो। निर्दय होकर हमारा वध मत करो।

इसपर एक गोपी बोली—श्यामसुन्दर तो यहाँ हैं नहीं। उन्हों-ने किसी अस्त्रका भी प्रयोग नहीं किया? अंगोंमें घाव भी दिखाई नहीं देता। फिर तू बार बार वधका प्रयोग क्यों कर रही है?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उस सखीकी बात सुनकर जो कह रही थी, वह तो मूर्छित-सी होकर अचेत बन गई। उसे तो शरीरकी सुधि ही न रही। उसके समीप ही बैठी दूसरी सखीने यह बात सुन ली। वह कुछ देरतक सखीके प्रश्नको सोचती रही, तदनंतर वह उत्तर देनेको प्रस्तुत हुई।

छप्पय

हमरे तन, मन, प्रान, कर्म सब तुम हित प्रियतम।
तव प्रसन्नता हेतु करें धारन जीवन हम॥
जिन नयननि तव रूप लख्यो पुनि और न भावैं।
सुने श्रवण तव वचन अन्य पटतर नहिं आवैं॥
नस्यो प्रियतमा प्रेयसी, को मद अब दासी भईं।
आओ, दरशन देउ अब, बन बन हूँढ़त थकि गईं॥

श्रीकृष्ण कटाक्ष बाण

[८८५]

शरदुदाशये साधुजातसत्,
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका,
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ३१, अ० २ श्लो०)

छप्पय

वनितनि बन्धन करन बधिकको बेष बनायो।
सुन्दर कोमल मृदुल रूपको जाल बिछायो॥
मोहकता कण फेंकि मधुर स्वर बेनु बजावें।
गाइ सुखद संगीत मृगिनि सम नारि फँसावें॥
भृकुटि धनुष विष बुझे सर, सैंन नैंन सरसाइकें।
तकि मारे घायल करें—निरखें सतत सिहाइकें॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! गोपिकायें गीतगाती हुई कह रहीं हैं—"हे सुरतनाथ! हम आपकी बिना मोलकी क्रीत दासियाँ हैं। आप अपने शरद कालीन सरोवरमें समुत्पन्न सुन्दर सरसिजोंके मध्य भागकी शोभाको भी हरनेवाले नयनोंकी चोटसे मार गये हैं। हे वर-देनेवाले! हम तुमसे पूछतीं हैं, क्या यह वध करना नहीं है?

वध दो प्रकारसे होता है एक तो विषसे, जलसे, अग्निसे *तथा शस्त्रादिसे दूसरा वध चेष्टा आदिसे होता है ऐसी-ऐसी* औषधियाँ हैं, कि विषसे मरे आदमी उनसे जी सकते हैं। कश्यप नामके मुनिने तक्षक द्वारा जलाकर भस्म किये वट वृक्षको पुनः हरा भरा कर दिया था। शस्त्रसे आदमी मर ही जाय सो बात नहीं। शस्त्र लगने पर भी आदमी नहीं मरते, केवल घाव हो जाता है, कुछ दिनोंमें घाव पुर जाता है, किन्तु किसी प्यारेका कटाक्षबाण हृदयमें चुभ जाय, तो उसका घाव असाध्य हो जाता है, वह बाण प्राणोंके ही साथ निकलता है। उसकी पीड़ा निरंतर बनी रहती है। इसीका नाम अशस्त्र वध है। नीतिकारों ने तीन बातोंको अशस्त्र वध बताया है। गुरुजनोंका "तू" कहकर अपमान करना उनका अशस्त्र धध है। राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करना और पत्नीको शैयासे पृथक् कर देना ये भी अशस्त्र वध कहाते हैं। किन्तु हमारी दृष्टिमें ये भी अशस्त्र वध नहीं हैं *इनकी भी चिकित्सा है।*

महाभारत युद्धमें कर्णके बाणोंसे व्यथित होकर धर्मराजने अर्जुनके गांडीवको बुरा-भला कहा। अर्जुनकी प्रतिज्ञा थी, "जो मेरे गांडीवको कोसेगा उसका मैं वध कर डालूँगा।" प्रतिज्ञानुसार वे अपने बड़े भाईका सिर काटने चले। भगवान् वासुदेवने उन्हें रोका। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाकी बात कही। भगवान्ने कहा—"बड़ोंको तू कह देना, उनका अपमान कर देना उनका वध है। तुम धर्मराजका अपमान कर दो।" अर्जुनने वैसा ही किया। पीछे उन्हें अपने कर्म पर पश्चात्ताप हुआ। स्वयं आत्मघात करके मरनेको उद्यत हो गये। तब भगवान् ने इसका भी प्रायश्चित्त बताया 'तुम अपनी प्रशंसा अपने आप करो, यह तुम्हारी मृत्युके ही तुल्य है।' अर्जुनने यही किया दोनोंका मनोमालिन्य दूर हो गया। अशस्त्र वधका

भी प्रतीकार हो गया।

बहुतसे राजाओंकी प्रजाके लोगोंने आज्ञा उल्लंघनकी है, राजाओंने उन्हें बुलाकर उनके कष्टोंको दूर कर दिया है कुछ दिनोंमें मनोमालिन्य दूर हो गया। राजा-प्रजामें पुनः प्रेम भाव हो गया। अतः राजाकी आज्ञोल्लंघनकी भी चिकित्सा है।

गौतम मुनिने अपनी पत्नीके मानसिक व्यभिचारको देख कर उसे शैयासे ही पृथक् नहीं कर दिया था, पाषाणवत् बना दिया था। सहस्त्रों लक्षों वर्षों तक वह शिलाके समान पतिसे पृथक् होकर पड़ी रही किन्तु कौशल्यानन्दवर्धन जानकी जीवन अवधकुलमंडन भगवान् रामचन्द्रकी चरण धूलिके स्पर्शसे वह पुनः पावन बन गयी। महर्षि गौतमने उसे निष्पाप समझकर सहर्ष शैयाका अधिकार दिया, उन्हें पत्नी रूपमें स्वीकार किया। अतः शैयासे पृथक की हुई मृतक सदृश पत्नी पुनः जिलाई जा सकती है, किन्तु काले कृष्णकी कटाक्ष चोटसे जो घायल हुई हैं उनकी चिकित्सा न आज तक हुई है, न है और न होगी। उन्हें तो जीवन भर तड़फना ही होगा।

श्रीकृष्ण मधुराति मधुर हैं। उनकी ऐश्वर्य माधुरी, लीला माधुरी, रूप माधुरी और वेणु माधुरी ये चारों अनुपमेय हैं। इनकी कहीं समता नहीं उपमा नहीं। उनकी एक-एक चेष्टाएँ मधुर हैं आकर्षक हैं उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग सुरम्य है। अत्यन्त मनमोहक रुचिर और आकर्षक हैं। तेज, बल, दया, ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य इन सबसे वे परिपूर्ण हैं। उनकी वाणी मधुराति मधुर हैं। वे दक्ष हैं, कृतज्ञ हैं सुदृढ़व्रत हैं। चतुर हैं, विदग्ध हैं। शुचि हैं वशी हैं, शान्त हैं दान्त हैं। क्षमाशील, गम्भीर, धृतिमान सम, वदान्य, शूर करुण, साधु समाश्रय तथा नारीगण मनोहारी हैं। सारांश यह कि वे सर्वगुण सम्पन्न हैं। उनकी शोभा कोटि कन्दर्पोंसे भी बढ़कर है। उनका नाम ही

इतना आकर्षक है, कि किसी सहृदय पुरुषके सहसा कर्ण कुहरोंमें पड़ जाय, तो वह पागल हो जाय। उनकी बाँसुरीध्वनि इतनी मोहक है, कि उसकी स्वरलहरोंमें जो पडा वह घर द्वार कुटुम्ब परिवार शून्य बना और जिसने उनका त्रिभुवन मोहन रूप निहार लिया, उसके लिये तो फिर कुछ पूछना ही नहीं, वह तो फिर निष्काम बन गया। उसके रोगकी कोई चिकित्सा नहीं कोई उपाय नहीं। असाध्य व्याधि है।

श्रीकृष्ण कटाक्षबाण स्वभाव से टेढ़े हैं। टेढ़े बाण घुस तो जाते हैं। किन्तु निकलते नहीं। विष बुझे होनेसे वे प्राणोंको लेकर ही निकलते हैं। लौकिक बाण कभी-कभी लक्ष्यभ्रष्ट भी हो जाते हैं, चूक जाते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण का कटाक्ष-बाण अचूक है,वह जिसके उद्देश्य से चलाया जाता है, उसे वेधकरही मानता है। व्यर्थ तो कभी होता ही नहीं। श्रीकृष्णके मुखको कोई चन्द्रकी उपमा देते हैं, कोई कमल की। लौकिक दृष्टि वाले और उपमा कहाँ से लावेंगे। किन्तु वह मुख अनुपमेय है, इतनाही कहा जा सकता है वह सुन्दराति सुन्दर है। मनोज्ञ है, आकर्षक है। श्रीकृष्णका अनुपम आनन कभी म्लान नहीं होता वह सदा मंद-मंद मुसकानसे आवृत रहता है। यदि प्यारीजीके विरहमे कभी म्लान-सा भी दिखाई देता है, तो वह और भी आकर्षक बन जाता है। नहीं तो वह स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसितसे युक्त ही बना रहता है। स्मित कहते हैं मुसकानेको। मुसकानमें यह होता है नेत्र विकसित हो जाते हैं उनमे अनुराग छा जाता है, कपोल तनिक उठ जाते हैं। दाँत दिखाई नहीं देते। इस मुसकानमें ऐसा जादू है कि अच्छे अच्छे धैर्यवालों का धैर्य छूट जाता है। मुसकान सीधी हृदयपर चोट करती है। हसित उसे कहते हैं जिसमे नेत्र कपोल विकासके साथ दाँतोंका अग्रभाग कुछ दीख जाय। विहसित उसका नाम है नेत्रोंमें अनुराग छा

कपोल पीछे की ओर सिकुड़ जायँ दाँत पूरे दीख जायँ और नासिकासे तथा मुखसे वेगसे स्वांस और अस्फुट शब्द निकल पड़ें। अवहसित वह हँसी कहलाती है जिसमें नाकके दोनों नथुने फुल जायँ नेत्र बन्द हो जायँ और स्पष्ट शब्द हों।'अपहसित उसे कहते हैं नथुने फुल जायं, नेत्र बन्द हो जायँ आँखोंमें आँसू आ जायं, सिर कंधा हिलने लगे। मुख खुल जाय। अतिहसित उस हँसी का नाम है जिसमें हँसनेवाला अपने शरीरके वेगोंको रोक न सके। स्वतः ही दोनों हाथों की ताली बज जाय नासापुट संकुचित हो जायँ, मुख फट जाय अंग क्षतविक्षत हो जायँ। हँसते हँसते लोटते पोट हो जायँ। बार-बार दीर्घ स्वास लेने लगे। हँसी रुके ही नहीं। इसीका नाम अतिहसित है। ये सब हसित अत्यंत प्रेममें हँसीकी बातों में प्रियजनों की गोष्ठीमें होते हैं। इन सब गोपिकाओंने क्रीड़ामें युवतियोंके साथ एकान्तमें ये सब हँसीकी चेष्टायें देखी हैं। श्यामसुन्दरके नेत्र स्वाभाविक ही विशाल हैं चंचल हैं, किन्तु जब वे स्मित और हास्यकेकारण विकसित हो जाते हैं,तो इतने आकर्षक बन जाते हैं कि फिर उन्हें कोई भुलाना भी चाहे तो नहीं भूलते। जब वे अन्तर्हित हो जाते हैं— छिप जाते हैं, नेत्रोंके सम्मुखसे हट जाते हैं, तो बड़े-बड़े विशाल काली-कली टेढ़ी भौहोंसे युक्त तथा कुटिल कटाक्षों से भरे हुए नयन याद आते हैं। तब हृदयमें हूक-सी पैदाकरते हैं। उस समय विचित्र दशा हो जाती है। उसे न मृत्यु ही कह सकते हैं न जीवन ही। बीच की अर्ध मृतक अवस्था बन जाती है, जैसे विष बुझे बाणसे घायल हुई हरिनी इधर उधर तड़पती हुई दौड़ती है और अन्त में थककर गिर जाती है, वही दशा श्रीकृष्णके अन्तर्हित होने पर उन विरहिणी ब्रजाङ्गनाओं की हुई थी। वे श्रीकृष्णकी एक-एक चेष्टाओंकोस्मरण कर करके शून्य मे उन्हें सुना रही हैं। मानों हृदयस्थ हृदयेश्वरको ही वे उपालम्भ दे रही हों।

श्रीकृष्ण कटाक्ष बाण

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! गोपिकायें श्रीकृष्णके दिखाई न देने पर भी उनसे कह रही हैं—"हे प्यारे ! तुम सुरत सुखके स्वामी हो। तुमसे हमें जो सुरत सुख प्राप्त हुआ है वह संसार में अन्य कहाँ मिल सकता है ? तुम देखनेमें तो बड़े भोले-भाले सीधे सादेसे लगते हो, किन्तु हो बड़े खोटे। बड़े काइयाँ हो, छिपे हुए बधिक हो। बधिकका बाण कभी व्यर्थ भी हो जाता है किन्तु तुमतो लक्ष्य भेदी हो। जहाँ बाण मार देते हो फिर उसे निकालना सीखे ही नहीं। विशेषकर तुम्हारी शूरवीरता इन अबलाओं परही चलती है। निर्बलोंका मारना उन्हें घायल करना भला यह कोई अच्छी बात है ? तुम कहोगे—मैं वध कहाँ करता हूँ ? मेरे पास न कोई अस्त्र है न शस्त्र है। न जाल है न अन्न कण है।" सो इस बातको तो हमही जानती हैं, तुम साधारण बधिक नहीं, विचित्र बहेलिया हो, तुम्हारी वस्तुएँभी सभी विचित्र हैं। तुमने सुन्दरता, कोमलता, मृदुता, सरलता तथा वांशता आदि तन्तुओंसे एक सुदृढ़ जाल बिछाया है। उसे अपने आनन रूप अरण्यमें तान दिया है। उसमें मोहकतासे भरे मंद मंद मुसकान रूप अन्नकण बखेर दिये हैं और आप भौंहें रूपी धनुष पर कटाक्ष रूप बाणोंको साधे हम हरिनी रूपी मजाङ्गनाओं पर चोटें करने के निमित्त कदम्बकी ओट से मोहक मुरली बजाते हैं। काम वर्धक तान छेड़ते हैं। हम अपने गृह कार्योंमें व्यग्र हुई उस ध्वनिको सुनकर उसके आकर्षण से अवश हुई खिंची चली आती हैं। कोईतो धन देकर दासी खरीदी जाती है, तुम तो लोभी और स्वार्थी दोनोंही हो। न एक छदाम मूल्य देते हो न फंसी का दुःखही देखते हो, कटाक्षोंकी चोट मारकर घायल कर तोतही और बिना मोलकी दासी बना लेते हो। अच्छा यही सही। से बनें या अनिच्छासे तुम्हारी बिनामोलकी क्रीतदा हम बनहीं गयीं। अब घरबारके काम की तो हम रही

अबतो तुमने हमें विवश बना लिया। हमारा जो भी कुछ धर्म कर्म रूपी धन था, उसकाभी तुम चोर शिखामणिने अपहरण कर लिया। यहाँ तक कि लज्जाके निवारणार्थ हमारे वस्त्र थे उनको भी तुमने चुरा लिया। सब प्रकार से असहाय बनाकर हमें यहाँ एकान्तमें बुलाकर छोड़ दिया। क्या यह बिना शस्त्रके हम अबलाओंका वध नहीं है? क्या यह तुम्हारा अन्याय नहीं है? प्यारे! कैसाभी स्वार्थी हो अबलाओंपर तो वह भी दया करता है। चोर डाकू हत्यारेभी अपनी प्रियाओंको हृदयसे लगाते हैं, उन्हें प्यार करते हैं। हम तुमसे और कुछ नहीं चाहती। तुमने हमारा सर्वस्व अपहरण किया अच्छाही किया, हमें घर बार बिहीन बनाकर बनमें अपने चरणों के निकट बुला लिया यह भी अच्छाही किया। किन्तु कुछ तो दया करो। इतनी निरपराध स्त्रियोंके वधका जो तुम्हें पाप लगा है, उसका कुछ भी तो प्रायश्चित्त करो। हम जलके बिना जैसे मछली तड़फड़ाती है, वैसे तड़प रही हैं, बिलबिला रही हैं। अपने दर्शन रूप जलसे हमारे अंगोंको सिंचन करके हमें जीवन दान दो, तुम्हें बड़ा भारी पुण्य होगा। सब पापों से तुम छूट जाओगे। यदि दर्शन रूप अमृत पिलाकर इतनी मरती हुई अबलाओंको तुम बचालोगे, तो तुम अक्षय पुण्यके भागी बनोगे। श्यामसुन्दर आओ आओ। आजाओ प्यारे! बहुत हो चुका अब अधिक विकल न बनाओ। यदि तुम्हें हमें मारना ही अभीष्ट था, तो पहिले तुमने हमें क्यों बचाया? हमें तो देव की ही ओरसे कई बार मृत्युका सन्देह मिल चुका था। मृत्यु के हम मुखमें ही चली गयीं थीं। आपने ही दौड़कर हमें मृत्युके मुख से बचा लिया था। हमें मरने नहीं दिया था। जब दूसरेके द्वारा मारे जाने पर तुमने हमारी रक्षा की तो अब तुम स्वयं ही हमारा वध क्यों कर रहे हो? क्यों हमें बिलखा रहे हो। प्यारे अब बहुत हो

गया। अब देरी करनेसे अनर्थ हो जायगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार गीत गाकर जब यह गोपी चुप हो गयी, तो श्रीकृष्णने कहाँ-कहाँ हमारी रक्षाकी, इस बातके स्मरण आते ही एक अन्य गोपी गोविन्दके गुणोंका गान करने लगी। उसके भी गीतको आप दत्त चित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

कायर कपटी कुटिल कामिनीघातक कारे।
तीखे बान कटाक्ष ताकि अबलनिमहँ मारे॥
घायल सिसकति फिरहिँ बान तनतैं न निकारें।
छलिया छिपिकैं हँसत न आओ सतत पुकारें॥
दरश सुधा हित दयित हम, दुःख दुसह दारुण सहें।
बिना मोलकी किंकरी, कृष्ण कृष्ण कबतें कहें॥

हे रक्षक ? रक्षा करो

[८८६]

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसात्,
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयाद्,
ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३१ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

वध करनो ही हतो हमें क्यों प्रथम बचायो ।
क्यों असुरनिकूँ मारि सबनिको दुःख छुड़ायो ॥
कुपित इन्द्रने उपल प्रलयके घन बरसाये ।
क्यों गोवर्धन धारि नाथ हम सकल बचाये ॥
क्यों दावानल पान करि, कालिय दहपै दुख हर्यो ।
क्यों अजगरके मुख घुसे, क्यों वत्सासुर वध कर्यो ॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे राजन् ! गोविन्दके गुणोंके गीत गाती हुई गोपिकायें कह रही हैं—"हे नर श्रेष्ठ ! आपने-हमारी विषैले जलसे अजगरसे, अघासुरसे, आँधी, वर्षा, बिजली, दावानल, वत्सासुर तथा मयात्मज व्योमासुरसे तथा अन्य अनेक प्रकारके संकटोंसे आनेवाली मृत्युसे हमारी रक्षाकी है ।

अपने प्रेमको प्रदर्शित करनेके अनेक उपाय हैं। हृदयके भीतर प्रेम छिपा हो, फिर मुखसे चाहे जो कहो सब प्रेम ही मिश्रित होगा। बाहर चाहे लू चल रही हो, वायु चाहें जितनी उष्ण हो, पंखेके नीचे बरफकी सिल्ली रखी हो, तो गरम वायु शीतल ही बहेगी। उष्ण ऋतुमें भी जाड़ा लगने लगेगा। इसी प्रकार भीतर प्रेम भरा हो और मुखसे कठोर बचन भी बोले जायँ तो हृदयको और पिघलाते हैं, प्रेमकी वृद्धि करते हैं। जिस वस्तुका प्रेमके साथ संस्पर्श हो जायगा वह सुखद हो जायगी, सरस हो जायगी मनोज्ञ हो जायगी और हो जायगी अत्यन्त आकर्षक हृदय हारिणी तथा अनुराग विवर्धिनी।

प्रेमहीन हृदयसे किसीको उपालम्भ—उलाहना—दो,तो सदाके लिये उससे वैर भाव हो जायगा, किन्तु वही उपालम्भ प्रेम भरित हृदयसे दो, तो उसमें कितनी मिठास आ जाती है। क्रोधमें भरकर किसीसे कहें—"जाओ! तुमसे हमारा क्या प्रयोजन! तुम हमारे होते कौन हो?" तो स्वाभिमानी पुरुष ऐसा कहने वालेका जीवन भर मुख न देखना चाहेगा, किन्तु ये ही ज्योंके त्यों वाक्य प्रेम भरित हृदयसे अपने प्रगाढ़तम स्नेहीसे कहे जायँ, तो उसके हृदयमें कितना अधिक ममत्व उत्पन्न हो जायगा। वह जानेवाला भी होगा, तो इन ममता भरे उपालम्भ वचनोंको सुनकर न जायगा। अतः प्रेममें अपने प्रेमीको खरी खोटी सुनाना—उसे उपालम्भ देना—यह भी प्रेमकी अभिवृद्धिमें प्रधान हेतु माना जाता है। प्रेममें भी जबतक सदा शिष्टाचारका ही ध्यान रखाजाता है तबतक वह निर्मुक्त नहीं। जहाँ सर्वत्र शिष्टाचारकी आवश्यकता प्रतीत न हो खरी, खोटी, भली बुरी, टेढ़ी सीधी जैसी चाहें तैसी एकान्तमें उनसे बातें कहलें समझो वहाँ निर्मुक्त प्रेम है। गोपिकायेंश्रीकृष्णके अपार प्रेमको पाकर उनके मुँह लग गयीं थीं। उन्हें उनसे कुछभी

कहनेमें संकोच नहीं होता था। भगवान् ब्रह्मादि देवोंकी वेदस्तुतियों से उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने अपनी प्रेयसियोंके मुखसे छली, कपटी, कितव, धूर्त, कारे तथा औरभी ऐसेही ममत्वपूर्ण शब्दोंको सुनकर सुखी होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन सब गोपिकाओंमें से कोई कोई शून्यमें श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कह रही हैं—"श्याम सुन्दर! सुना है तुम सबमें श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ पुरुषोंका काम यही है, कि दीनों पर दया करना, दुखियों के दुःखोंको हटाना, पीड़ित पुरुषोंको पीड़ासे बचाना। आर्तोंकी आर्तिको हरना, सदा परोपकारमें निरत रहना। किन्तु तुम इसके विपरीत आचरण कर रहे हो। हमें स्वयंही पीड़ा पहुँचारहे हो। अदर्शन रूप अस्त्रसे हम घुला घुलाकर मार रहे हो। कटाक्ष बाणोंसे घायल करके तुम छिपकर हँस रहे हो। हम तड़प रही हैं, रो रही हैं। तुम हँस रहे हो, प्रसन्न हो रहे हो। बड़े निर्दयी हो तुम, तुम्हारे हृदयमें तनिकभी दया नहीं। तुमनेही हमारे हृदयमें कामकी चिनगारी डालकर स्नेहकी फूँक मारकर उसे सुलगा दिया है और अब वह विरक्त बन गये हो। पहिले तो तुमने प्रेम बेलिको अपने प्यारे प्यारे मधुर वचनामृतों से उसे सींचा, जब वह बेलि पल्लवित और पुष्पित हुई, तो श्यामघन बनकर अमृतके स्थानमें उनपर उपलकी वर्षा कर रहे हो उसपर तुषाराघात कर रहे हो। उसे तुम्हें नष्टही करना है, तो उसकी जड़को काटदो उसे पाला डालकर उसे झुलासा क्यों रहे हो? जब तुम्हें उसे जड़मूलसे काटनाही अभीष्ट था, तो उसे पहिले बढ़ायाही क्यों? क्यों अमृत वचनोंसे स्वयं उसे अपने हाथोंसे सींचा? क्यों उसकी आलवाल बनाकर सब भाँतिसे रक्षा की। रक्षा करके जब उसके फलने फूलनेका अवसर आयातो उसमें विषकी अग्नि दे रहे हो। सूर्यके द्वारा उसकी नसोंमें विष पहुँचा रहे हो। क्या यही

साधुता है। सज्जन पुरुष तो अपने हाथसे लगाये हुए विष वृक्षको भी स्वयं नहीं काटते, तुमने हमें बड़े दुःखोंसे पहले दयाकरके बचाया है, मृत्यु के मुखमें घुसकर हमारा रक्षा की है। एकबार नहीं अनेकों बार हम समस्त व्रजवासी मृत्युके मुख में चले गये थे, किन्तु आप हमें हठ पूर्वक अपने बलपुरुषार्थसे निकाल लाये।'

कालियहृदमें महाविषधर कालियनाग रहता था, उसने वृन्दावनके समीपकी समस्त यमुनाको विषयुक्त बना रखा था। भूलसे गौओंने उस हृदका जल पानकर लिया। तुमभी उस हृदमें घुस गये। कालियने तुम्हारे श्री अंगको अपने अंगसे लपेट लिया था। सुनते ही हम सब वहाँ दौड़ी आईं तुम्हारी ऐसी दशा देखकर हम सबभी उस हृदमें डूबना चाहती थीं, हम सब उसी समय प्राण गँवा रही थीं, किन्तु आपने उस नागको नाथकर नीरसे निकाल दिया। उसे ब्रजसे बाहर भगा दिया। आपको हमें मारना ही अभीष्ट था, तो उसी समय हमें मरने क्यों नहीं दिया। हम उस विषैले जलमें डूबकर जब मर जातीं, तब तुम निकलकर सुखकी बंशी बजाते। हमारी हत्या तुम्हें अपने हाँथों भी न करनी पड़ती। हम स्वतः ही मर जातीं, तुम पापसे भी बच जाते। बाण कटाक्ष मारकर घायल करके तुम अदर्शन रूप विष उस घावपर छिड़क रहे हो। विरह रूप विषैली ओषधिकी बस्ति देकर सूईमें घावसे सम्बन्धित रक्त वाहिनी नसोंमें उस विषैली वस्तुको पहुँचा रहे हो। क्या ऐसा आचरण तुम्हारे अनुरूप है। स्वयं विषैले जलमें डूबकर हम मर रहीं थीं, तबतो हमें बचा लिया अब स्वयंही विष पिला रहे हो। तड़फा तड़फा कर मार रहे हो?

दुष्ट राक्षस अघासुर अजगर बनकर वनमें आगया हमारे भाई, भतीजे, पुत्र, देवर अन्य सम्बन्धी बालक

अजगरके मुखमें घुसकर बछड़ों सहित विषकी ज्वालासे मर गये थे। वे सब मर जाते तो हम सब भी उनके विरहमें तड़पकर मर जातीं, उस समय तुम स्वयं उस मृत्यु रूप अजगरके मुखमें घुस गये और उनसब प्यारे बालकोंको बचालाये। उस समय तुमने हमारे प्राणोंकी रक्षा क्या सोचकर की। मरजाने देते हम सबको,तुम्हें जब एकान्त ही प्रिय है,हमसे घृणा है तो इस चौरासी कोशके व्रजमें तुम अकेले कदंब पर चढ़कर सुखकी वंशी बजाते, हमारी विपत्तियोंसे अब तक रक्षा किस हेतु करते रहे? तुम्हें विरक्तही बनना था, तो हमारे साथ पहिलेसे इतनी अनुरक्ति क्यों बढ़ाई ? यह तो वधिकोंका काम है,कि पहिलेतो मेढ़ा को खिला पिलाकर मोटा बनाते हैं, जब वह बढ़कर मोटा हो जाता है, तो सहसा एक दिन उसके कंठपर छुरी चला देते हैं उसका वधकर देते हैं। ऐसा मत करो व्रजरक्षक ! अब तक तुमने हमारी रक्षाकी है तो अबभी करो, हमें दर्शन देकर कृतार्थ करो।

एक बार नहीं अनेकों बार हम सब तो मृत्युके मुखमें पहुँच चुकी थीं। वार्षिकी पूजा न करने पर मेघोंके राजा इन्द्र हम सब व्रजवासियों पर कुपित हुए। वे हमारा सर्वनाश करनेपर उतारू हो गये। वे गोप, गोपी, ग्वालबाल, बछड़े तथा समस्त गौओंका सर्वनाशका संकल्प कर चुके थे। उन्होंने प्रलय करनेवाले सांव-र्तक नामक भयंकर मेघोंको आज्ञा भी दे दी थी। उन मेघोंने प्रलयङ्कारी वर्षाकी, व्रजमंडलका संहार करनेके लिये बिजली तड़ तड़ाने लगी। पवन बड़े वेगसे बहने लगा। आँधीके कारण बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ने लगे। हमारे शकटों में जल भर गया। हम सब मृत्युकी अन्तिम घड़ियोंको गिन रही थीं। मरनेके लिये कटिबद्ध थीं, उस समय आपने उँगली पर गोवर्धन धारण करके वर्षा, आँधी और बिजलीसे हमारी रक्षाकी। हमें इन्द्रके कोपसे बचा लिया। सात दिनों तक आप गोवर्धनको बिना विश्रामके

धारण किये रहे। यदि तुम्हें हमें मारना ही था, तो उस समय इतना कष्ट सहने की आवश्यकता ही क्या थी? हमसे यदि तुम्हें घृणा ही थी, तो उसी समय मर जाने देते। तुम्हारा तो इन्द्र बाल भी बाँका नहीं कर सकता था। तुम तो सर्वेश्वर हो, निर्गुण, निराकार, निरीह निर्लेप और अद्वितीय हो। तुम्हें एकाकी ही रमण करना था, तो हम रमणियोंकी रक्षा आपने क्यों की?

एक नहीं अनेक असुर आये। उन सबका संकल्प यही था, कि हम ब्रजवासियों को मार देगें। वे नाना रूप रखकर आते थे कोई भभूड़ा बनके, कोई वत्स बनके, कोई अजगर बनके, कोई गदहा बनके इस प्रकार वत्सासुर, अघासुर व्योमासुर और न जाने कौन-कौन से असुर आये। सभी को आपने मारकर ब्रजकी रक्षा की हमें जीवन दान दिया। क्यों तुमने ऐसा किया? क्यों हमें सिर पर चढ़ाकर अब पत्थर पर पटक रहे हो? क्यों हमें स्वर्ग सुख दिखा कर नरक की यातना दे रहे हो? यदि तुमने दया वश हमारी रक्षाकी, तो अब वह रांड़ दया कहाँ भाग गयी? क्या वह दया सती नहीं थी, कोई इधर उधर की मन चली रखली थी, जो तुम्हारे हृदय मन्दिर से निकल कर भाग गयी? यदि अब तुम दयाहीन हो गये हो, तो जैसे असुरों का तुमने वध किया है, वैसे ही हमारा भी वध कर दो। हमारे प्राणों को लेलो, हमें सर्वथा मृतक बना दो। मरजीवाकी स्थिति क्यों बना रखी है। इस समय न हम मृतक ही हैं न जीवित ही। बार बार हमारी रक्षाकी है, तो एक बार और भी रक्षा करो। तुममें सामर्थ न हो सो भी बात नहीं। तुम साधारण गोप ही हो, सो भी बात नहीं। तुम गोप होने पर भी विश्वपति हो।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार गोपिकायें भगवान् के उपकारों को स्मरण कर करके वे उनके पूर्व कृत्यों के प्रति कृतज्ञता

प्रकट करती हुई भाँति-भाँति के उपालम्भ देने लगीं। वे भगवान् को गोपकुमार ही नहीं समझती थीं। उनकी दृढ़ धारणा थी, ये अखिल विश्वपति सर्वेश्वर सच्चिदानन्दघन हैं।

छप्पय

बार बार क्यों विपति उदधितैं नाथ बचाईं।
क्यों नटवर कर पकरि रासमहँ विहँसि नचाईं॥
क्यों कुंकुम मुख मल्यो प्रेम को खेला खेल्यो।
क्यों गोदी सिर धारि अमृत मुखमाँहि उड़ेल्यो॥
क्यों सरसायो नेह अति, ढीठ बनाई क्यों हमें।
अब दरशन बिनु देउ दुख, लाज न लागति क्यों तुमें॥

हे सर्वसाक्षी हमारो विनय सुनो

[६८७]

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्,
अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये,
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ।
(श्री भा० १० स्क० ३१ अ० ४ श्लो०)

छप्पय

नहिं नभमहँ हम कहें सुनो तुम सब कछु स्वामी ।
यशुमति सुतही नहीं आपु तो अन्तरयामी ॥
अबला हम अति दुखित आप चाहे मत मानो ।
अधिक कहा हम कहें आप घट घटकी जानो ॥
जानि हमारो हृदय दुख, दै दरशन जग यश लहो ।
जड़ चेतन जग जीव जे, तुम सबके हियमहँ रहो ॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपिकायें कह रही हैं—"हे सखे ! यह बाततो निश्चितही है, कि आप केवल यशुमति नन्दन ही नहीं हैं, अपितु अखिल देहियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। सम्पूर्ण संसारकी रक्षाके निमित्त ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर आपने सात्वतकुलमें अवतार धारण किया है।

प्रेम वस्तु एक है दो नहीं। भगवान सर्वत्र एक हैं उनमें द्वैतकी गंध नहीं। जीव उन्हीं एकको चाहता है अन्यको नहीं। किन्तु तनिक-सी भूलहो गई। जिसकी ओर उसका स्वाभाविक झुकाव होता है, उसे भगवान नहीं समझता। इसीलिये प्रेम करके भी दुःख पाता है, अशान्त रहता है, व्याकुल बना रहता है। चिन्ता उसे घेरे रहती है। नहींतो कितनी भी ठंड क्यों न हो, अग्नि के समीप जातेही ठंड भाग जायगी। जीवका जहाँभी आकर्षण हो, जिसमें भी उसकी निष्ठा हो जाय, उसे ही भगवान् का रूप समझ ले तो उसका बेड़ा पार है। हम लोग विषयोंके लोभसे आकर्षित होकर सुखके लिये दौड़ते हैं, किन्तु संसारी विषयोंमें सुख कहाँ, वे तो दुःखके आलय हैं। उनसे शांति न मिलकर और अधिक अशांति बढ़ेगी। हम प्रेम करें, तो किसी सीमितमें न करें। निःसीमसे प्रेम करें। व्यष्टिमें न करें, समष्टि में करें। एकको देखने वालेसे न करें, सर्वद्रष्टासे करें, तो हमारा वह प्रेम प्रेम है, नहींतो कामवासना है, व्यभिचार है। वही काम भाव यदि कृष्णमें हो जाय, तो उसीकी प्रेम संज्ञा हो जाती है। इसीलिये गोपियोंके सम्बन्धमें जहाँभी काम शब्द आवे, वहाँ उसे विशुद्ध प्रेमके ही अर्थमें समझना चाहिये। श्रीकृष्णके प्रति होनेवाले गोपियोंके प्रेमको काम कहनेकी परिपाटी पहिलेसे ही पड़गयी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गोपिकायें कह रही हैं—श्यामसुन्दर ! यदि हम तुम्हें सांसारिक जार पुरुष समझकर तुमसे प्रेम करतीं, तो हमारा यह व्यभिचार था, निन्दनीय कार्य था। हम यदि तुम्हें किसी एक माताका पुत्र समझतीं, अविद्योपाधिक एक जीव समझकर चाहतीं, तो यह दोष था। यद्यपि आप नन्दनन्दन कहाते हैं, अपने को यशुमतितनय बताते हैं और आप हैं भी। इस बातको हम अस्वीकार नहीं करतीं कि

आप गोपिकानन्दन नहीं हैं। अवश्य हैं, किन्तु गोपिका नन्द ही नहीं हैं। सबको आनन्द देने वाले हैं आपका आनन्द सीमित न होकर निस्सीम है। संकुचित न होकर विशाल है। आप किसी व्यष्टि क्षेत्रके ही साक्षी नहीं है, किन्तु समस्त देह धारी चर अचर प्राणियोंके अन्तःकरणोंमें समानस्वरूपसे साक्षी होकर वास करते हैं। आपका कोई एक मूर्तरूप नहीं। सभी आपके ही रूप हैं।

यह जो आपका त्रिभंग ललित, मोर मुकुट धारी, वनमाली स्वरूप है यह भी सत्य है। यह भी अविद्या, माया तथा प्रकृतिसे परे है। निर्गुणसे आप सगुण बन गये हैं। अमूर्त भी तुम्हारा ही रूप है, मूर्त होने पर भी उसमें कोई दोष नहीं आता, वह ज्योंका त्यों निर्लेप निर्विकार, सर्वसद्गुणाश्रय बना रहता है।

जब लोकमें विप्लव हो गया था, तब कमलासन ब्रह्माके समीप सभी देवगण गये और उनसे सब अपना दुःखनिवेदन किया। ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—"देखो भाई, तुम जो मुझे इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका—चतुर्दश भुवनोंका—एक मात्र अधीश्वर समझते हो, यह तुम्हारा भ्रम है। मैं भी स्वतन्त्र नहीं। मैं भी किसी की प्रेरणासे किसी के संकेतसे कार्य करता हूँ। तुम्हारा दुखड़ा मैं उनके सम्मुख निवेदन कर दूँगा, वे जो चाहें सो करें। तुम भी चलो मेरे साथ।" यों कहकर ब्रह्माजी सबको लेकर क्षारसागरके तटपर गये, किन्तु वहाँ स्वच्छ धवल दुग्ध के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मनुष्य हों, देवता हों, लोकपाल हों चाहें साक्षात् ब्रह्माण्ड नायक ब्रह्माजी ही क्यों न हों, कोई तुम्हें इन चर्मचक्षुओं से नहीं देख सकता है। हमारे ही चक्षुओंको आपने ऐसा बना दिया है, कि उसमें यह रूप निरन्तर बसा रहता है। इसीलिये कजरारी आँखोंमें निरंतर वास करनेसे तुम कारे हो गये हो, कृष्ण तुम्हारा नाम पड़ गया.

है, नहीं तो ब्रह्माने तो 'शुक्लाम्बरधरं विष्णुशशिवर्णं चतुर्भुजम्" कहकर आपकी स्तुतिकी थी। उन्होंने सफेद दुग्धमें से आपको चतुर्भुज रूपमें प्रकट किया। हमने आपको द्विभुज बना कर अपनी काली पुतलियों वाली काजरसे युक्त आँखोंमें छिपा लिया। मनुष्य जैसा स्वयं होता है, वैसे से ही प्रेम करता है। हमारे तो दो ही हाथ थे, हमने देखा तुम्हारे चार हाथ हुए तो हम आलिंगन कैसे करेंगी। अपनी बाहुपाशमें आपके चारों हाथोंको कैसे बाँधेगीं। तुम भी हमारी विवशता समझ गये होगे अतः ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर तुमने सबको तो दर्शन दिया नहीं। ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें ही प्रकट होकर उनसे अव्यक्त वाणीमें कह दिया। वह वाणी भी सभीने नहीं सुनी। केवल ब्रह्माजी ही उसे सुन सके। उनसे तुमने कह दिया—"मैं सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके निमित्त सात्वत कुल में—भक्तोंके वंशमें—अवतार धारण करूँगा।"

सो, हे जनार्दन! तुम अपनी प्रतिज्ञाको याद करो। जब तुम्हारा अवतार ही समस्त जगत्की रक्षाके निमित्त हुआ है तो हमें तुमने जगत्मे पृथक् क्यों कर दिया है? हम भी तो इस जगत्में ही जनमी हैं! हमारी रक्षा क्यों नहीं करते? हमारे तनकी तपनको क्यों नहीं बुझाते? हमें आकर अपने हृदयसे क्यों नहीं लगाते?

कुछ लोग इस संसारको तुमसे पृथक् समझते हैं। वे समझते हैं यह संसार हौआ है, हमें खा जायगा। यह हमें चक्करमें घुमाता रहेगा। मारता जिलाता रहेगा। दुःख देता रहेगा। अतः इसे दुःखका कारण समझकर सुखस्वरूप आपकी शरणमें जाते हैं। आप उनको अभय प्रदान करके अपनाते हैं, उनको दुःखसे छुड़ाते हैं, उनके भयको दूर करते हैं। जब तुम सबके भयोंको दूर करते हो, तो हम पर कृपा क्यों नहीं करते? हम भी तो इस

घोर वनमें अकेली भयभीत हो रही हैं। स्त्रियाँ एक तो स्वभाव से ही भीरु होती हैं, फिर अकेली तो और भी डर जाती हैं, रात्रिमें तो सभीको भय लगता है। हम कुछ और नहीं चाहतीं। हमारी केवल यही प्रार्थना है, कि समुद्रसे निकलनेपर लजाती हुई अनुरागवती कमलाका कोमल कर आपने जिस अपने करसे पकड़ा था, उसी कर कमलको सिरोंपर आकर रख दो। उस करके स्पर्शमात्रसे ही हम कृतकृत्य हो जायँगी। इतनेसे ही हमारी समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो जायँगी। उस कमनीय कामपूरक कोमल कर कमलके स्पर्शसे हमारी समस्त काम पीड़ा शान्त हो जायगी। हमारा शिर सार्थक हो जायगा वह सर्वश्रेष्ठ बन जायगा। किन्तु इतना ही करके भग मत जाना। सिर तो सौभाग्यशाली बन जायगा, किन्तु ये निगोड़ी अँखियाँ। हाय! ये तो स्पर्शसे सन्तुष्ट होने वाली नहीं। इन्हें तो रूप चाहिये; रूप। रूप भी बुरा बावरा नहीं चाहिये। सुन्दर चाहिये सुकुमार चाहिये, प्यारा-प्यारा सलौना सजीला चाहिये। ये दो आँखे जब किसी दो बड़ी-बड़ी आँखोंमें मिलकर चार हो जाती हैं, तो उनमेंसे झरझर करके अनुराग झरने लगता है। ये आँखें बड़ी चंचला है, इन्होंने बहुत आँखोंको देखा, किन्तु ये तुम्हारी आँखों को देखकर निहाल हो गयीं धन्य हो गयीं। सुनते हैं स्त्री स्त्रीके रूपको देखकर मोहित नहीं होती। किन्तु ये हमारी निगोड़ी अँखियाँ तुम्हारी आँखोंपर मोहित हो गयी हैं, निरन्तर ये उन्हें देखते ही रहना चाहती हैं। जो आँखें मनोहर मुस्कान युक्त मुखपर बैठकर चंचलता करती रहती हैं, जिनमें से अनुराग का स्रोत निरन्तर बहता रहता है, जो भक्त जनोंके समस्त अभि-मानों पर पानी फेरने वाली हैं। जो स्मित, हसित, प्रहसित और अतिहसितके कारण विकसित और बहती रहती हैं, उन आँखों को उनके आसन रूप कपोल और अवनी रूप आननके

हमें दरशन करा दो नाथ ! अबलाओंके साथ अन्याय क्यों कर रहे हो ? क्यो हमें व्यर्थमें भटका रहे हो ?

अच्छा एक काम और करना, उसे मत भूल जाना भला! वही तो आवश्यक कार्य है। तुम सिरपर हाथ रखकर हमारे नैनोंमे नयन मिलाकर मुँह मटकाकर हमें विकल बनाकर भाग गये, तब तो हम कहीं की भी न रहीं जी! दुःख तो हृदयकी वस्तु है। अनुभूति तो हृदय से होती है। ब्रह्माबाबाने हम युवतियों के हृदयको स्थूल कठोर तथा उन्नत बनाया है और इस हृदयमे ही कामको ठूँस ठूँस कर भर दिया है। हमने सुनाभी है और हमें अनुभवभी है आपके चरण अत्यन्तही कोमल हैं। कमलकी पंखुड़ियों से,पीपर के अति कोमल पत्तों से भी कोमल हैं नवनीत से भी अधिक स्निग्ध हैं। बालकके मृदुहास्यसे भी अधिक आकर्षित हैं। स्वर्गीय ललनाओंके अधरामृतसे भी अधिक मधुर हैं। वे जब अनावृत्त अवनिके वक्षःस्थल पर पड़ते हैं तो उसकीभी कठिनता दूर हो जाती है। वहभी अत्यन्त कोमल बन जाती है। आप एक बनसे दूसरे बनमे नंगे पैरों ही पशुओंके पीछेपीछे पैदलही पर्यटन करते रहते हैं। जो इन मृदुल चरणोंकी शरण में आजाते हैं। उनके पाप, ताप, संताप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं। टेढ़े सीधे हो जाते हैं, विषैले इनके स्पर्श से निर्विष बन जाते हैं। कालिय नागकी फणावली पर पड़तेही वह विषहीन सीधा सादा बन गया। उन मदभरे मावाभरे चरणोंको हमारे उभरे हुए वक्षःस्थलों पर रख दीजिये। इनके काठिन्यको दूर कर दीजिये। इनमें जो कामरूप काँटा चुभ गया है, उसे अपने सुखद स्पर्शसे निकाल दीजिये। हे श्याम ! इसे मत भूल जाना भला ! हृदयपर चरण अवश्य स्थापित कर देना अच्छा ! इन शीतल, सुखद, अमृतस्रावी चरणकमलोंकी शीतलतासे हमारी विरहाग्निको शान्तकर दीजिये। कर दोगे न, श्याममुन्दर !"

सूतजी कहते हैं-"मुनियो! इस प्रकारगोपिकायें विरहाग्नि में जलती हुई वृन्दावन विहारी से विविध प्रकार की प्रार्थनायें करने लगीं। वे प्रार्थनायें इतनी हैं, कि उनका मैं विस्तार करूँ, तो अपने जीवन में पारही न पा सकूंगा, अतः कुछ और कहकर मैं इस गोपी गीत के प्रसंग को समाप्त करूँगा।

छप्पय

कृष्ण! कृतारथ करहु कृपा कीजे कछु हमपै।
धरहु दया करि कान्त कामपूरक कर सिरपै॥
है हमरो हिय कठिन काम कंटकहू जामें।
तब अति कोमल चरन कठिनकूँ मृदुल बनामें॥
धरहु चरन हियपै हुलसि, हरहु कामपीड़ा सकल।
सुने बचन जबतैं सरस, मधुर भई तबतैं विकल॥

कर्ण कुहरों को कृतार्थ कर दो

[६८८]

तव कथामृतं तप्तजीवनम्,
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम्,
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥❀
(श्री भा० १० स्क० ३१ अ० ९ श्लो०)

छप्पय

प्रिया पिपासित फिरहिँ मधुर कछु पेय पिआओ ।
अधरामृत मुख भरो निठुर ! कछु पुण्य कमाओ॥
प्याओ प्यारे परम स्वादयुत मीठो मीठो ।
दुखहर अतिशय सुखद सौति वंशी को जूठो ॥
कान कान्ह की कथा सुनि, होहिँ कृतारथ रस लहहिँ ।
बड़भागी ते जगत् नर, कथा तुम्हारी जे कहहिँ ॥

❀श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपिकायें कह रही हैं—"हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारी अमृतमयी कथायें सन्तप्त जीवों को जीवनदान देने वाली हैं, कविजनों द्वारा कीर्तित हैं, समस्त पापों को नाश करने वाली हैं, सुनने में अत्यन्त ही मधुर हैं तथा सुख शान्ति प्रदायिनी हैं । उन कथाओं को जो भूलोक में कहते हैं प्रचार करते हैं, समझो संसार में वे ही सबसे श्रेष्ठदान देने वाले दाता हैं ।

समस्त इन्द्रियों का पृथक् पृथक् आहार है। आँखें सदा यही चाहती हैं, प्यारे को सदा अपलक भाव से निरन्तर उसी प्रकार देखती रहें जैसे मछली जलको देखती रहती है। कभी उससे विलग नहीं होती है। होते ही उसकी आँखें पथरा जाती हैं। घ्राणेन्द्रिय चाहती है, प्यारे के शरीर सुगन्धि को सूँघते रहें। प्यारे के शरीर से प्यारे के वस्त्रोंसे, प्यारेकी पहिनी मालाओंसे तथा प्यारेकेशरीर से सम्बन्धित सभी वस्तुओं से एक अनिर्वचनीय गन्ध आती है। घ्राणेन्द्रिय उसे दूर से ही पहिचान लेती है। रसना चाहती है, प्यारेके उच्छिष्ट अधरामृत प्रसादको ही पावें। प्यारेकी सीथ प्रसादी मिले, तो उस पर सब कुछ वारा जा सकता है। उच्छिष्ट प्रसाद उच्छिष्ट ताम्बूल तथा उच्छिष्ट पेय पदार्थ इनसे रसना तृप्त होती है। स्पर्शेन्द्रिय चाहती है, किसी प्रकार प्यारे के श्री अंग का सुखद स्पर्श प्राप्त हो, अपने हाथों उनकी कुछ सेवा कर सकें। उन्हें स्वयं खिला पिला सकें। इससे स्पर्शेन्द्रियको अपार आनन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार कर्ण चाहते हैं,प्यारे केमधुराति मधुर शब्द सदा कानों में पड़ते रहें। प्यारे जब सम्मुख हों, तब तो उनके कमल मुखको जोहते हुए उन्हीं के वचनों को सुनें। वे सम्मुख न हों, तो परोक्ष में उन्हीं के सम्बन्ध की बातें सुनने को मिलें। जब श्रोत्रों को प्यारेसे अत्यन्त अनुरक्ति तथा आसक्ति हो जाती है, तो फिर परचर्चा सुहाती ही नहीं। दूसरे के सम्बन्धकी बातें विषके समान लगती हैं। प्यारे का जहाँ शब्द सुना कि कान हरे हो जाते हैं। मानों किसी ने अमृत उड़ेल दिया। प्यारे की जो चर्चा करता है, उनकी जो प्रेम पूर्वक कथा कहता है, वह भी अत्यन्त प्यारा लगता है। उसकी बात सुनते सुनते कभी तृप्ति ही नहीं होती। यदि शरीरमें कान न होते, केवल नेत्र ही रहते, तो संसार में कोई भी विरही जीवित न रहते। प्रिय वियोग में प्रियतम के आँखों से ओझल होते ही—वे शरीर को त्याग देते। विरहियों

को कण ही जिला रहे हैं, वे ही संजीवनी ओषधिको सम्पूर्ण शरीरमे पहुँचा कर चैतन्यता प्रदान करते हैं। प्यारे सम्मुख बने रहें, तो आँखें भरपेट उनकी रूप-सुधाको पीती रहती हैं। वे अन्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें सोचती ही नहीं। प्यारेके रूपासवका पान कर-करके सब अंगोंमें मादकता भरती रहती हैं। प्यारेके परोक्ष होते ही वे विकल बनके बहने लगती हैं। इनके विकल होते ही अंग प्रत्यङ्ग समस्त विकल हो जाते हैं। उस विकलताको सम्हालनेमें—सब अंगोंकी गतिको बनाये रखनेमें—कर्ण ही समर्थ होते हैं। प्यारेकी कमनीय कथा सुननेको मिलती रहे, तो प्यारेके पीछे भी मनमें गुदगुदी उठती है। चित्त चाहता है प्यारेकी कथा सुनाने वाले को क्या दे डालें। उसके सामने कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हाय! जो प्यारेकी कथा सुनाता है उसे क्या दे डालें? कैसे उससे उऋण हों?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकायें गाती हुई कह रही हैं—"हे कमलनयन! तुम जो शहदसे अधिक मीठी-मीठी बातें बनाते हो, उनसे हमारा मन मोहित हो गया है। तुम्हारे मुख कमलसे जो मधुर वाक्य रूप मकरन्द झरित होता है, उसको पान करके हमारा मन रूप मधुप मत्त हो गया है। उसके उन्माद में इसका अब अन्त ही होना चाहता है, तुम इसपर अपना अधरामृत छिड़क दो, तो यह जीवित हो उठे। क्या इतनी असहाय निरीह अबलाओंको जीवन दान दे कर तुम पुण्य और यशके भागी न बनोगे?

इस समय हम केवल आपकी पापनाशिनी, शान्तिदायनी, मङ्गल विवर्धिनी, अमृतमयी, कविजनकीर्तित कमनीय कथाओं के ही सहारे प्राण धारण किये हुए हैं। ये ही कथायें हमारी अवलम्ब हैं, सहारा हैं, परन्तु इनसे कब तक जीवेंगी? जब तक तुम दर्शन न दोगे, तब तक चित्त तड़पता ही रहेगा। अन्तः

करण उद्विग्न रहेगा, मनमें व्याकुलता ही बनी रहेगी। प्यारे! हमारे साथ अन्याय मत करो।

तुम बड़े ठगिया हो। दूसरों की चिकनी चुपड़ी बातें कहकह कर फँसानेमें बड़े निपुण हो। रोते को हँसा देते हो। हँसतेको रुला देते हो। तुम्हारे मुखपर मुसकान क्या है, एक प्रकारका विचित्र जादू है। जिन्होंने अपनी आँखोंसे उस मंगलमयी मंदमंद मुसकानको देखा है उनकी बात तो छोड़ दीजिये। उनकी क्या दशा होती होगी, यहतो अवर्णनीय विषय है, अजी, जो एकान्त में बैठकर उस प्यारी मुसकानका ध्यानभी कर लेता है, उसका हृदय पानी पानीहो जाता है धैर्य छूट जाता है। उसी मुसकानका जादू तुमने हमारे ऊपर करदिया है। फिर तुम एकही जादू जानते हो सो भी बात नहीं। तुम सर्व विद्या निपुण हो। फँसाने की समस्त चालोंमें तुम पंडित हो। मुसकानके सहित जो तुम्हारे कमनीय प्रणय कटाक्ष हैं, वे तो विष बुझे बाणोंका काम करते हैं। हँसीकी अनेक हृदय हारिणी कहानियाँ कहकह कर तुम हँसाते हो, विविध भाँतिकी ठठोलियाँ कर करके हमारे चित्तोंको चुराते हो। इन सभी बातोंका स्मरण कर करके हम अब अत्यन्त दुखी हो रही हैं। अब प्रकट हो जाओ, रोती हुई रमणियों को हँसाओ। प्यारे हँसाओ!

अच्छा! एक बात हम पूछें आपसे? बताओगे? उत्तर दोगे? देखो, कमलकी कोमल पंखुड़ियोंसे भी अत्यधिक कोमल तुम्हारे चरण कमल जब इस कंटक कंकड़ युक्त ऊबड़ खावड़ अवनि पर निरावरण पड़ते होंगे, तो क्या उन्हें कष्ट न होता होगा? उन्हें चाहें कष्ट न हो, किन्तु हमेंतो उसके स्मरण मात्रसे ही कष्ट हो रहा है। आपके युगल चरण कैसे गुदगुदे हैं, कैसे कोमल हैं, उनमेंसे कैसी दिव्य सुगन्धि सदा निकलती रहती है। छुई मुईसे भी अधिक लजीले हैं, पके 'रसभरीसे भी अधिकलाल

को कए ही जिला रहे हैं, वे ही संजीवनी ओषधिको सम्पूर्ण शरीरमें पहुँचा कर चैतन्यता प्रदान करते हैं। प्यारे सम्मुख बने रहें, तो आँखें भरपेट उनकी रूप-सुधाको पीती रहती हैं। वे अन्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें सोचती ही नहीं। प्यारेके रूपासवका पान कर-करके सब अंगोंमें मादकता भरती रहती हैं। प्यारेके परोक्ष होते ही वे विकल बनके बहने लगती हैं। इनके विकल होते ही अंग प्रत्यङ्ग समस्त विकल हो जाते हैं। उस विकलताको सम्हालनेमें—सब अंगोंकी गतिको बनाये रखनेमें—कर्ण ही समर्थ होते हैं। प्यारेकी कमनीय कथा सुननेको मिलती रहे, तो प्यारेके पीछे भी मनमें गुदगुदी उठती है। चित्त चाहता है प्यारेकी कथा सुनाने वाले को क्या दे डालें। उसके सामने कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हाय! जो प्यारेकी कथा सुनाता है उसे क्या दे डालें? कैसे उससे उऋण हों?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकायें गाती हुई कह रही हैं—"हे कमलनयन! तुम जो शहदसे अधिक मीठी-मीठी बातें बनाते हो, उनसे हमारा मन मोहित हो गया है। तुम्हारे मुख कमलसे जो मधुर वाक्य रूप मकरन्द झरित होता है, उसको पान करके हमारा मन रूप मधुप मत्त हो गया है। उसके उन्माद में इसका अब अन्त ही होना चाहता है, तुम इसपर अपना अधरामृत छिड़क दो, तो यह जीवित हो उठे। क्या इतनी असहाय निरीह अबलाओंको जीवन दान दे कर तुम पुण्य और यशके भागी न बनोगे?

इस समय हम केवल आपकी पापनाशिनी, शान्तिदायनी, मङ्गल विवर्धिनी, अमृतमयी, कविजनकीर्तित कमनीय कथाओं के ही सहारे प्राण धारण किये हुए हैं। ये ही कथायें हमारी अवलम्ब हैं, सहारा हैं, परन्तु इनसे कब तक जीयेंगी? जब तक तुम दर्शन न दोगे, तब तक चित्त तड़पता ही रहेगा। अन्तः

करण उद्विग्न रहेगा, मनमें व्याकुलता ही बनी रहेगी। प्यारे! हमारे साथ अन्याय मत करो।

तुम बड़े ठगिया हो। दूसरों की चिकनी चुपड़ी बातें कहकह कर फँसानेमें बड़े निपुण हो। रोते को हँसा देते हो। हँसतेको रुला देते हो। तुम्हारे मुखपर मुसकान क्या है, एक प्रकारका विचित्र जादू है। जिन्होंने अपनी आँखोंसे उस मंगलमयी मंदमंद मुसकानको देखा है उनकी बात तो छोड़ दीजिये। उनकी क्या दशा होती होगी, यहतो अवर्णनीय विषय है, अजी, जो एकान्त में बैठकर उस प्यारी मुसकानका ध्यानभी कर लेता है, उसका हृदय पानी पानीहो जाता है धैर्य छूट जाता है। उसी मुसकानका जादू तुमने हमारे ऊपर करदिया है। फिर तुम एकही जादू जानते हो सो भी बात नहीं। तुम सर्व विद्या निपुण हो। फँसाने की समस्त चालोंमें तुम पंडित हो। मुसकानके सहित जो तुम्हारे कमनीय प्रणय कटाक्ष हैं, वे तो विष बुझे बाणोंका काम करते हैं। हँसीकी अनेक हृदय हारिणी कहानियाँ कहकह कर तुम हँसाते हो, विविध भाँतिकी ठठोलियाँ कर करके हमारे चित्तोंको चुराते हो। इन सभी बातोंका स्मरण कर करके हम अब अत्यन्त दुखी हो रही हैं। अब प्रकट हो जाओ, रोती हुई रमणियों को हँसाओ। प्यारे हँसाओ!

अच्छा! एक बात हम पूछें आपसे? बताओगे? उत्तर दोगे? देखो, कमलकी कोमल पंखुड़ियोंसे भी अत्यधिक कोमल तुम्हारे चरण कमल जब इस कंटक कंकड़ युक्त ऊबड़ खाबड़ अवनि पर निरावरण पड़ते होंगे, तो क्या उन्हें कष्ट न होता होगा? उन्हें चाहें कष्ट न हो, किन्तु हमेंतो उसके स्मरण मात्रसे ही कष्ट हो रहा है। आपके युगल चरण कैसे गुदगुदे हैं, कैसे कोमल हैं, उनमेंसे कैसी दिव्य सुगन्धि सदा निकलती रहती है। छुई मुईसे भी अधिक लजीले हैं, पके 'रसभरीसे भी अधिकलाल

और मृदुल हैं, हम अपने वक्षःस्थल पर उन्हें डरते डरते धारण किया करतीं थीं क्योंकि हमारा वक्षःस्थल अत्यन्त कठोर है, कहीं इन परम मृदुल चरणोंको कष्ट न हो जाय, किन्तु हाय ! तुमतो उन्हीं चरणोंसे इन इतनी कंकरीली पथरीली भूमिपर इस रात्रिमें कहीं अकेलेही विचर रहे होगे। वे चरण साधारण चरणतो हैं नहीं। वे शरणागत अनन्य भावुक भक्तोंकी भवभीति तथा सकल कामनाओंको परिपूर्ण करने वाले हैं, वे कमलाके कमनीय करों द्वारा प्रेमसे प्रपूजित हैं। वे पृथिवीके भव्य भूषण हैं। वे आपत्ति विपत्तिमें स्मरण आजाने पर सुख शान्ति और संतोष प्रदान करने वाले हैं। उन चरणोंको कठोर पृथिवीपर न रखकर हमारे हृदय पर क्यों नहीं रख देते। पृथ्वीसे कठिन तो हमारे हृदय हैं नहीं। एक पन्थ दो काज हो जायँगे। तुम्हारा चलना भी हो जायगा, हमारी पीड़ाभी शान्त हो जायगी।

देखो, प्यारे ! अबतक हम अपने प्रेमको कृपणके धनके समान गुप्त रखे रहीं। पहिले हम दूर से तुम्हें देख लेती थीं। हृदय हिलोर लिया करता था। देखो, बहुत पुरानी बातें हैं, तुम तो हमें जानतेभी न होगे, किन्तु यह भी कैसे कहें आपतो सर्वज्ञ हो अन्तर्यामी हो, सबके घटघटकी बात जानते हो। हाँ, तो जब तुम मोर मुकुट बाँधकर, लकुट पर कारी कामरी लटकाकर, वंशीको बजाते हुए, गौओंको हाँकते हुए उन्हें चरानेके लिये वनमें जाते थे, तब हम अपने द्वारोंपर खड़ीखड़ी अपलक भावसे तुम्हेंही निहारती रहती थीं। जब तुम दृष्टिसे ओझलहो जाते तो मन मसोसकर घरके कामोंमें लग जातीं, किन्तु मन सदा तुम्हारे लटकते हुए घुलाकके साथही झोटा खाता रहता था। उसीके साथ अठखेलियाँ करता रहता था, जहाँ दिन ढलाकि हम बारबार द्वारपर आतीं, कोठेपर चढ़तीं, दूर तक दृष्टि डालतीं तुम कहीं गौओंको लेकर लौट तो नहीं रहे हो। आपके बिना देखे हमारा

एकएक क्षण एकएक युगके समान बीतता। जिस दिन जाते समय तुम्हारे दर्शन न होते, तो ऐसा लगता मानो हमारा कुछ खो गया है। कोई आवश्यक वस्तुको कोई उठाले गया है। जब प्रतीक्षा करते करते तुम्हारी बाँसुरीकी मधुर मधुर ध्वनि हमारे रिक्त कर्णोंमें अमृतसा उड़ेलती दूरसे सुनाई देती, तो हम दौड़कर सब काम धंधोंको छोड़कर द्वारपर आ जातीं और तुम्हारे दर्शनोंको अधीरहो उठतीं। उस समय कंधोंतक लटकती हुई तुम्हारी काली काली घुंघराली अलकावलीसे मंडित आपके मृदुल मुखारविन्द की मनोहर मुसकानकी शोभाको निहारतीं हम धन्यहो जातीं। ब्रह्माबाबाकी मूर्खतापर खीज उठतीं।हाय ! इसबूढ़ेकीबुद्धि सठिया गयी, इसने आँखोंमें पलक क्यों बनाये ? उसे पलक ही बनाने थे तो औरोंकी आँखोंमें बनाता। हम व्रजाङ्गनाओंकी आँखोंको तो पलकहीनही बना देता, जिससे बिना व्यवधानके—अपलक भावसे—तुम्हारी शोभाको निहार सकतीं। दिन ढलने पर ग्वाल बालोंसे घिरे गौओंके पीछे पीछे जब आप आते, उस समय धूलि धूसरित नील अलकावलीसे आवृत अपने मनोहर मुखारविन्दको दिखाकर हमारे हृद्रोगको आप बारबार उत्तेजित करते। हमें व्यथित बनाकर आप गोष्ठमें खिरकमें घुसजाते। हम ठगी-सी चित्र लिखी-सी पाषाण प्रतिमा-सी वहीं द्वारपर खड़ीकी खड़ी ही रह जातीं।

प्यारे ! हे आर्तिनाशन ! हे व्रजवल्लभ ! हमें पता है, तुम गान प्रिय हो। तुम्हें गायनसे अनुराग है। हम कुछ गानाभी जानती हैं। तुम्हें गागाकर रिझावेंगी। सुन्दर ताल, स्वर और लयके साथ तुम्हें गीत गाकर सुनावेंगी। देखो, हम गाना तो कुछ ऐसा ही वैसा जानतीं हैं, किन्तु हमारे कानोंको भी संगीत श्रवणका रोग हो गया है। तुम्हारे दिव्य गानसे मोहित ये कान उन्मत्त हो गये हैं। ये हमें हठ पूर्वक यहाँ प्रेरित

ले आये हैं। हम भी अपने पति, पुत्र, कुटुम्ब, भाई बन्धु, सगे सम्बन्धी सभीकी मोह ममता छोड़कर एक मात्र आपके ही चरणोंकी सन्निधिमें आगयीं हैं। अब हम पुनः लौटकर उस गृहान्धकूपमें जाना नहीं चाहतीं। अब तो सम्पूर्ण जीवनको आपके चरणोंमें ही बितानेका हमने दृढ़ संकल्प कर लिया है। हे कपटी! हे निर्दयी! हम सब तो इतना त्याग करके आयीं हैं, किन्तु तुम इतने निष्ठुर बन गये हो, कि इतनी देरसे पुकार रही हैं तुम दर्शन क्यों नहीं देते। देखो, यह अच्छी बात नहीं है। प्रतीत ऐसा होता है तुम रस शास्त्रके मर्मज्ञ नहीं, अरसिक हो, नहीं सोचो तो सही, इस प्रकारका अन्याय कोई रसिक किसी रमणीके साथकर सकता है?

अच्छा, हम एक बात पूछती हैं। तुमने इस शारदीय रात्रिमें बाँसुरी क्यों बजायी? तुम कहोगे क्या बाँसुरी बजाना भी कोई अपराध है? हमने अपनी इच्छासे बजायी। सो तो ठीक है। बाँसुरी बजाना अपराध तो नहीं किन्तु आपने अनङ्गवर्धन-कामिनियोंके काम भावको उद्दीपन करनेवाला—सर्वश्रेष्ठ कामोद्दीपक गान क्यों गाया? क्या तुम्हें उसके परिणामका पता नहीं था? मेघ राग गाने पर वर्षाका होना निश्चित है। दीपक राग गाने पर बुझे हुए दीपकोंका जुड़ जाना अनिवार्य है, इसी प्रकार कामोद्दीपक गानसे हम ब्रजाङ्गनाओंके मनमें आपसे मिलने की कामना होना स्वाभाविक ही था। कामोद्दीपकराग वही अलापेगा, जिसके मनमें मिलनेकी कामना होगी। तुमने मिलनेकी कामनासे ही वह गान गाकर एकान्तमें हमें बुलाया और हम सब उस गायनसे विवश होकर आपके चरणोंके समीप आयीं। आपने हमें दर्शन देकर सुख दिया। यह तो उचित ही किया। परन्तु सर्वस्व त्यागकर घर द्वार कुटुम्ब परिवारसे नाता तोड़कर—भयानक रात्रिमें घोर वनमें आई हुई

हम रमणियोंको एकान्तमें बिलबिलाती छोड़कर कौन रसिक जा सकता है ? धर्मको जाननेवाले तो रमणेच्छुका रमणीका साधारण स्थितिमें भी परित्याग नहीं करते । प्यारे ! हमें तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल याद आ रहा है । इसमें हमारे हृदयको स्थान दो उस उभरे । हुए वक्षःस्थलकी सन्निधिकी उत्कंठासे हमारा मन-मयूर बार बार मोहित होकर नृत्य-सा करने लगता है ।

श्यामसुन्दर ! तुम्हें सब दुःखहर सुखकर, आर्तिनाशन और न जाने क्या क्या कहते हैं । फिर तुम हमारी आर्तिका नाश क्यों नहीं करते ? हमारे दुःखों को दूर क्यों नहीं करते ? क्यों हमें दर्शन नहीं देते ? क्यों हमें रुला रहे हो ? क्यों वनमें भटका रहे हो ? क्यों तरसा रहे हो ? क्यों बिना मौतके मार रहे हो ? क्यों निष्ठुरता दिखा रहे हो । क्यों हमारी परीक्षा ले रहे हो ? हम स्वयं परीक्षामें उत्तीर्ण कभी न हो सकेगीं । तुम ही कृपा करोगे तब कुछ काम भले ही बन सके, अतः प्यारे आओ आओ !! अब आ जाओ । अब अधिक मत दुखी बनाओ ।

सूतजी कहतेहैं—मुनियों ! इस प्रकार सुमधुर स्वर से ताल-लय युक्त गीत गाते गाते भावमयी गोपिकायें श्रीकृष्ण दर्शनकी लालसासे सुबक सुबक कर रोने लगीं । उन्होंने अपना अन्तिम अस्त्र छोड़ दिया । जो कभी व्यर्थ जाता ही नहीं ।

छप्पय

धूरि धूसरित नील कुटिल कच कारे कारे ।
मुखपै बिथुरे मधुर लगें मनकूँ अति प्यारे ॥
ओटा खात बुलाक मोरको मुकुट मनोहर ।
ऐसो वेष बनाइ जाउ जब बन तुम गिरिधर ॥
तब पल पल युग युग सरिस, बीतत बिनु देखे तुम्हें ।
अब निशिमहँ बन छाँड़ि तुम,छिपे छबीले छलि हमें ॥

—: ० :—

गोपियोंके मध्यमें प्रभुका प्राकट्य

[८८६]

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ३२ अ० २ श्लो०)

छप्पय

आओ आओ श्याम हृदयकी तपन बुझाओ ।
चरन कमल हिय धरौ शोक संताप नसाओ ॥
यों कहि रोईं फूटि फूटिके गोपी सस्वर ।
रहि न सके तब श्याम भये प्रकटित तहँ सत्वर ॥
मथन मनोहर वेषतैं, मन्मथके मनकूँ हरत ।
प्रकटे प्रभु तिनि मध्यमहँ, शोक मोह हियको हरत ॥

अनन्तजीव अनादि कालसे इस भवाटवीमें भ्रमवश भटक रहे हैं। ये सभी प्रभुके अंश हैं, अंशीसे विलग होकर अपनी पृथक् सत्ता स्वीकार करके दुःखोंका अनुभव कर रहे हैं। इन सबने कभी संयोग सुखका अनुभव किया है। उसे अज्ञानवश भूल गये हैं। फिर भी सबके हृदयमें कुछ संस्कार शेष हैं। सभी

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! साक्षात् मन्मथके भी मनको मथन करने वाले पीताम्बरधारी वनमाली भगवान् शौरि श्यामसुन्दर इसी समय (गोपियोंके गीतको सुनकर) मधुर मुसकान युक्त मुखारविन्दसे उन सबके सम्मुख प्रकट हुए।

उसी सुख को पाना चाहते हैं। सभी प्रियतम से—अंशी से—मिलना चाहते हैं। संयोग सुख का अनुभव करना चाहते हैं किन्तु उस सुखको भ्रमवश संसारी पदार्थों में खोजते हैं। वन में खोये हुए ऊँट को घर की छोटी छोटी दिवालों में रखी काजर की डिबियाओं में बार बार खोल खोलकर खोजते हैं। वन में खोया ऊँट डिबियों में कैसे मिलेगा? अविनाशी सुख इन नाशवान् अनित्य संसारी विषयों में कहाँ मिलेगा। जब अपना स्वभाव ही उसकी प्राप्तिका बन जायगा, स्वभावतः वैसे ही कर्म बनने लगेंगे। सब चेष्टायें उनके ही निमित्त होने लगेंगी और उनसे मिलने का जिस जीवका समय आ जायगा उसे प्रथम साधु संग होगा। साधु कोई नई बात तो बतायेंगे नहीं, नई बात कोई है ही नहीं, तुम्हारे घर में गड़े हुए धन का पता बतादेंगे। बतावेंगे भी जब उन गड़े धन को प्राप्त करने का समय आ जायगा। तभी साधु में श्रद्धा होगी। वाल्मीकजी डाका मारा करते थे, लूटते थे। उनके उद्धार का समय आ गया। सप्तर्षि स्वतः पहुँच गये। उन्हें उलटे नाम का उपदेश दिया। पहिले कानों में नाम ही पड़ता है। श्रीराधाजी को ललिताजी ने पहिले दो अक्षरों वाला 'कृष्ण' नाम ही बताया था। नाम लेते लेते अन्तः करण का काठिन्य [illegible] जाता है। श्रीकृष्ण बड़े सुकुमार हैं। वे कठिन हृदय में [illegible] नहीं होते। नवनीत प्रिय ही जो ठहरे। ऐसा सरस, [illegible]युक्त, कोमल, तथा स्निग्धचित्त होना चाहिये, कि [illegible] लगते ही पिघलने लगे, वहाँ वे आते हैं। जिसका हृदय नवनीत के सदृश कोमल हो जाता है उसी को मुरली की ध्वनि सुनाई देती है। उस मुरलीको सुनकर फिर घरमें रहा ही नहीं जाता। दुःख से चित्त चंचल हो उठता है। मर्यादा छोड़कर उस रुचिकर ध्वनि में आसक्तचित्त होने में उसी का [illegible] पड़ता है, फिर उस मुरली बजाने वाले के दर्शन के

होते ही उनमें आसक्ति बढ़ जाती है हृदय में उनके प्रति
भाव दृढ़ हो जाता है, संयोग सुख का आस्वादन होता है। सं
सुख की वृद्धि के लिए उत्कंठा को बढ़ानेके निमित्त प्रियतम अ
र्हित हो जाते हैं। अब तक अयोगजन्य दुःख था अब वियोगज
दुःख उससे भी अधिक हो जाता है। उसमें अहर्निशि प्यारे
रिझाने को ही प्रयत्न करना पडता है। उन्हीं के अन्वेषण में व
वन भटका जाता है। वे नहीं मिलते, नहीं मिलते। जब मिलन
आकांक्षा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। बाट जोहते जोहते आँ
पथरा जाती है, क्षण क्षण, पल पल, लव लव, निमेष नि
गिनते गिनते उँगलियों की पोर घिस जाती हैं। गाते गाते
रुद्ध हो जाता है, नाम लेते लेते जिह्वा में छाले पड जाते हैं अ
जब रोते रहने के अतिरिक्त कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रहत
किसी दूसरे साधन का सहारा नहीं रहता, तब श्यामसुन्दर हँस
हुए प्रकट होते हैं। 'रोते को देखकर हँसना कोई अच्छी बात तो
नहीं जी ?" न हो अच्छी बात, इस प्रेम राज्यमें सभी अच्छी
अच्छी बातें हैं। बुरीका तो यहाँ नाम भी नहीं। प्रेमका रोना
अच्छा और हँसना भी अच्छा। श्यामसुन्दर और सब कुछ
सकते हैं, किन्तु उनके दर्शनोंकी लालसामें यदि कोई ढाह म
फर सुस्वर रुदन करे, तो उसे वे नहीं सह सकते। वैसे झूठ
कुछ देरके लिये सुबकियाँ भरकर झूठे आँसू निकालकर हू हू
तो उसे छोटी मोटी वस्तु देकर बहला देते हैं, टरका देते हैं।
जीवको छोड थोडे ही सकते हैं। कहीं दूर जाते ही नहीं उस
अत्यन्त समीप छिपे रहते हैं। परन्तु जीव उन्हें देख नहीं पात
जैसे आँखोंमें काजर लगा रहता है किन्तु भीतर लगे रह
पर भी आँखें काजरको देख नहीं सकतीं। आँसुओंमें घुल
उसे निकलना पडता है। हथेलियोंमें आँसू मिश्रित आँखों
मीड़नेसे उस काले काजरके दर्शन हो जाते हैं। जीव निहाल

जाता है, कृतकृत्य हो जाता है। उसके साथ रास-विलास करता है, होली खेलता है। गहर गँभार बादल से अमृत चूता है जिससे वह भीग जाता है, उसमें निमग्न हो जाता है। एक बार उसे फिर महावियोग का क्लेश सहना पड़ता है, किन्तु वह महावियोग ही नित्य संयोग सुखका जनक है, उसे प्राप्त होने पर फिर कभी वियोग होता नहीं। नित्य सुखकी प्राप्ति होती है। नित्य रास सुख मिल जाता है। यही कृष्ण प्राप्तिकी संक्षिप्त प्रक्रिया है। बिना उच्चस्वरसे रोये श्याम प्राप्त नहीं होते। माता छोटे बालक-को पालनेमें सुलाकर गृहकार्योंमें लग जाती है। बच्चा तनिक ऊँ ऊँ करता है, वह बोलती नहीं काम करती रहती है, फिर तनिक रोता है। शीघ्रतासे आकर थपथपा जाती है, फिर काममें लग जाती है। फिर रोता है, तो आकर उसे कोई मीठा मिठाई दे देती है, कोई खिलौना पकड़ा देती है। उसीको पाकर वह रोना भूलकर खेलने लगता है, माता फिर काममें जुट जाती है। जब बच्चा खिलौना-फिलौना, मेवा मिठाई सभीको फेंककर रोता ही रहता है, रोता ही रहता है तो माता आकर उसे छातीसे चिपटा लेती है मीठा मीठा अपने स्तनका अमृतोपम पयपान कराती है। उसे तृप्त कर देती है। इसलिये हे जीवो! तुम्हें कारे कुटिल छलिया कृष्णको पाना है, तो रोओ निरन्तर, रोओ खिलौनोंको फेंक दो। चीनी, घृत, नमक, अधर रस रूप मिठाइयों-को फेंक दो, माता पिता पति रूप कृष्ण हँसते हँसते आविर्भूत होंगे, तुम्हारे साथ रास रचेंगे। रोनेकी शक्ति भी तो श्याम ही देंगे। हम अभागे तो रो भी नहीं सकते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकायें गीत गाते गाते थक गयीं, किन्तु श्रीकृष्ण सुनते सुनते नहीं थके थे। वे कहीं दूर थोड़े ही छिपे थे। रसमयी गोपियोंको छोड़कर वे जाना भी चाहें तो नहीं जा सकते। प्रेम एक ओरसे कभी नहीं होता। दोनों ओरसे आक-

पंण होता है। श्रीकृष्ण कुछ कम रसिक थोड़े ही हैं। उन्हें कोई एक हाथ चाहता है, तो उसे वे सौ हाथ चाहते हैं। जैसे गोपिकायें उनके रूपपर लट्टू थीं वैसे ही वे गोपिकाओंके मुख कमलोंके लोभी भ्रमर बने हुए थे। वे उनके अत्यन्त निकट थे, किन्तु पीताम्बरको छिपाकर उन्होंने साड़ी ओढ़ रखी थी। उन्हें लाज संकोच तो कुछ है नहीं। लोग बननेका अभिमानभी नहीं। लुगाई बनगये थे। तन्मयहो गये थे। गोपि [illegible] खोजती नहीं थीं। उनके गुणगाती थीं। [illegible] प्यारे लगते हैं। स्तुति किसे रुचिकर नहीं है [illegible] उन्होंने चूं भी नहींकी. हुंकारीभी नहीं भरी [illegible] ने दिया, अपनी सन्निधिकी सूचना भी न [illegible] अपने गुणोंको, अपने श्यामसुन्दर, कितव, धूर्त, छलिया, आदि आदि सम्बोधनोंको सुनते रहे। जब वे गान करते करते थक गयीं दर्शनोंकी लालसासे फूट फूट कर रोने लगीं। तब कहीं दूरसे नहीं आये, उन गोपियोंके बीचमेंसे ही प्रकट हो गये। सब निहाल हो गयीं। समस्त शोक सन्ताप दूरहो गये।

उस समय श्यामसुन्दर या तो अपने समस्त सौन्दर्य धनको अपने श्रीअंग पर स्वयं लादकर लाये थे, अथवा गोपियोंकी उत्कंठाने उन्हें शृंगार करके अत्यन्त सजा दिया था। कुछभी क्यों न हो श्यामसुन्दर उस समय सुन्दरातिसुन्दर—अतिशय सुन्दर—वेष बनाये हुए थे। कोटि कंदर्पोंके दर्पको दलन करने वाले दयित दामोदर मधुर मुसकान युक्त मुखारविंदसे मंद मंद मुसकरा रहे थे। वे चमचमाते हुए पीताम्बरको ओढ़े हुए थे। घुटनों तक लटकने वाली मोटी और पंचरंगी वनमालाको वे धारण किये हुए थे। वह माला हिलहिलकर तथा श्यामके ऊरुओं और वक्षस्थलका बारंबार स्पर्श करके अपने सौभाग्यपर इठला रही थी। नाच रही थी, मोटा रही थी। गोपिकाओं को सिजा

रही थी, उनके हृदयमें हठपूर्वक सापत्न्य भाव उत्पन्न कर रही थी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सहसा प्रियतमको अपने मध्यमें ही मंद मंद मुसकराते हुए देखकर गोपाङ्गनाओंके हृदयमें प्रेमकी हिलोरेंसी उठने लगीं। उन्हें इतना आनन्द हुआ, कि वे उसे सहन करनेमें समर्थ न हो सकीं। अपने आवेगको सम्हाल न सकीं। सहसा सबकी सब संभ्रमके सहित स्वतः ही उठकर खड़ी हो गयीं। जैसे मृतक देहमें पुनः प्राण आजायँ और निश्चेष्ट बनी इन्द्रियाँ पुनः साथही सभी प्रकारकी चेष्टायें करने लगें, इसी प्रकार उनके मुरझाये मुखोंपर एक साथ आनन्द, उत्साह, प्रेम और अनुरागकी चेष्टायें स्पष्ट झलकती हुई दिखाई देने लगीं। उनका संकुचित हुआ मनमुकुर सहसा श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनोंसे खिल उठा। जैसे अत्यन्त भूखा प्राणी सहसा अपने सम्मुख सुखद स्वादिष्ट आहार पाकर उसपर टूट पड़ता है, जैसे अत्यन्त पिपासित मीठा स्वादिष्ट जलपातेही उसे दोनों अंजुलियोंसे भर भर कर पीने लगता है, जैसे लोहेकी सुई चुंबकको देखतेही उससे चिपट जाती है, जैसे सूर्यके उदय होतेही उसपारसे आये हुए चकवासे चकवी लिपट जाती है, उसी प्रकार कृपणके खोये हुए धनको पुनः प्राप्त होनेके समान अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करती हुई वे गोपिकायें चारों ओरसे श्यामसुन्दरको घेरकर उनसे लिपट गयीं। उन्होंने कृपणके धनके समान उन्हें कसकर पकड़ लिया, कि कहीं ये पुनः भाग न जायँ। उस समय उनकी विचित्र दशा थी। सबके अँग रोमाञ्चितहो रहे थे। प्रेमके आवेगमें उनके शरीरमें कँपकपी उठ रही थी। कर थर थर काँप रहे थे। प्रियके स्पर्शसे हृदय बाँसों उछल रहा था। अंगअंगमें सिहरन उठ रही थी। सभी इन्द्रियाँ रसपान करनेको उतावली हो रहीं थीं। संसारमें जिसे प्यारेका सुखद स्पर्श प्राप्त हो गया, उसे प्राप्त करने

को रह हो क्या गया। जिसे प्यारेका स्पर्श प्राप्त नहीं है, उसके जप, तप, योग अनुष्ठान, धारणा, ध्यान समाधि तथा अन्य सभी साधन व्यर्थ है, निरर्थक हैं। गोपिकायें अपने हृदय धनको पाकर परमप्रमुदित हुईं, सुखी हुईं, आनन्दित हुईं। उन्होंने श्यामसुन्दरके संयोग सुखका किस प्रकार आस्वादन किया! मुनियो! इसके वर्णनकी मुझमें शक्ति तो है नहीं, योग्यताभी नहीं, फिरभी कहूँगा। आप मनाभी करेंगे तो भी न मानूँगा, क्योंकि उसका स्मरण करना यही जीवका एकमात्र परमातिपरम पंचम पुरुषार्थ है।

छप्पय

मोर मुकुट सिर धारि गरे बैजन्ती माला।
लखे शरद ब्रजचन्द्र भई प्रमुदित ब्रजबाला॥
करें निछावर प्रान सिहावें सब तृन तोरें।
प्रेम न अङ्ग समाय उठें हियमाँहिं हिलोरें॥
खावें पीवें युगलकर, रूपासव नयननि भरत।
भूखी प्यासी प्रेमकी, आलिङ्गन चुम्बन करत॥

श्याम संस्पर्शजन्य सुख

[६६०]

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥*

(श्री भा० १० स्क० २३ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

कोई हरि कर धारि कपोलनि परम सिहावैं ।
कोई पुनि पुनि पकरि प्रेमतैं हिये लगावैं ॥
कोई चर्वित पान कान्हको लेहिं चबावैं ।
कोई हरि पद हृदय धारि संताप मिटावैं ॥
भृकुटि कमान कटाक्ष सर, मारें काटें द्विज अधर ।
बींधें बधिकिनिके सरिस, बाँधत करतें पकरि करि ॥

सुखानुभूति मनसे इन्द्रियों द्वारा होती है । हाथ, पैर, वाणी, गुदा और शिश्न इन पाँच इन्द्रियोंसे कर्म किये जाते हैं, इसीलिये इनको कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं । आँख, कान, नासिका, रसना और

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण दर्शनके परमोल्लाससे परमानन्दित होकर उन व्रजवनिताओंका विरहताप उसी प्रकार दूर हो गया, जिस प्रकार पुरुष सुषुप्ति अवस्थाके अभिमानी प्राज्ञ को पाकर सब तापोंसे छूट जाता है । अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें सभी चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है ।

त्वचा इन पाँचोंके द्वारा विषयोंका ज्ञान होता है इसलिये ये ज्ञानेन्द्रियाँ कहाती हैं। संसार में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत हैं। सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति स्थिति इन्हींसे है। अतः यह *जगत् पाँचभौतिक या प्रपञ्च कहलाता है*। इन पंचभूतोंके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँच क्रमशः गुण हैं। इन पाँचोंके द्वारा ही पाँच इन्द्रियोंसे जीव सुख दुखका अनुभव करता है। जैसे सुगन्ध दुर्गन्धका अनुभव नासिकासे होता है। रसका रसना, रूपका चक्षुओंसे, शब्दका कानोंसे और स्पर्शका त्वचासे। शब्द, रूप, रस और गंध इन चार विषयोंका उपभोग शरीरके एक-एक ही अंगों से होता है। जैसे शब्द कान ही सुन सकते हैं, आँखें शब्दों को नहीं सुन सकतीं। भली प्रकार कानोंको बन्द कर दो, तो शब्दके होते हुए भी शब्द सुनाई न पड़ेगा। इसी प्रकार रूप को आँखें ही देख सकती हैं। आँखोंको बन्द कर लो तो सुन्दरसे सुन्दर रूप सम्मुख हो, दिखाई न देगा। रसका अनुभव रसना ही कर सकती है। कितना भी स्वादिष्ट पदार्थ हो उसे आँख में भरो या कानमें भरो ये कुछ भी उसका स्वाद नहीं ले सकते। सुगन्ध दुर्गन्धकी अनुभूति नासिका से ही हो सकेगी। कितनी भी सुगन्ध हो नासिकाको कसकर बन्द कर लो कुछ भी प्रतीत न होगा। सारांश यह है, कि शरीरके एक अङ्गमें रहने वाली एक इन्द्रिय एक ही विषयका रसास्वादन करा सकती है। एक ही गोलकसे अपने विषयको ग्रहण कर सकती है हाथों से दोनों नेत्रोंको मींचलो कुछ दिखाई न देगा। क्योंकि देखनेकी शक्ति सम्पूर्ण अङ्गोंके छिद्रोंमें नहीं है। ललाटके नीचे दो काली-काली कुटिल भौंहोंके नीचे बरौनियोंसे युक्त पलक है। उन पलकों के पीछे दो चमकीले शीशा चढ़े दो छिद्र हैं। नासिका उन दोनोंका विभाग करती है। एक दायाँ नेत्र एक बायाँ नेत्र। जैसे

एक मेड़ दो खेतोंका विभाग करती है, वैसे ही दो आँखोंकी नासिका मेड़ है। एक उसके ऊपर पलक है एक नीचे। ये दोनों पलक मानों नेत्र रूप घरोंकी किवाड़ें हैं। पलकोंको मार लो तो भी कुछ दिखाई नहीं देगा। रसनाकी किवाड़े ओठ हैं। नासिका और कान विना किवाड़ेके घर हैं। इन्हें हाथोंमे बन्द किया जा सकता है, क्योंकि इनके छिद्र शरीरके एक कोने में हैं छोटे हैं परमित हैं। इन चार ज्ञानेन्द्रियोंके उपभोगके लिये शरीरमें बहुत थोड़ा-थोड़ा संकुचित स्थान मिला है, किन्तु स्पर्शेन्द्रियने सम्पूर्ण शरीर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया है। पैरकी छोटी उँगली पर चींटी चढ़े तुरन्त स्पर्शेन्द्रिय मनसे कह देगी। आँख कान, नाक, मुँह, हाथ, पैर शिश्न, गुदा, नाभि, हृदय यहाँ तक कि शरीरमें एक तिल भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ स्पर्शेन्द्रिय न व्याप्त हो। बाहर भी और भीतर भी। बरफका शीतल शीतल जल पिओ। मुखसे उदर तक लीक करता हुआ जायगा। स्पर्शेन्द्रिय उसका बोध करावेगी। सम्पूर्ण शरीरमें भीतर बाहर स्पर्शेन्द्रिय उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूधकी रग-रगमें घृत व्याप्त है। शरीरके जिस अङ्गसे भी स्पर्शेन्द्रिय चली जायगी, वही व्यर्थ बन जायगा। उसीका नाम पक्षाघात (लकवा) है। हाथ ज्योंका त्यों बना है। स्पर्शेन्द्रिय चली जाय, हाथ व्यर्थ है काम कर नहीं सकता। इसीलिये सभी इन्द्रियोंमें स्पर्शेन्द्रिय व्यापक है, श्रेष्ठ है। बहुतसे अंधे वस्तुको छूकर उसका रङ्ग बोल देते हैं। जितना भी रति सुख आदि होता है, सब स्पर्श न किया जाय, तो रति सुख प्राप्त ही नहीं हो सकता। इन सब इन्द्रियोंको स्पर्शेन्द्रियकी सहायता लेनी पड़ती है। जैसे गाना हो रहा है। तो उस गायनकी ध्वनि जब तक हृदयसे स्पर्श न करेगी तुम कानोंसे सुनते रहो रस नहीं आयेगा। जब वह गायन हृदयसे स्पर्श करे तभी सुख देगा। लोग कहते भी हैं "बड़ा हृदयस्पर्शी

त्वचा इन पाँचोंके द्वारा विषयोंका ज्ञान होता है इसलिये ये ज्ञानेन्द्रियाँ कहाती हैं। संसार में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत हैं। सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति स्थिति इन्हींसे है। अतः यह जगत् पाँचभौतिक या प्रपञ्च कहलाता है। इन पंचभूतोंके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँच क्रमशः गुण हैं। इन पाँचोंके द्वारा ही पाँच इन्द्रियोंसे जीव सुख दुखका अनुभव करता है। जैसे सुगन्ध दुर्गन्धका अनुभव नासिकासे होता है। रसका रसना, रूपका चक्षुओंसे, शब्दका कानोंसे और स्पर्शका त्वचासे। शब्द, रूप, रस और गंध इन चार विषयोंका उपभोग शरीरके एक-एक ही अंगों से होता है। जैसे शब्द कान ही सुन सकते हैं, आँखें शब्दों को नहीं सुन सकतीं। भली प्रकार कानोंको बन्द कर दो, तो शब्दके होते हुए भी शब्द सुनाई न पड़ेगा। इसी प्रकार रूप को आँखें ही देख सकती हैं। आँखोंको बन्द कर लो तो सुन्दरसे सुन्दर रूप सम्मुख हो, दिखाई न देगा। रसका अनुभव रसना ही कर सकती है। कितना भी स्वादिष्ट पदार्थ हो उसे आँख में भरो या कानमें भरो ये कुछ भी उसका स्वाद नहीं ले सकते। सुगन्ध दुर्गन्धकी अनुभूति नासिका से ही हो सकेगी। कितनी भी सुगन्ध हो नासिकाको कसकर बन्द कर लो कुछ भी प्रतीत न होगा। सारांश यह है, कि शरीरके एक अङ्गमें रहने वाली एक इन्द्रिय एक ही विषयका रसास्वादन करा सकती है। एक ही गोलकसे अपने विषयको ग्रहण कर सकती है हाथों से दोनों नेत्रोंको मींचलो कुछ दिखाई न देगा। क्योंकि देखनेकी शक्ति सम्पूर्ण अङ्गोंके छिद्रोंमें नहीं है। ललाटके नीचे दो काली-काली कुटिल भौंहोंके नीचे बरोनियोंसे युक्त पलक हैं। उन पलकों के पीछे दो चमकीले शीशा चढ़े दो छिद्र हैं। नासिका उन दोनोंका विभाग करती है। एक दायाँ नेत्र एक बायाँ नेत्र। जैसे

एक मेड़ दो खेतोंका विभाग करती है, वैसे ही दो आँखोंकी नासिका मेड़ है। एक उसके ऊपर पलक है एक नीचे। ये दोनों पलक मानों नेत्र रूप घरोंकी किवाड़ें हैं। पलकोंको मार लो तो भी कुछ दिखाई नहीं देगा। रसनाकी किवाड़े ओठ हैं। नासिका और कान बिना किवाड़के घर हैं। इन्हें हाथोंसे बन्द किया जा सकता है, क्योंकि इनके छिद्र शरीरके एक कोने में हैं छोटे हैं परमित हैं। इन चार ज्ञानेन्द्रियोंके उपभोगके लिये शरीरमें बहुत थोड़ा-थोड़ा संकुचित स्थान मिला है, किन्तु स्पर्शेन्द्रियने सम्पूर्ण शरीर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया है। पैरकी छोटी उँगली पर चींटी चढ़े तुरन्त स्पर्शेन्द्रिय मनसे कह देगी। आँख कान, नाक, मुँह, हाथ, पैर शिश्न, गुदा, नाभि, हृदय यहाँ तक कि शरीरमें एक तिल भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ स्पर्शेन्द्रिय न व्याप्त हो। बाहर भी और भीतर भी। बरफका शीतल शीतल जल पिओ। मुखसे उदर तक ठंडक करता हुआ जायगा। स्पर्शेन्द्रिय उसका बोध करावेगी। सम्पूर्ण शरीरमें भीतर बाहर स्पर्शेन्द्रिय उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूधकी रग-रगमें घृत व्याप्त है। शरीरके जिस अङ्गसे भी स्पर्शेन्द्रिय चली जायगी, वही व्यर्थ बन जायगा। उसीका नाम पक्षाघात (लकवा) है। हाथ ज्योंका त्यों बना है। स्पर्शेन्द्रिय चली जाय, हाथ व्यर्थ है काम कर नहीं सकता। इसीलिये सभी इन्द्रियोंमें स्पर्शेन्द्रिय व्यापक है, श्रेष्ठ है। बहुतसे अंधे वस्तुको छूकर उसका रङ्ग बोल देते हैं। जितना भी रति सुख आदि होता है, सब स्पर्श न किया जाय, तो रति सुख प्राप्त ही नहीं हो सकता। इन सब इन्द्रियोंको स्पर्शेन्द्रियकी सहायता लेनी पड़ती है। जैसे गाना हो रहा है। तो उस गायनकी ध्वनि जब तक हृदयसे स्पर्श न करेगी तुम कानोंसे सुनते रहो रस नहीं आवेगा। जब वह गायन हृदयसे स्पर्श करे तभी सुख देगा। लोग कहते भी हैं "बड़ा हृदयस्पर्शी

गायन हुआ।" "इनकी बात बड़ी मर्मस्पर्शी है।" योगी भी ब्रह्मका अन्तःकरणमें स्पर्श करते हैं 'ब्रह्मसंस्पर्शी भरनंते' स्पर्श करने से प्रेममें बड़ी वृद्धि होती है। गौएँ पैदा होते ही अपने बच्चोंको चाटती हैं। ज्यों ज्यों चाटती हैं, त्यों त्यों उनका स्नेह और बढ़ता है। आजकल भौतिकवादी प्रसव करने वाली गौकी आँखों में पट्टा बाँध देते, बच्चे का पैदा होते ही गौको चाटने नहीं देते, न बच्चेको उसके स्तनसे स्पर्श कराते हैं। पृथक् ले जाकर उसे पालते हैं दूसरी गौओंका दूध पिलाते हैं। इससे न बच्चेका गौमें प्रेम होता है न गौका बच्चे में। क्योंकि प्रेम तो स्पर्शसे ही बढ़ता है। मातायें बच्चेको स्पर्श न करें, उन्हें अपने स्तनोंका दूध न पिलावें तो उनका बच्चेमें प्रेम न बढ़ेगा। जितना ही उसे गोदीमें लेकर खिलावेंगी मुख चूमेंगी उतना ही प्रेम बढ़ेगा। सब अङ्गोंके छूनेकी अपेक्षा मुखको छूनेसे प्रेम अत्यधिक बढ़ता है। इसीलिये बच्चोंको प्यार करते समय बारबार उनका मुख चूमते हैं। मातायें सदा बच्चेके मुखको अपने मुखसे सटाये रखती हैं। सोते समय भी उसके मुख पर मुख रखकर ही सोती हैं। कोई कितना भी रूग्ण हो, माता-पिता उसके मुख पर मुख रख कर सोते हैं तो रोगी बच्चेको बड़ा सुख होता है। हम अपने गुरुजनोंके पैरोंको स्पर्श करते हैं, तो हमें कितना आन्तरिक सुख होता है, बच्चे माताकी गोदीमें सटकर क्यों बैठना चाहते हैं? वे भूमि पर न बैठेंगे गोदी में ही बैठेंगे। लेटेंगे तो गोदीमें ही लेटेंगे। क्योंकि उन्हें माता-पिताके शरीर स्पर्शमें अत्यत सुख होता है। यही बात शृङ्गार रसमें है। परस्पर रूप देखनेमें, एक दूसरेके शब्द सुननेमें, एक दूसरेके शरीर की गंध सूंघनेमें सुख तो होता ही होगा, किन्तु यदि स्पर्श न किया जाय, तो सब सुख व्यर्थ है। अतः रस शास्त्रमें स्पर्श सुखको ही सर्व श्रेष्ठ सुख माना है। प्रियके स्पर्शमें कितना सुख है यह कहनेकी

बात नहीं है। कहनेसे इसका महत्व घट जायगा। और कहा भी नहीं जायगा। प्रेम साधनाका चरम लक्ष्य है, प्रियका स्पर्श प्राप्त करना। प्यारे हमें स्पर्श कर लें या हमें प्यारेका स्पर्श करनेका सुयोग प्राप्त हो जाय, दोनों एकही बातें है। छू-छू करना, दूर रहो, दूर रहो करना ये सब नियमकी बातें हैं। समाज व्यवस्थामें नियमकी भी आवश्यकता होती है, किन्तु प्रेममें नियम रहता नहीं। प्रेमका तो लक्ष्य ही है, प्रियतमके साथ एक हो जाना। उनके और अपने अङ्गोंको एकमें मिला देना। जहाँ एकत्व नहीं—अद्वैत नहीं—वहाँ सुख नहीं शांति नहीं रसानुभूति नहीं। वहाँ तो भय है द्वैत से भय होता ही है। एकत्वमें ही सुख है। वह एकतत्व बिना ब्रह्मसंस्पर्शके कैसे प्राप्त हो सकता है? वे धन्य हैं जिन्हें चिरकालकी प्रतीक्षाके अनन्तर प्यारेका स्पर्श सुख प्राप्त हुआ है।

सूतजी कहतेहैं—"मुनियो! श्रीकृष्णको सहसा अपने बीच में पाकर वे समस्त गोपिकायें रोना धोनातो सब भूल गयीं। उन्हें स्पर्श करनेके लिये दौड़ीं। प्यारेको छू-छू कर उनके प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित करने लगीं। किसीने दौड़कर अपने दोनों हाथों की गुदगुदी कोमल कोमल लाल लाल कमलकी पंखुड़ियोंके सदृश अपनी हथेलियोंसे उनके करकमलको कसकर पकड़ लिया और प्रेमके कोपसे बोलीं—"छलिया, धूर्त, कितव! देखें अब तुम कैसे भाग सकते हो?"

कोई उनकी सुचिक्कण, सर्पके शरीर के सदृश चंदन चर्चित गुदगुदी भुजाको अपने कंधेपर रखकर स्वयं उनकी बाहुपाशसे बंधकर कहने लगी—"बोलो अबतो नहीं छोड़ोगे?"

किसी ने देखा—सबसे अधिक स्पर्श शक्ति जिह्वामें है प्यारे की जिह्वासे लगी कोई वस्तु इस मेरी लपलपाती जिह्वाको मिल जाय, तो इस जीभकी तपन बुझ जाय। प्यारे मंद मंद मुसकराते

हुए पान चवा रहे थे। उसने आगे अंजलि करदी। यद्यपि अपना उच्छिष्ट किसीको देना शास्त्र में निपेध है, किसीका उच्छिष्ट खाना भी पाप है, किन्तु जो भगवान्‌के उच्छिष्टको उच्छिष्ट बताता है, वह महापापी है। भगवान् के उच्छिष्ट किये बिना—उनका भोग लगाये बिना—जो खालेता है, वह पापको खाता है। कोड़ोंको चबाता है। अपनी भक्ता अनुरक्ता गोपीकी अञ्जलिको देखकर आधा चबाया हुआ पान श्यामसुन्दरने उसकी अंजलिमें उगल दिया। वह उस अधरामृत उच्छिष्ट ताम्बूलको खागयी और धन्य हो गयी।

एकके हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही थी, उसमें से मानों अग्निकी लपटें निकल रहीं हों, उसने देखा यहाँ अब कौनसी औषधि मिलेगी। चरणोंको पसारे हुए श्यामसुन्दर बैठे थे। शरदकी शीतल शीतल बालुकामें नंगे पैरों से आये थे पैर ठिठुर रहे थे। ऐसे हो रहे थे मानों हिमकण हों। उसने उन्हें उठाकर अपनी छाती पर रखलिया। संतप्त हृदय शीतलहो गया। अत्यन्त कोमल वस्तु यदि ठंडी हो और मीठी भी हो, तो वह हृदयमें लकीर करती हुई अत्यन्त सुखको पहुँचाती है, जैसे पिस्ता और केशर-पड़ी हुई मलाई की बरफ दाँतों को कंपाती हुई, मुखको मीठा और शीतल करती हुई कंठमें गुदगुदी—सी करके हृदयको हर्पित बना देती है। उन सुखद, शीतल, कमलसे भी अधिक कोमल चरणों के संस्पर्श से चेरीके चित्तका चांचल्य चला गया।

कोई गोपी प्यारेके प्रति अपना प्रणय कोप प्रदर्शित करने लगी। सैनों ही सैनोंमें संकेत करती हुई भ्रुकुटि रूपी कमानपर कटाक्ष रूपबाण चढ़ाकर, अपने दाँतोंसे अपने नीचेके ओठको काटकर, आँखोंकी पुतलियों को तरेरकर, आधे घूँघटकी ओटसे चोट मारने लगी। बधिकिनीके सदृश बनवारीको बाँधनेके लिये बारबार दृष्टि मिलाने लगी।

कोई अत्यन्त भूखी प्यासी अनाथिनी दीना अबलाके सदृश श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्द मकरन्दका पान करनेके लिये अपलक भावसे उनकी ओर देखतीकीदेखती उसी प्रकार आत्मविस्मृत बन गयी, जैसे भक्तगण भगवान्के चरण कमलोंको देखते देखते आत्मविस्मृत बन जाते हैं।

किसी किसीने सोचा—"इस बाह्य स्पर्शमें उतना सुख नहीं है, जितना अन्तः स्पर्शमें है। अतः वह मोहनकी माधुरी मनोहर मूर्तिको नयन छिद्रों द्वारा अपने अन्तः करणके भीतर खींच ले गयी और शीघ्रतासे उसने अपने पलकरूपी कपाटों को बंदकर लिया कि ये चोर कहीं निकलकर भाग न जायँ। हृदयके भीतर ले जाकर वहाँ उनको कसकर दृढ़ आलिङ्गन करके कहनेलगी— बोलो, अब बताओ अब कैसे भाग जाओगे। मैंने अपने अन्तः करणकी अँधेरी काल कोठरीमें अपनी भुजारूपी रज्जुसे कसकर तुम्हें बाँधदिया है। चोर शिरोमणि! बहुत दिनोंमें पकड़में आये हो। अब तुम्हारी सब चौकड़ी भूल जायगी।" इसप्रकार श्रीकृष्ण का मानसिक आलिंगन करते करते उनके रोयें खड़े हो गये, वे योगनियोंके सदृश समाधिमें निमग्न होकर इस संसारको भूल गयीं। वे परमानन्दमें तदाकार हो गयीं, तन्मय बन गयीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मेरे पास शब्द नहीं जिनके द्वारा उन महाभाग्यवती गोपियोंके दिव्यातिदिव्य परम आनन्दोल्लासका वर्णन कर सकूँ। मेरे पास कोई ऐसी उपमा नहीं, जिसके द्वारा उनकी शोभा सौभाग्यकी समानता बता सकूँ। मेरे पास वह अनुभूति नहीं जिसे आपके सम्मुख रख सकूँ। प्यारे का दर्शन, स्पर्श और अलिंगन पाकर वे उसी प्रकार प्रमुदित हुयीं जैसे सिद्ध सिद्धिको पाकर, प्यास से मरता हुआ जलको पाकर, भूखसे तड़पता हुआ स्वादु अन्नको पाकर, जाड़ेसे ठिठुरता जीव अग्निको पाकर, जलमें डूबता नौकाको पाकर और संसार

तापसे छूटने वाला मुमुक्षु पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता गुरुको पाकर प्रसन्न होता है। वे चाहती थीं प्यारेके रूपाशवको एक साथ ही पी जायँ, उनकी मधुरिमाको रसना द्वारा चाट जायँ। उनको सदा हृदयसे सटाये ही रहें, कभी बिलग न करें, निरन्तर इन्हें निहारती ही रहें, देखती ही रहें, सदा इसी प्रकार ये हमारे पास बैठे ही रहें, कभी उठकर न जायँ। ऐसे ही हमारी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकराते ही रहें।

इस प्रकार वे सब गोपिकायें श्रीकृष्णके आस पास उन्हें घेर कर उसी प्रकार बैठ गयीं जिस प्रकार साँड़को ... जाती हैं, अथवा कुबेरको घेरकर यक्ष कन्यायें ... अथवा संकर्षणको घेरकर नाग कन्यायें बैठ जाती हैं अथवा पुराण पुरुष परमात्माको घेरकर उनकी शक्तियाँ बैठ जाती हैं। इन सबसे घिरे जैसे ये शोभित होते हैं, वैसे ही श्यामसुन्दर भी उन व्रजवनिताओंसे घिरे हुए शोभित हुए।

शौनकजीने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! फिर जो हुआ, उसे वर्णन करने की मेरी शक्ति नहीं है। आपके चरणोंमें प्रार्थना है आप अ उसे मुझसे न पूछें, मैं कह नहीं सकता।

शौनकजीने उत्सुकताके साथ कहा—"अजी, सूतजी! ऐसा मत करो। देखो, यह बात अच्छी नहीं है। जितना कह सक उतना ही कहो। भगवत् चरित्र तो अपार हैं। उसका सम वर्णन कर ही कौन सकता है। अच्छा दर्शन पर्सन तो हो ग दर्शन स्पर्श के अनन्तर जो कुछ हुआ हो, उसे सुनायें।"

हँसकर सूतजी बोले—"अच्छा, महाराज! आप ही बता दर्शनस्पर्श के अनन्तर क्या होता है?

शौनकजी बोले—"सूतजी! हम लोग तो नीरस आद हैं। स्वाहा स्वाहा करते सब रक्त सूख गया है, आँखोंमें यज्ञ

धूँआँ भर गया है। तुम इतनी रसीली कथा सुनाकर हमारे हृदयको हरा कर रहे हो, इसे ही हम अपना अहोभाग्य समझते हैं आप ही बताओ, फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"देखिये, महाराज ! दूरसे ही जब हमें अपना कोई अत्यंत प्यारा दिखाई देता है, तो उसकी चाल ढालसे ही हम प्रथम अनुमान लगा लेते हैं अवश्य ही वही है। समीप आते ही दर्शन करके अंग अंगसे प्रसन्नता फूटने लगती है। दौड़कर उसके चरण पकड़ते हैं। उनके पैरोंको छूते हैं। पैर छूकर अंग स्पर्श करके उन्हें सुन्दरसे सुन्दर आसन पर बिठाते हैं। फिर होती हैं आपसमें प्रेमकी मीठी मीठी अनुरागकी बातें, व्यंग भरी ठठोलियाँ। वे ही सब बातें गोपियों और श्रीकृष्णके बीचमें हुईं। मुनियो ! मैं उनकावर्णन नहीं कर सकता, नहीं कर सकता। आप मुझे विवश न करें, संकोचमें यत् किंचित् कहता हूँ, मेरा कथन अत्यंत अधूरा होगा, किन्तु जैसाभी हो आप सब समाहित चित्तसे श्रवण करें।

छप्पय

कोई हरि मुख कमल माधुरी नयननि भरि भरि।
होंहि तृप्त नहिँ पानप्रेमतैं पुनि पुनि करि करि ॥
नयन रन्ध्रतैं मधुर मूर्ति कोई हिय लावैं।
करें मानसिक परस परम सुख मनतैं पावैं ॥
साधक सद्गुरु पाइकें, आनन्दित अति होत ज्यों।
दरशन करि घनश्यामके, गोपी प्रमुदित भईं त्यों ॥

व्रजवनिताओंके व्यंगपूर्वक प्रश्न

(६६१)

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ३२अ० १६ श्लो

छप्पय

लै सब सखियनि संग श्याम सरिता तट आये ।
कुसुम कुन्द मन्दार कुमुदिनी लखि हरषाये ॥
कालिन्दी निज करनि बिछाई बालु सुकोमल ।
आसन हित पट प्रिया अंगकोडार्यो तिहिँ थल ॥
तहँ बैठे राधारमन, व्रजवनितनिके बीचमहँ ।
सने पदुम पद सखिनिकी, कुचकुंकुमकी कीचमहँ ॥

जीव भटक रहा है प्रिय दर्शनके लिये । कैसे भी प्यारे
जायँ जीवन सार्थक हो जाय । प्रिय जब मिल जाते हैं, तो

---

*श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! व्रजाङ्गनायें बनमा
व्यंग पूर्वक पूछ रही हैं—"हे धर्मज्ञ ! हम आपसे ये प्रश्न पू
हैं । कुछ लोग तो प्रेम करने वालोंसे प्रेम करते हैं । कुछ ऐसे भी
हैं जो इसके विपरीत होते हैं । अर्थात् प्रेम न करने वालोंसे
करते हैं, कोई ऐसेभी हैं कि कोई प्रेम करो चाहे न करो दोनोंसे
प्रेम नहीं करते । इन तीनोंमें कौनसे श्रेष्ठ हैं । किस पक्षको आप अ
समझते हैं, इस बात को बताइये ।

विचित्र हो जाती है। चिरकालसे जो बातें सोच रखी थीं कि उनके मिलने पर यह कहेंगे, वह कहेंगे वे सभी बातें भूल जाती हैं। तब चित्त ऐसा अधीर बन जाता है, कि कुछ निर्णय ही नहीं कर पाते क्या करें, कैसे प्यारेको रिझावें। कौन-सा आसन उनके अनुरूप बिछावें, उन्हें क्या खिलावें कैसे उनका स्वागत सत्कार करें। चित्त चाहता है, कि पथमें बरौनी रहित पलकोंके पाँवड़े बिछा दे, जिससे प्यारेके चरणों में बरौनी चुभ न जायँ। हृदय कमलको हा निकालकर आसनके लिये बिछा दें और अपने अधरामृतको पिलाकर ही प्यारेकी प्यासको बुझा दें। उस समय कहना चाहते हैं कुछ और मुखसे निकल जाता है कुछ। शरीरकी दशा विचित्र हो जाती है, वह कहने कहानेकी दशा नहीं है, अनुभव गम्य है। जिसे कभी प्रियका संयोग ही नहीं हुआ, जिसने अत्यंत उत्कंठा, उत्सुकताके साथ प्रियके आगमन पर उनका सर्वस्त्र समर्पित करके स्वागत सत्कार ही नहीं किया, उसके सम्मुख इस प्रसंगको कहना वैसा ही है जैसे दो चार वर्षकी अबोध बालिका-के सम्मुख सुरति सुखकी बातें कहना। प्रिय मिलनमें दर्शन-स्पर्शके अनंतर बातें होती हैं। वे बातें बिना अर्थ की व्यर्थ होती हैं। उन सबका एक ही अर्थ होता है। तुम मुझे कितना प्यार करते हो ? उनका भी एक ही उत्तर है, मैं तुम्हारे प्रेम भारको सम्हालनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, तुम्हारा ऋणियाँ हूँ। इन्हीं बातोंको विविध भाँतिसे कहा जाता है। घी, आटा और चीनी तीन ही पदार्थ हैं। इन्हींकी भाँति भाँतिकी मिठाइयाँ बन जाती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जहाँ श्यामसुन्दर सखियोंके मध्यमें प्रकट हुए थे, वह स्थान यमुनाजी के किनारे से कुछ दूर था। एकान्त क्रीड़ाके लिये सलिलका सान्निध्य—यमुनाका पावन पुलिन—आवश्यक है, अतः प्रियाओंके कंठोंमें गलबैयाँ डाल-कर श्यामसुन्दर उस स्थानसे कुछ हटकर प्रकृति निर्मित रास-

स्थलीके निकट—यमुना तट पर—आये। अपने मुखकी दशों दिशाओं को आलोकित करती हुईं वे ब्रजाङ्गनाएँ श्री भगवान् के आस पास ऐसी ही प्रतीत होतीं थीं, मानों नीलाकाशमें खिले हुए पूर्णचन्द्र के आसपास तारायें घिर रही हों अथवा कमलकी कर्णिकाको कोमल पंखुड़ियाँ घेरे हुए हों रासस्थलीकी शोभा अपूर्व थी, कालिन्दी भी आज अभिसारिका बनी हुई थीं। उनके भीतर कुमुदनी के पुष्प खिल रहे थे, मानों उनके रोमाञ्च हो रहे हों। वे अपनी तरंगरूपी बाहुओंसे प्रियतमका आलिंगन करनेको उत्कंठित-सी प्रतीत हो रहीं थीं। श्यामका निरन्तर चिंता करते करते वे भी श्यामा हो गयीं थीं, वे अपने आवर्त रूपी नाभिको दिखाकर अच्युतका आह्वानकर रहीं थीं। चन्द्रकी किरणों के प्रतिबिम्बित होनेके कारण मानों नील जल रूप साड़ीके भीतरसे उनका मुखचन्द्र दिखाई दे रहा था। प्यारे को बिठाने के लिये उन्होंने अपनी तरंगरूपी बाहुओंसे मानों बालुका का परम मृदुल सुकोमल आसन बिछा दिया हो। पुलिनके चारों ओर सुन्दर कुन्द, मन्दार, केतकी, पाटल आदि सुगंधित सुमन खिल रहे थे। मालती, माधवी, मल्लिका, यूथिका चम्पा, जाति तथा अन्य भी बेल जातिकी लताओं के विस्तृत वितान बने हुए थे। असंख्यों सघन निकुन्जें बनीं हुई थीं जिनमें कोमल, मृदुल, सुखकर, बालुका बिछी हुई थी, जिनमें किसलय और सुगंधित पुष्पोंकी सुखद शैयायें बिछी हुई थीं। शीतल मंद सुगन्धित समीर सशंकित भावसे वह रहा था। चित्र विचित्र विहंग अपने घोंसलोंमें पड़े पड़े प्रभुकी प्रतीक्षाकर रहे थे पादप अपने सिरपर सुमन लादे श्यामसुन्दरके स्वागतकी मानों प्रतीक्षा कर रहे हों। मधुकर अभीसे माधवके आगमन उपलक्ष में गीत गा रहे थे। शारदीय चन्द्र की कमनीय किरणों वनस्थली चमचम करके चमक रही थी, उस स्थान पर अप

ाश्रिता व्रजवनिताओंको लेकर व्रज-चन्द्र आये।

श्रीकृष्ण दर्शनाह्लादसे जिनके मुख कमल विकसित हो रहे प्रिय स्पर्शसे जिनके रोंयें खड़े हो रहे हैं। श्यामके सुहलानेसे नके शरीरोंमें सिहरन उठ रही है, कँप कँपी हो रही है। ामके सटा लेनेसे जिनके शरीरका संताप शान्त हो गया है, गोपिकायें ज्ञानकाण्डकी श्रुतियों के समान पूर्ण मनोरथा— प्त कामा—बन गयीं थीं। श्रीकृष्ण भी उस पुण्य पुलिनकी भा देखकर मुग्ध हुए। स्नेह भरित हृदय से बोले—"यहीं ़ देर बैठकर प्रेमकी मीठी मीठी बातें हों? बोलो तुम्हारी ा सम्मति है?"

उनमेंसे एक बोली—"श्यामकी सम्मति और सखियोंकी मति दो थोड़े ही हैं, जो श्यामकी सम्मति वही सखियोंकी मति, यहीं आसन बिछे।"

ीने सोचा—श्यामका आसन भी उनके अनुरूपही हो। का आसन मृदुल सुखकर तथा सुगन्धि युक्त हो। मदनमोहन हृदयपर मली हुई केसरकी कीचकी गंध अत्यन्तही ि्रय है।" सब सोचकरप्रियाजीकी जिस पंचरंगी ओढ़नीमें कुचकुंकुम कीच सनी हुई थी। उस ओढ़नीको ही दुहरी करके बालूके : बिछादिया। कामशास्त्रके उपयुक्त आसन पाकर योगियोंके ा कमलपर कुछ कालके लिये कठिनतासे बैठनेवाले कृष्ण क और क्रीड़ाके सहित सहर्ष उस गोपियोंके ओढ़े हुए ानपर बैठ गये। उनसे सटकर सखियाँभी बैठ गयीं। प्रियाजी ानके सुन्दर सुकोमल अरुणवरणके चरण अनुराग और ाद सहित अपने अंकमें स्थापित करलिये और वे उन्हें शनैः अपनी सुकोमल उँगलियों से सुहलाने लगीं। जो रकी समस्त शोभाके एकमात्र आश्रय हैं, जो आनन्दके ...

स्रोत हैं, जो सौन्दर्यकी खानि हैं, जो प्रेमके पयोधि हैं, वे श्यामसुन्दर साकार सुकुमार शरीर धारण किये श्रुतियोंके सा रूप होकर उस रासस्थलीमें सखियोंके संग सुशोभित हुए।

दोनोंही ओरसे प्याले भरे जा रहे थे, एक दूसरेके रूपासव पान करते करते किसीकी तृप्ति ही नहीं होती थी, वाणी रुद्ध कौन प्रश्न करे कौन उत्तर दे । फिरभी प्रेममें प्रश्नोत्तर होने चाहिए। प्रश्नोत्तर प्रेमका प्रधान अंग है, इससे प्रेमकी श्रीवृ होती है। गोपिकाओंके लिये कामोद्दीपनकी समस्त सामग्रि समुपस्थित थीं। श्यामसुन्दर उनके अधीन थे । वे अनुराग भ दृष्टिसे व्रजदेवियोंको देख रहे थे। वे भी मधुर मुस्कानमय लि कटाक्ष और भ्रू विक्षेप द्वारा श्यामसुन्दरके आननको अत्यधि चमत्कृत कर रही थीं। उनके चरणारविन्दोंको अपनी गोदमें र कर परमसुखदस्पर्शको अनुपम अनुभवकर रहीं थीं। उन पाणिपल्लवको सुकोमलकरों से दबाकर अलौकिक रस आस्वादन कर रही थीं । इस प्रकार प्यारेसे आशातीत सम्मा पाकर और अपना सर्वस्व समर्पण रूप सम्मान प्रदान कर उन्होंने कुछ प्रश्न करने आरम्भ किये। गोपियोंने कहा—"श्या सुन्दर! हम तुमसे कुछ पूछें उत्तर दोगे ?"

अनुराग रसको सबके विकसित वदनों पर छिड़कते हुए ब वारी बोले—"हाँ! पूछो ?"

गोपियोंने कहा—"बुरा तो न मनोगे ?"

हँसते हुए श्यामसुन्दर बोले—"बुरामाननेकी कौनसी ब है ? प्रेममें भला, कहीं बुरा माना जाता है। तुम्हेंजो पूछना हे निःसंकोच होकर पूछो। मैं यथामति उसका उत्तर दूँगा।

गोपिकाओं ने कहा—"हम पूछना यह चाहतीं हैं, कि संसार

तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं। उन तीनोंमें तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो ?"

श्यामसुंदरने कहा —"इन तीनोंकी व्याख्या भी तो करो,वे कौन कौन से तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं ?"

गोपियोंने कहा—"देखिये, एकतो ऐसे लोग होते हैं, जो प्यार करनेवालोंसे प्यार करते हैं। अर्थात् तुम हमें चाहते हो हम तुम्हें चाहते हैं। दोनों ओरसे प्रेम होता है। दूसरे प्रकार के ऐसे लोग होते हैं, कि उनसे चाहे कोई प्रेम न भी करो तो भी वे प्रेम करते ही हैं। और तीसरे ऐसे होते हैं, कि उनसे चाहें कोई प्रेम करो या न करो वे किसीसे प्रेम करते ही नहीं। इन तीनों में से आप किस पक्षको श्रेष्ठ समझते हैं ? आपके मतमें इनमें से कौन-सा श्रेष्ठ है ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो !सर्वान्तयामी श्यामसुन्दर सखियों के मनोगत भावोंको समझ गये। उन्होंने समझ लिया, ये मेरे अपराधको प्रश्न करके मेरेही मुखसे सिद्ध कराना चाहती हैं, अतः ये भी प्रश्नोंको सुनकर मुसकरा गये। सम्हलकर उत्तर देने को प्रस्तुत हुए।

मुनियो ! गोपियोंने कुछ आक्षेपकी दृष्टिसे ये प्रश्न नहीं किये थे। मैं इस बातको बार बार बता चुका हूँ और आगे भी बार बार बताऊँगा, आप इसे मेरे कथनरूप पदकी टेक समझ लें। प्रेममें शब्द कुछ कहे जाते हैं, उनका अर्थ कुछ लगाया जाता है। प्रेमकी वृद्धिके लिये जो बातें की जाती हैं वे ऊपर से देखनेमें तो अटपटी-सी लगती हैं, किन्तु उनके भीतर रसभरा रहता है। महानुभावो, गोपियोंके इन प्रेममें पगे पावन प्रश्नोंका प्रभुने कैसे कौशलसे स्पष्ट और दो टूक उत्तर दिया। उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। आप सब समाहित चित्तसे इसे श्रवण करनेकी कृपा करें।

छप्पय

पूछें करिकै व्यंग श्याम ! इक बात बताओ ।
तीन भाँतिके पुरुष साधु को शक मिटाओ ॥
एक प्रेम लखि करहिं उभय पक्षनि तिनि प्रेमहु ।
करें तीसरे नहीं उभय पक्षनि तिनि नेमहु ॥
इनमें कौन निकृष्ट हैं, को मध्यम को श्रेष्ठतम ।
नीति निपुण तुम धर्मवित, तातें पूछें तुमहिं हम ॥

श्रीभगवान् द्वारा गोपियोंके प्रश्नोंका उत्तर

(६६२)

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्,
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथा धनो लब्धधने विनष्टे,
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३२ अ० २० श्लो०)

छप्पय

बोले मुनिकें श्याम सुनहु सखि ! सत्य बताऊँ ।
नीति धर्मको मर्म यथावत तुम्हें सुनाऊँ ॥
करें स्वार्थ हिय धारि प्रेम ते नर व्यापारी ।
नहीं तहाँ सौहार्द प्रेम है यह व्यवहारी ॥
करें प्रेम निरपेक्ष जे, ते कृपालु पितु मात हैं ।
तहँ धर्म कैतव रहित, बन्धु सुहृद् ते तात हैं ॥

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपियोंके प्रश्न करनेपर भगवान् कह रहे हैं—सखियो ! मुझे जो लोग भजते हैं, मैं उन्हें भी नहीं भजता । इसलिये कि उनकी मनोवृत्ति निरन्तर मेरी ओर लगी रहे, जिस प्रकार किसी निर्धनको बहुत-सा धन प्राप्त हो जाय और फिर विनष्ट हो जाय, तो वह निरन्तर धनकी चिन्तामें निमग्न होकर इस संसारको सर्वथा भूल जाता है, उसीका स्मरण करता रहता है ।

वस्तु या तो सभी बहुमूल्य हैं या सभी अमूल्य हैं। क्योंकि सभीकी उत्पत्ति पंचभूतोंसे है और पंचभूतोंको किसीने मोल नहीं ले लिया है। किन्तु व्यवहारमें इन वस्तुओंका मूल्य देश, काल और पात्रके अनुसार घट बढ़ जाता है। गङ्गा किनारे सम भूमिमें इतने आम होते हैं, कोई पूछता ही नहीं। वे ही जब ऐसे शीत प्रधान देशोंमें ले जाये जाते हैं जहाँ आम होते ही नहीं, वहाँ उनका मूल्य बढ़ जाता है। गङ्गा किनारे गङ्गाजीके जलका कोई मूल्य ही नहीं, किन्तु वही मरुभूमिमें ले जाया जाय, तो उसकी एक-एक बिन्दुके लिये भावुक भक्त तरसेंगे। यह तो देशजन्य दृष्टान्त रहा। कालजन्य जैसे जाड़ेमें कोई बरफ बेचे तो उसे कौन लेगा। उसे ही यदि वैशाख ज्येष्ठ की गरमीमें बेचे, तो सब लोग बड़ी उत्कंठा और आग्रहसे लेंगे। इसी प्रकार पात्रको समझना चाहिये। छोटा साधारण आदमी किसी वैद्यसे कोई ओषधि माँगने जाय, तो वह बिना मूल्य दे देगा। उसीको कोई धनिक माँगने जाय, तो उसका बहुमूल्य ले लेगा। वस्तु एक ही होती है स्थिति और भावनाके अनुसार उसमें भेद हो जाता है। यह सम्पूर्ण संसार प्रेम के ही ऊपरअवलम्बित है। न्याय शास्त्रका सिद्धान्त है संसारमें सबके पृथक् पृथक् परमाणु हैं। जब वे परमाणु परस्परमें घुलमिल जाते हैं आपसमें प्रेम करने लगते हैं, तब सृष्टि हो जाती है। जब वे एक दूसरेसे पृथक् हो जाते हैं, परस्परमें प्रेम करना छोड़ देते हैं, तो प्रलय हो जाती है। आप ध्यान पूर्वक देखें प्रेमके बिना किसी की भी सत्ता रह सकती है? ये जितने भवन खड़े हैं प्रेमके सहारे खड़े हैं। ईंट चूना गारा परस्परमें प्रेम पूर्वक सटे न रहें, बिखर जायँ, विलग हो जायँ तो कोई भवन रह सकता है? जितने वस्त्र हैं उनके ताने बानेके तन्तु आपसमें मिले न रहें, सटे न रहें, तो वस्त्र का अस्तित्व रह सकता है? परिवारके लोग प्रेमपूर्वक न

रहें तो सम्मिलित परिवार रह सकता है? कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि संसारमें जो कुछ हो रहा है, प्रेमके ही सम्बन्ध से हो रहा है। खाना पीना, मिलना, जुलना उठना बैठना, बोलना चालना, व्यापार, खेती-बारी, पठन-पाठन, यज्ञ अनुष्ठान, शासन, सेवा तथा यावन्मात्र व्यवहार है प्रेमके ही सहारे चल रहा है। अन्तर इतना ही है कि देश काल, पात्र परिस्थिति तथा भावना केअनुसार प्रेमके भेद हो जाते हैं। उत्कृष्ट प्रेम, स्वार्थ जन्य प्रेम, निस्वार्थ प्रेम यही अन्तर है। जो प्रेम प्रेमके लिये किया जाता है वही प्रेम है, वही नित्य है वही स्थाई है उसीको हरि, कृष्ण, ईश्वर, परमात्मा कुछ कह लो। जो प्रेम संसारी स्वार्थ साधनके लिये हैं। उसे ही अज्ञान मोह, विषयानुराग, संसारी तथा नश्वर कहते हैं। जिनके हृदयमें प्रेमके लिये प्रेम उत्पन्न हो गया है वे ही प्रेमी हैं ऐसे प्रेमियों के पादपद्मोंकी परागसे विश्व पावन बन जाता है। ऐसे प्रेमके साकार स्वरूप श्रीनन्दनन्दन हैं और उनकी अनन्य उपासिका श्रीव्रजाङ्गनायें। संसारमें गोपियोंने जैसा प्रेमका आदर्श उपस्थि किया है वैसा और कहाँ मिलेगा। उन्होंने किसी संसारी व्यक्तिसे प्रेम नहीं किया, परमात्मासे प्रेम किया सो भी जार भावसे। जार भावमें कितना आकर्षण हैं, यह कहनेकी बात नहीं। उन भाग्यवती व्रजाङ्गनाओंकी समस्त चेष्टायें प्रेमके श्रीवृद्धिके ही निमित्त हैं। उनकी चलन चितवन, उठन बैठन, हँसन मुसकान, प्रश्न उत्तर तथा अन्यान्य सभी चेष्टायें लोकमें प्रेमका आदर्श उपस्थित करने के ही लिये हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब गोपियोने भगवान्से तीन प्रश्न किये। एक तो प्रेमके बदलेमें प्रेम करने वाले, दूसरे बिना प्रेमके भी प्रेम करने वाले और तीसरे प्रेम करने वालोंसे तथा प्रेम न करने वालोंसे दोनोंसे ही स्नेह न करने वाले इस प्रकार

मनुष्योंकी तीन श्रेणी बताकर इनकी उत्तमता, मध्यमता तथा अधमताके सम्बन्धमें पूछा, तो भगवान् इन प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए।

भगवान्ने कहा—"गोपिकाओ! तुमने प्रेम सम्बन्धी प्रश्न करके बड़ा ही सुन्दर कार्य किया। मुझे प्रेमके सम्बन्ध में कुछ चर्चा करने का अवसर दिया। सभी प्राणी प्रेमके भूखे हैं। जब प्रेमके लिये भटक रहा है। प्रेमकी पिपासा से पिपासित हुआ प्रेम पयकी खोज कर रहा है। संसारमें सभी एक दूसरेसे प्रेम करते हैं प्रेमके बिना व्यवहार चल ही नहीं सकता। तुमने प्रेमियों को तीन श्रेणी में विभक्त करके प्रश्न पूछे हैं, मैं उसीके अनुसार उत्तर देता हूँ।

देखो, जो लोग अपेक्षा रखकर प्यार करते हैं। अर्थात् उससे हमारा यह काम निकलजाय, वह सोचे उससे मेरा यह काम निकल जाय। इस दृष्टिसे जो परस्परमें प्यार करते हैं। वह केवल स्वार्थ का प्यार है। उसमें विशुद्ध धर्म नहीं है व्यापार है, आन्तरिक सौहार्द नहीं, काम चलाने का उपाय है। किसी वाटिका में एक अन्धा बैठा था, उसे पके पके आमोंकी सुगन्धि आ रही थी। आम ऊँचे पर पक रहे थे, उसकी जीभमें बारबार पानी भर आता, किसी प्रकार आम मिलें। नाकके द्वारा सुगन्धि उसके भीतर जा रही थी, किन्तु करता क्या? आँखोंसे तो आम दिखाई नहीं देते। उसी समय एक लूला आ गया। सुन्दर-सुन्दर सिंदूरिया पके-पके आमोंको देखकर उसकी भी जीभ लपलपाने लगी। किन्तु उसके दोनों पैर नहीं थे। सामने उसने अन्धेको बैठा देखा। जहाँ दो का एक-सा स्वार्थ हो जाता है वहाँ परस्परमें स्वार्थ सिद्धिके लिये प्रेम हो जाता है लूलेके तो आँखें थीं, अन्धेकी भाव भङ्गी देखकर ताड़ गया, कि आमोंकी सुगन्धिसे इसके अन्तःकरणमें भी उथल पुथल हो रही है। उसने खाँस

मठार कर कहा—"सूरदासजी! राम राम। कहिये, क्या हाल चाल हैं? अच्छे तो हो? कैसे इधर भटक रहे हो?"

वाणी सुनकर अन्धा समझगया, यह वही मिठुआ लूला है। अन्धे लोग छूकर, वाणी सुनकर तुरन्त पहिचान लेते हैं। बोला—"राम रामजी मिठुआ चौधरी! देखो, ये आम कैसे पक रहे हैं?"

हँसकर लूलेने कहा—"क्या सूरदास जी! आम खानेको मन चल आया है क्या?"

सूरदासने व्यङ्गके स्वरमें कहा—"हाँ, जी मेरा तो मन चल ही रहा है। तुमने तो मानों अस्वादु व्रतकी दीक्षा ले रखी है। धर्मसे कहो, तुम्हारा मन नहीं चल रहा है?

लूला यह सुनकर हँसपड़ा और बोला—"सूरदासजी! आपतो मनकी बातभी ताड़ जाते हैं। इसीलिये आपका नाम प्रज्ञाचक्षु है। इन पके पके सिंदूरिया आमोंको देखकर मेरीभी जिह्वासे पानी टपक रहा है।"

सूरदास बोले—"फिर देखते क्या हो, मारो दो हाथ, अभी टपटप करके गिराते हैं।"

लूला बोला—"हाथ कैसे मारूँ। आमतो हैं दूर। मेरे एकभी पैर नहीं। खड़ा भी नहीं हो सकता।"

सूरदास बोले—'देखो, एक काम करो। तुम मेरे कंधेपर चढ़ जाओ। यह मेरी लाठी लेलो। मारो पेड़में, सभी आम टपक पड़ेंगे। दोनों आनन्दके साथ भरपेट खायँगे।"

लूलेने ऐसाही किया आम गिरे दोनोंने खाये। खा पी कर अंधा अपने घर चला गया। लूला अपने घर। यहाँ आम खानेका दोनोंका स्वार्थ था इसलिये अंधेने लूले को कंधेपर चढ़ालिया इसलिये यह प्रेम निकृष्ट है। संसारमें सर्वत्र ऐसा स्वार्थ जन्य प्रेम देखनेको मिलता है। गाय भैंस जब तक दूध देती

उन्हें दूधके लोभसे खली भूसा बड़े प्रेमसे खिलाता है। जहाँ दूध देना बन्द किया तहाँ ध्यान भी नहीं देता। बैल जब तक हृष्ट पुष्ट हैं हलमें अच्छी तरहसे चलता है, तब तक किसान उसे दानाभी देता है, नमकभी देता है। जहाँ बूढ़ा हुआ, कि फिर सूखा भूसा भी नहीं डालता। घरका नौकर जब तक काम करता है, तबतक सब उससे प्रेम करते हैं। जहाँ बूढ़ा हुआ उसे निकाल बाहर करते हैं। नौकरभी स्वार्थवश वेतनके लोभसे काम करता है, जहाँ उसका वेतन न मिला, गृहस्वामी दरिद्र हुआ तहाँ वह दूसरे स्थानपर जाकर नौकरी कर लेता है।

यजमानको जबतक पंडितजी से यज्ञ करानी होगी, तब तक पंडितजी पंढितजी कहेगा। काम निकल गया। पंडितजी अपने घर हम अपने घर। मार्गमें कहीं मिलेंगे भी तो आँख न मिलावेंगे क्योंकि आँख मिलाने पर पैलगी करनी पड़ेगी। पंडितजीकाभी यही हाल है जब तक दक्षिणा नहीं मिलती, तब तक लालाजी, लालाजी कहेंगे। जब अंटी गरम हुई कि लालाजी होंगे अपने घरके होंगे।

वेश्यागामी पुरुष जब तक वेश्या बूढ़ी नहीं होती, रोगिणी नहीं होती तब तक उसके प्रति कितना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। उसपर प्राण निछावर करनेको तत्पर रहते हैं। जहाँ उसे कोई भयंकर रोग हुआ या बूढ़ी हुई तो उसके पासभी नहीं फटकते। यही दशा वेश्याओंकी है। जबतक पुरुष उन्हें पैसा देता है, तबतक ऐसा प्रेम प्रदर्शित करती हैं कि हृदयको निकालकर रख देती हैं। बारबार कहती हैं—"देखना, जहाँ तुहारा पसीना गिरेगा वहाँ मैं रक्त गिराऊँगी।"जबवह निर्धनहो जाता है, पैसा नहीं देता तो उसे धक्का देकर कोठेसे नीचे निकाल देती हैं।

व्यापारीको देखो। गाहकको देखते ही चिल्लायेंगे—"पंडितजी, यहाँ आइये। लालाजी, बाततो सुनिये। बाबूजी! लेना चाहें मत

वस्तुको देख तो लो।" जबतक वह वस्तुको खरीदेगा नहीं तब तक कैसो मोठी मीठी बातें करेंगे। दुकान आपकी है, आपसे मुझे कुछ लाभतो करना नहीं। मेरा बीजक देखले। दामके दाम देदें। चार पैसा कम देदे। इतनेमें कहीं और मिले, तो मैं बिना मूल्य दूंगा। आपही सोचिये, आपसे मैं छल कपट कर सकता हूँ। लाभ करनेको इतना बड़ा संसार पड़ा है आपतो घर के आदमी हैं।" इस प्रकार मीठी मीठी चिकनी चुपड़ी बातें करके प्रेम दिखाते हैं। उसे फँसालेते हैं। जहाँ स्वार्थ सिद्ध हुआ तहाँ फिर बातेंभी नहीं पूछते। कहाँतक कहें संसारमें सर्वत्र स्वार्थका ही बोल बाला है। जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध होगा, ऐसा प्रेम दिखावेंगे मानों ये ही सर्वस्व है। स्वार्थ को सिद्ध न होते देखकर उनसेही शत्रुता करने लगेंगे।

भगवान कहरहे हैं—"सखियो! तुमतो मेरी प्राणप्रिया हो। सखी हो, एकान्तमें रहस्यकी बातें सुननेवाली हो। मेरा तुमसे स्वार्थजन्य प्रेम नहीं स्वार्थ का प्रेमतो बहुत अच्छा है। उसमें सौहार्द नहीं होता। उसमें धर्मकी भावना भी नहीं रहती। सदा स्वार्थ परही दृष्टि लगी रहती है। ऐसा जो परस्परका प्रेम है वह धर्म शून्य, सौहार्दसे हीन, प्रयोजन सिद्धिके लिये होता है। नीच का परस्परका प्रेम इसी निमित्त होता है।

सुन्दरियो! दूसरे ऐसे लोग होते हैं, जिनसे तुम चाहे प्रेम करो चाहे न करो वे तुमसे अवश्य प्रेम करेंगे। सेवा न करने वाले से भी प्रेम करते हैं। उनमें दो प्रकारके लोग होते हैं, एकतो परोपकारी कृपालु महात्मा, दूसरे माता पिता। कृपालु परोपकारी महात्मातो धर्मकी प्रेरणासे सबके प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जलमें बिच्छू बहा जा रहा है परोपकारी संतके हृदयमें दया आ गयी, बह जायगा तो मर जायगा। तुरन्त उन्होंने उसे निकाला, उसने स्वभावानुसार काट लिया, हाथ हिलनेसे फिर

जलमें गिरगया। फिर उनसे नहीं रहा गया, फिर निकाला उसने फिर काटलिया। इस प्रकार कई बार उसने काटा फिरभी संतने उसे बहने नहीं दिया, निकालकर बाहरकर दिया। इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं था, किन्तु कृपाके वशीभूत होकर धर्म समझकर उन्होंने उसे निकाला। यह उनका अकृतज्ञके प्रति किया हुआ प्रेम धर्मकी प्रेरणासे है।

दूसरे माता पिता भी अपनी संतानों पर प्रेम न करने परभी प्रम करते हैं। पुत्र कितना भी अयोग्य हो, मूर्ख हो, क्रोधी हो। माता पिता उसके प्रति प्रेम रखते ही हैं। उसकी मङ्गल कामना ही करते हैं। पुत्र चाहे उन्हे गाली भी दे, मारे भी तो भी वे सब सह लेते हैं। यह सौहार्द प्रेमहै। सन्तान अपनी आत्मा रूपमेंही उत्पन्न होती है। यह ऐसी दृढ़ शृंखला है। बन्धुओंके प्रति ऐसा स्वाभाविक स्नेह बन्धन होता है, कि उसे त्यागना अच्छे अच्छे वीतराग मुनियोंके लिये भी कठिन हो जाता है। इस स्वाभाविक सौहार्द प्रेममें अपेक्षा नहीं रहती कि वह हमसे प्रेम करे, तभी हम उससे करें। जिनसे अपना सम्बन्ध हो गया, वे कैसे भी क्यों न हों उन्हें निभाना ही पड़ता है। सज्जन लोग जिसे एक बार अंगीकार कर लेते हैं, उसका प्रतिपालन यावज्जीवन करते ही हैं। यही उनकी साधुता है।

तीसरे वे लोग होते हैं, कि तुम चाहें उनसे कितना भी प्रेम करो वे तुमसे प्रेम करेंगे ही नहीं। जब वे प्रेम करने वालेसे प्रेम नहीं करते, तो प्रेम न करने वालेसे तो करने ही क्यों लगे ?

यह सुनकर गोपिकायें आपसमें सैनोंमें संकेत करने लगीं, कि प्रतीत होता है ये छलिया कृष्ण इस तीसरी ही श्रेणीमें हैं। देखो, हम इनसे कितना प्यार करती हैं, किन्तु ये हमें छोड़कर अन्तर्धान हो जाते हैं। हमें अपने दर्शनोंसे वंचित कर देते हैं।"

सर्वज्ञ भगवान उनके भावको समझ गये और बोले—'हाँ, तो ये जो मैंने तीसरी श्रेणीके पुरुष बताये हैं। इनमें भी चार भेद हैं। ऐसा व्यवहार चार प्रकारके ही लोग करते हैं। एक तो रागद्वेष से रहित वीतरागी आत्माराम परमहंस लोग होते हैं। उनकी दृष्टि में भेद भाव रहता ही नहीं। वे सम्पूर्ण संसार-को प्रकृति पुरुष का क्रीड़ास्थल समझते हैं। उनकी दृढ़ धारणा हो जाती है, गुण गुणोंके साथ वरत रहे हैं। इस गुण प्रवाह पतित संसारमें अच्छा क्या; बुरा क्या ? उपकार क्या, अपकार क्या ? शत्रु कौन, मित्र कौन। जब सब एक ही हैं तो किससे राग करें किससे द्वेष। उनके कंठमें कोई चाहें सर्प डाल जाओ या माला, दोनोंको ही वे समान समझते हैं। चाहें कोई उनके अंगमें चंदन लपेट जाओ या कीच। चंदन लपेटने वाले पर प्रसन्न नहीं होते, कीच लपेटने वाले से क्रुद्ध नहीं होते। ऐसे पूर्ण काम पुरुषों के अन्तः करणमें अप्रेमीका भेद भाव नहीं रहता।

दूसरे होते हैं पूर्ण काम, जो जिस कामको करना चाहते हैं, उनका वह काम पूरा हो जाता है, तो वे न प्रेम करने वालोंसे प्रेम करते हैं और न अपनेसे न प्रेम करने वालोंसे प्रेम करते हैं। हमें चार रोटी की आवश्यकता है, जहाँ चार रोटी मिल गयीं, वहाँ कोई निंदा करो स्तुति करो, मान करो अपमान करो सभीमें समान रहते हैं।

तीसरे होते हैं गुरुद्रोही। पहिले तो गुरुजनोंकी सेवा सुश्रूषा करते हैं, उनका सम्मान करते हैं पीछे पाप उदय होने पर किसी बात पर वे गुरुसे द्रोह करने लगते हैं, उनका अनिष्ट चिंतन करते हैं इस पापसे उनकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो जाती है, कि उन्हें अपकारी उपकारी का विवेक ही नहीं रहता। उनका हृदय ऐसा मलिन हो जाता है, कि वे शत्रु मित्र सभीको समान समझने लगते हैं। सब पर शङ्का करते हैं, किसी से प्रेम नहीं करते।

चौथे होते है कृतघ्न। ये गुरुद्रोहियों से पृथक् होते हैं। गुरु द्रोही तो पीछे किसी कारण विशेषसे गुरुद्रोह करता है, किन्तु कृतघ्न तो जन्मसे ही ऐसे होते हैं, कि उनके साथ कोई कितना भी उपकार करे, वे सदा उसका अपकार ही सोचेंगे। जब वे अपने उपकारी के प्रति प्रेम प्रदर्शित नहीं कर सकते, तो शत्रु और उदासीनके प्रति तो करेंगे ही क्या। संसारमें कृतघ्नतासे बढ़कर कोई पाप नहीं। अपने उपकारीके प्रति कृतज्ञता प्रकट न करना इतना बड़ा पाप है, कि इससे जीवका कभी निस्तार हो ही नहीं सकता। जो जिसकी सेवा सुश्रूषा करता है उसके प्रति मनमें आदरभाव न रखना यही कृतघ्नों के चिन्ह हैं। ये लोग बड़े क्रूर होते हैं मैंने तुम्हारे तीनों प्रश्नोंका संक्षेप में उत्तर दे दिया। अब तुम और क्या पूछना चाहती हो?"

कृतघ्न की परिभाषा सुनकर गोपिकायें परस्परमें एक दूसरे की ओर निहारकर मुसकराने लगीं। वे श्रीकृष्ण भगवान्‌की ओर देखतीं और हँस जातीं। उनकी चेष्टाओंसे प्रतीत होता था कि 'श्यामसुन्दर! देखो, हम तुम्हारे निमित्त घर द्वार कुटुम्ब परिवार सब कुछ छोड़कर आईं और तुम हमें छोड़कर चले गये, क्या यह तुम्हारी कृतघ्नता नहीं है।" भगवान् उनके मनोगत भावों को ताड़ गये और बोले—"सखियो! तुम सोच रही होगी, कि इन तीनोंमे से मैं किस श्रेणीमे हूँ। क्यों यही सोच रही हो न?"

हँसकर गोपियोंने कहा—"अब महाराज! तुम ही जानो। अच्छी बात है, बताओ, तुम इन तीनोंमेंसे किस कोटिमें में हो?"

भगवान् बोले—"मैं इन तीनोंमे से किसी कोटिमें नहीं हूँ। मैं तो परम कारुणिक हूँ।"

गोपियोंने कहा—"वाह जी, परम कारुणिक! बलिहारी है तुम्हारी करुणाके लिये। पहिले अमृत रस पिलाकर फिर विष

देना, यह कहाँ की करुणा है ? पहिले तो हमें बुलाकर हृदयसे लगाया, फिर कहते हो, दूर-दूर। क्या इसीका नाम करुणा है। हमें बलपूर्वक बाँसुरी बजाकर वनमे बुला लिया फिर छिप गये ऐसी विचित्र करुणा को दूरसे ही डंडौत है।"

भगवान् हँसे और बोले—"सखियो! मैंने यह अपराध किया अवश्य, किन्तु कृतघ्नताके वशीभूत होकर नहीं किया। यह सब मैंने प्रेमकी वृद्धिके लिये ही किया था। तुम्हारी उत्कंठा को बढ़ाने के लिये ही किया था।"

गोपियोंने कहा—"बीचमें छिप जाने से प्रेममें वृद्धि होती है या रसभङ्ग होता है ?"

भगवान् बोले—"गोपियों! तुम रस की पंडिता हो। सब जानती हुई भी मेरे मुखसे सुनना चाहती हो तो सुनो। बात यह है, कि यह प्रेम रस ऐसा आसव है, जिसका पान रुक रुक कर ठहर ठहर कर किया जाता है, इससेइसमें अधिक मादकता आती है। वस्तुके प्राप्त होते समय उतना सुख नहीं होता, जितना उसकी मीठी-मीठी स्मृतिमें सुख होता है। केशर, कपूर, गुलाबजल पड़ी हुई केशरिया मेवा पड़ी बरफी खाते समय तो स्वादिष्ट लगती ही है, पीछे जो उसकी सुगंधि युक्त डकारें आती हैं और उसका स्वाद और स्मरण आता है, उसमें एक अपूर्व ही सुख होता है। वस्तुका यथार्थ गुण उसके परोक्षमें ही प्रकट होता है। एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति है, उसने धनका सुख प्राप्त किया नहीं है, केवल उसकी प्रशंसा ही सुनी है। सहसा उसे धन प्राप्त हो गया। कुछ दिन उस धनका उपभोग भी किया। जब फिर उसका धन नष्ट होता है, तब उसका चित्ततन्मय हो जाता है। निरन्तर उसीको सोचता रहता है। उसकी धन प्राप्तिकी और भी अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि जब तक यह ... तब तक तो वह धनके सुखसे अनभिज्ञ था। अब

धनके सुखको भोग लिया, तो फिर वह उसीकी प्राप्तिके लिये अधीर बना रहता है। उसे खाना-पीना उठना-बैठना कुछ भी नहीं सुहाता। सगे सम्बन्धी कोई अच्छे नहीं लगते। कैसे धन प्राप्त हो यही सोचता रहता है।

वही दशा मेरेवियोग में तुम्हारी हुई। तुमने मेरे निमित्त लोकलाजको तिलाञ्जलि देदी। जिन्होंने धर्मपूर्वक जीवन विताया और धर्ममें ही जिनकी अत्यन्त आसक्ति है वे सब कुछ छोड़ सकते हैं,किन्तु धर्मको नहीं छोड़ सकते। तुम पतिव्रताओंने मेरे निमित्त लौकिक पतियोंका भी परित्याग कर दिया है। धर्मको भी मेरे पीछे तुच्छ समझा। सबसे अधिक मोह कुटुम्बियोंका होता है। जो अपने प्रेमसे प्राणीको बाँध लें वे बन्धु कहलाते हैं। उन बन्धुओं का त्याग स्वेच्छा से कौन सहृदय कर सकता है। तुमने मेरे लिये अपने बन्धु बान्धवोंको भी छोड़ दिया। गृहस्थी को घरमें सभी प्रकारके सुख होते हैं। उठने बैठनेके नियत स्थान होते हैं। सभी आवश्यक सामग्री घरमें रहती है। सब ऋतुओंकी आवश्यक वस्तुओंका संग्रह सम्पन्नसद्गृहस्थके यहाँ रहता है। तुम्हारे घरमें सब वस्तुएँ उपस्थित थीं, तुम्हारे परिवार वाले तुमसे प्यारभी करते थे, किन्तु केवल एक मात्र मेरे लिये ही तुम घरबार कुटुम्ब परिवारको छोड़कर इस बीहड़ वनमें चली आयीं और मेरे लिये इस कँकड़ीली पथरीली भूमिमें सब कष्ट सह रही हो। तुमने मेरे प्रेमके लिये बहुत त्याग किया है।

मेरीभी हार्दिक इच्छा है, तुम्हारा मन सदा मुझमें लगा रहे तुम अनन्य भावसे मुझेही प्यार करो। तुम्हारी चित्त वृत्तियाँ मेरेमें ही सीमित रहें। तुमसे यदि मैं निरन्तर मिला रहता तो, तुम्हारी मुझे प्राप्त करनेकी इतनी तीव्र उत्कंठा कभी नहीं होती। इसीलिये तुम्हें एकबार आलिङ्गन सुख देकर थोड़ी देरके लिये मैं तुम्हारी अधीरता बढ़ानेको छिप गया। छिपकर कहीं दूर

चला गया होऊँ सो भी बात नहीं। तुम मुझे देख न सको इस-लिये समीप—तुम्हारे सामने ही—मैं छिप गया था। इसलिये हे मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारियो! हे मेरे हृदयकी अधीश्वरियो! तुम मुझपर क्रुद्ध न होना। कृतघ्न होनेका दोषारोपण भी मत करना। मैंतुम्हारा प्यारेसे भी प्यारा हूँ,प्रेष्ठ हूँ,तुम्हारा अपना ही हूँ।

जो लोग तुम मेरी प्रियाओं में दोष बुद्धि करेंगे, वे नरकके अधिकारी होंगे। तुम्हारा मुझसे मिलन सर्वथा निर्दोष है। तुम मुझे मनुष्य समझकर मेरे समीप आतीं तब तो पाप ही था। तुमने तो मेरी भगवत्ता कई बार प्रत्यक्ष देखी है। तुम्हारी तो मुझमें दृढ़ धारणा है। तुम मुझे प्राकृत पुरुषतो समझती नहीं, इसीलिये तुमने साधारण लोगोंसे किसी भी प्रकार न टूटने वाली घर और कुटुम्बियों की दुस्तर शृंखलाको तोड़कर एक मात्र मेराही आश्रय लिया है। तुम्हारा मुझसे यह मिलन सर्वथा दोषरहित है। इसमें तनिक भी पाप नहीं, स्वार्थ नहीं। तुम जो वस्त्र पहिनती हो, अपने लिये नहीं केवल मेरी प्रसन्नताके लिये ही लिये पहिनती हो। तुम अपने काले काले कुटिल केशोंमें जो सुगंधित तैल डालती हो, मालती माधवी आदिकी मालायें खोंसती हो, अपने सुखके लिये नहीं, मुझे सुख पहुँचानेको तुम यह सब करती हो। तुम जो काजर बेंदी, सिंदूर आदि लगाती हो, पान आदि खाती हो, केवल मेरे निमित्त ही सब करती हो। मैं जानता हूँ तुम्हें स्वयं स्वादकी रुचि नहीं खानेमें तुम्हें आसक्ति नहीं, किन्तु मै प्रसन्न होऊँगा इसीलिये तुम खाती हो। मेरे उच्छिष्ट प्रसादको पाती हो। सारांश यह कि तुम सब कुछ मेरे ही निमित्त करती हो, मेरे ही लिये जीवन धारण करती हो, मेरी सेवाके निमित्त ही स्वाँस लेती हो। तुमने अपने सदाचार, सद्व्यवहार और सुशीलता आदि गुणोंसे मुझे बिनामोलके खरीद लिया है, मैं तुम्हारा क्रीतदास बनगया हूँ। इस जीवनमें तुम्हारे ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। इस

जीवनकी तो बात ही क्या है, देवताओं के समान लम्बी आ
पाकर भी मैं तुम्हारे अनन्त उपकारों से एक भी उपकार
प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं। मैं अपने पुरुषार्थके द्वा
तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। स्वयं ही कृपा क
अपनी उदारतासे मुझे उऋण कर दो यह दूसरी बात है। मैं
मैं उऋण होना भी नहीं चाहता। उऋण होनेसे मेरा तुम्हा
सम्बन्ध टूट जायगा। उसे मैं तोड़ना नहीं चाहता,मैं सदा तुम्हा
ऋणियाँ बना रहूँ और तुम मेरी सदा ऋण पानेवाली महाज
बनी रहो, इसीमें मुझे सुख है। तुम मुझे कृतघ्न मत समझो।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! इस प्रेमका पन्थ कैसा निराल
है। जो सर्वेश्वर है, सबका स्वामी है। ब्रह्मादिक देव, इन्द्रादि
असंख्यों लोकपाल जिसकी भृकुटि विलाससे थर थर काँपत
रहते हैं यही आज प्रेमके अधीन होकर गोकुलकी गंवार ग्वा
लिनियोंके सन्मुख अधीरता प्रकट कर रहा है। उनके उपकारक
बदला चुकानेमें अपनेको असमर्थ सिद्ध कर रहा है। प्रेममें दोनं
ही ओरसे अधीनता होती है। वह उसे अपना सर्वस्व समर्पि
करता है, वह उसे सब कुछ सौंपता है। भगवानकी तो प्रतिज्ञा
है जो मुझे जैसे भजता है, उसे मैं भी वैसे ही भजता हूँ। जो
मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करता है, उसे मैं भी अपना सर्वस्व
समर्पित करके उसका दास बन जाता हूँ।

गोपिकायें अपने प्राणधन श्यामसुन्दरके श्री मुखसे ऐसे प्रेम
में पगे स्नेह भरे शब्द सुनकर निहाल हो गयीं। कृतकृत्य हो
गयीं। उनका हृदय बाँसों उछलने लगा। वे अपने प्रेम वेग
को रोकनेमें असमर्थ हो गयीं। श्यामसुन्दरसे लिपटकर प्रेमके
अश्रुओंसे उनके पीताम्बरको भिगोने लगीं। भगवानके सुमधुर
वचनोंसे उनका रहा सहा विरहजन्य दुःख दूर हो गया और
उनका अङ्ग सङ्ग पाकर वे सबकी सब सफल मनोरथ बन गयीं।

छप्पय

प्रेमहीन नरचारि श्रेष्ठ कछु अपर शतघ्नी।
आत्मराम अरु पूर्णकाम गुरुशत्रु कृतघ्नी॥
हौं इन सबतैं पृथक् प्रेष्ठ पति सुहृद कारुनिक।
प्रेम वृद्धिके हेतु करयो मैंने सब नाटक॥
अति दुस्तर गृह शृंखला, कू आई तुम तोरिकैं।
मम हित पति, सुतगृह कुटुम, तैं आई मुँह मोरिकैं॥

रहसि केलि

[६६३].

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३३ अ० १ श्लो०)

छप्पय

जनम जनम हौं रहौं सुन्दरी ऋनी तिहारो !
क्रीतदास बनि गयो प्रेमतैं मोकूँ तारो ॥
करि अर्पन सर्वस्व मोहि सुख अतिशय दीयो ।
तजिके सब सुख सगे संग तुम मेरो कीयो ॥
वचन श्यामके सरस सुनि, दुःख शोक सबके भगे ।
निज करतैं शृंगार हरि, श्रीजीको करिबे लगे ॥

प्रेम ऐकान्तिक विषय है । उसका प्राकट्य एकान्तमें निर्जनमें होता है । सबके सम्मुख प्रेमकी बातें नहीं कही जातीं । प्रेमको शक्तिभर सबके सम्मुख छिपाया जाता है । निर्मुक्त प्रेम तो एकान्तमें ही होता है, सबके सम्मुख शिष्टाचारका पालन होता है, जहाँ एकान्त स्थल हो, एकभी ऐसा व्यक्ति आस पास न हो,

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार भगवान्के अति मधुर वचन श्रवण करके ब्रजाङ्गनाओंका विरहजन्य दुःख दूर हो गया और वे उनके अङ्गोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हुईं ।

जसमे तनिक भी संकोच या झिझक हो। वहाँ प्रेम सागरमें ज्वार भाटे आते हैं। ऐसा तूफान उठता है। कि उठता ही जाता है, उसमें निरन्तर अतृप्ति ही बनी रहती है। दोनोंके अंगोंमें कोई भेद भाव नहीं रहता। छोटे बड़का अन्तर नहीं रहता। एक दूसरेके शरीरको उसी प्रकार सजाते हैं। जिस प्रकार अपनेको सजाते हैं, प्यारेके शरीरको सजाने में अपने से अधिक सुख होता है। ऐसी सरस मीठी मीठी बातें होती हैं, कि जिनमें किसी प्रकारका दुराव छिपाव नहीं रहता। ये रहस्यकी केलिक्रीड़ायें अत्यन्त गोपनीय हैं, व्रजके रसिकाचार्योंने इन सबका दिग्दर्शन कराया है, किन्तु ये सब कहने सुननेकी बातें नहीं है। जिनका उस लीलामें प्रवेश है वे ही उसका अनुभव कर सकते हैं। हम प्राकृत पुरुष तो इनका वर्णन करेंगे, तो अपनी लौकिक वासनाका संमिश्रण करके इसे विकृत तथा अश्लील बनादेंगे। ये सब भावराज्य की बातेहैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्णने जब इतनी अधीनता प्रकट की, दीन होकर गोपियों से प्रेमकी भिक्षा माँगी, अपनेको उनका ऋणिया बताया, तब गोपियों का चित्त खिल गया। इस रस प्रसङ्गको और आगे बढ़ाना उन्होंने उचित नहीं समझा। उन्हें कुछ नीति शास्त्रका उपदेश तो लेना ही नहीं था, स्मृतियोंकी व्यवस्था नहीं पूछनी थी कर्मकाण्डकी जिज्ञासा नहीं करनी थी। प्रकृति, पुरुष, जड़ चेतन, महत्व आदि जगत्के पदार्थों की संख्या करनेके चक्करमें नहीं पड़ना था। पंचीकरण, अन्वय, व्यतिरेक व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सत्ताओंकी सिद्धिके पचड़ों में नहीं पड़ना था। उनके प्रश्नोंका एकमात्र उद्देश्य था "तुम हमें कितना प्यार करते हो?" सो, श्यामसुन्दरने स्पष्ट ही कह दिया—"अब मुझे तो प्यार करनेका अधिकार ही नहीं रहा। तुमने अपने प्रेमसे मुझे मोल ले लिया। अब तो मैं तुम्हारा क्रीतदास बन

गया । तुम मुझे जैसे चाहो तैसे नचाओ ।"

यह सुनकर सखियों ने अब प्रसंग को बदला । एक बोली— "अच्छा, श्यामसुन्दर ! तुम वैंणी गूंथना जानते हो ?"

श्याम बोले—"मैंने और किया ही क्या है, प्यारीजीकी वैंणी ही तो गूंथी है । ललिताजी मेरी इस विषयकी गुरु हैं ।"

एक बोली—"अच्छा, शृंगार करना जानते हो ?"

नन्द नन्दन बोले—"मुझे और काम ही क्या है । सृष्टि उत्पत्तिका काम चतुर्मुख ब्रह्मा करते हैं । पालनका काम चतुर्भुज विष्णु करते हैं और संहारका काम पंचमुख रुद्र करते हैं । मैं द्विभुज हूँ मेरे दो ही काम हैं । श्रीजीको सजाना और उन्हें निरन्तर रिझाना ।"

इस पर एक बोली—"अच्छा, तो तुम श्रीजी का करो शृंगार शृंगार होने पर रास हो ।"

श्यामको तो मानों निधि मिल गयी । प्रियाजीको तो शृंगार करानेका अभ्यास ही था, कोई नयी बात तो थी नहीं, कोई सहज नवीन भी नहीं थी । जिससे संकोच किया जाय । श्यामसुन्दर विधिवत लाड़िलीजीका स्वयं शृंगार किया । अपने हाथों उनके कोमल कोमल पैरके नखोंको रँगा । उनमें महावर लगाया पादतलोंमें मेंहदी लगायी । पैरके जितने पाइजेब आदि आभूषण थे उन्हें यथा स्थान किया । फिर अपने हाथसे उनकी वेंणी बनाई, उसमें बीच बीचमें सुगंधित पुष्प लगाये, मनोहर मनोहर मालाओंका जाल बनाकर उन्हें चारों ओरसे वेष्टित किया । सुन्दर सुन्दर हार गजरे उनके कंठमें भुजाओंमें, हाथोंमें, कमरमें पहिनाये ललाट पर अर्ध चन्द्राकार केशरका अति सूक्ष्म तिलक लगाया उसके बीचमें केशर कस्तूरी आदि की लाल बिन्दी लगायी मुखपर, वक्षःस्थल पर विविध भाँतिकी पत्रावलियोंकी रचनायें कीं । माँगके भीतर पतली सिंदूरकी रेखा लगायी । नेत्रोंमें सलाई

से अंजन लगाया। स्वभावसे ही बिम्बफलके सदृश अरुण अधरोंको और भी रँगा। मुखमें पान अर्पण किया। इस प्रकार स्वयं ही उनका विधिवत् सर्वाङ्ग शृङ्गार किया।

अब प्यारी और प्रियतम परस्परमें एक दूसरे के कंठमें गलबैयाँ डाले थे, सहसा रंगमें भंग हो गया। एक परम तेजस्वी ब्राह्मण दूर से आता हुआ दिखाई दिया। ब्राह्मणको देखकर श्रीराधाजी सम्हल कर बैठ गयीं, श्रीकृष्ण भी गम्भीर हो गये। उस समय वे अपनी शक्तिके सहित दिव्यैश्वर्य की शोभासे शोभित हो रहे थे।

ब्राह्मणके मुख पर ब्रह्मतेज छिटक रहा था, वह आठ स्थानसे टेढ़ा था। कृष्ण वर्णका था, जटायें बिखरी हुई थीं, शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था दिगम्बर वेषमें वह मूर्तिमान तपके सदृश प्रतीत होता था। भगवान्के समीप आकर भूमिमें लोटकर वह प्रिया प्रियतम के पादपद्मोंमें पुनः पुनः प्रणाम करने लगा। वह बार बार उठता बार बार पुनः लोटकर प्रणाम करता। फिर उच्च स्वरसे स्तोत्र पाठ करता। अन्तमें उसने एक स्तोत्रका पाठ किया, भगवान्के चरणोंमें लीन हो गया, उसका तेज भगवान्के चरणोंमें मिल गया। भगवानके चरणों में ही उसने अपने नश्वर शरीरका परित्यागकर दिया।

भगवान्ने जब देखा, मुनिका प्राणान्त हो गया है तो वे उनके मृतक शरीरको उठाकर दोनों बाहुओंसे आलिंगन करने लगे। ज्योंही उन्होंने अपने हाथसे उनके शरीरको मला, त्योंही उसमें से भस्म ही भस्म निकली। भगवानने रोते रोते चंदनके काष्ट से चिता बनाई और उस पर मुनिके देहको रखकर अग्नि दे दी। जब मुनिका शरीर दग्ध होने लगा तब भगवान् मु[illegible] याद कर करके उच्च स्वरसे रुदन करने लगे। उसी [illegible] गोलोकसे एक दिव्य विमान आया, उसमें बैठकर मु[illegible]

शरीर से गोलोकमें चले गये।

ऐसी आश्चर्ययुक्त घटनाको देखकर श्रीराधिकाजीने श्याम सुन्दरसे पूछा—"प्राणनाथ! ये मुनि कौन थे, इनका दिव्य तेज आपके चरणों में क्यों लीन हो गया? ये आपके दर्शन करते प्राणहीन क्यों हो गये? इनके मृतक शरीरसे भस्म क्यों निकली? ये आठ स्थानसे टेढ़े क्यों थे? इतने दिव्य तेज युक्त महामुनि ऐसे विरूप क्यों बने हुए थे। कृपा करके इन प्रश्नोंका उत्तर देकर मेरे कुतूहलको दूर कीजिये।"

यह सुनकर भगवान् बोले—"प्रिये! ये अष्टावक्र नामके महामुनि थे। स्वर्गकी सर्वोत्तम रंभा अप्सराके शापसे इनकी ऐसी दशा हो गयी और मेरी भक्तिके प्रभावसे इन्हें मेरी सन्निधि और गोलोककी प्राप्ति हुई।"

इसपर वृषभानुनन्दिनीने पूछा—"प्राणवल्लभ! महामुनि अष्टावक्र किसके पुत्र थे? रम्भाने उन्हें शाप क्यों दिया? इन्होंने ऐसी कौनसी उपासना की, जिसके कारण आपके दर्शन करते करते इन्होंने प्राणोंका परित्याग किया और तुरन्त दिव्य देहसे गोलोक प्राप्त किया? ऐसे अनन्योपासक आपके भक्तके चरित्र सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा है।"

भगवान् बोले—"प्रिये! यह विषय बड़ा रहस्यमय है, मैं सबके सम्मुख तो इस प्रसङ्गको कहता नहीं। किन्तु तुम तो मेरी प्राणेश्वरी ही हो, तुमको इस प्रसङ्गको सुनाता हूँ।

पूर्वकालमें जब श्रीमन्नारायणकी नाभि कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, तो सृष्टिकी इच्छासे उन्होंने सनक, सनन्दन, सनतकुमार और सनातन इन चार पुत्रोंको मनसे उत्पन्न किया। इनसे सृष्टि बढ़ानेको कहा, किन्तु ये तो मोक्षधर्मावलम्बी थे, इन्होंने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। तब ब्रह्माजीने अङ्गोंसे अत्रि, पुलस्त, पुलह, क्रतु, मरीचि, भृगु, अङ्गिरा

वशिष्ठ, वोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शङ्कु, शङ्ख, पञ्चशिख, प्रचेता तथा अन्य भी बहुतसे तपोधन ऋषि उत्पन्न किये। इन सबने सृष्टिका विस्तार किया। इनके पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्रोंकी संतानों से यह सम्पूर्ण संसार भर गया।

इनमें एक ब्रह्माजीके पुत्र प्रचेता थे। उन प्रचेता के एक पुत्र तो वाल्मीकजी थे और दूसरे असित थे। महामुनि असितने ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करके विवाह किया और अपनी पत्नीके सहित पुत्रकी कामनासे देवताओंके सहस्रों वर्षों तक घोर तप किया, किन्तु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। तब तो उन्हें जीवन भारसा प्रतीत होने लगा और वे प्राणोंको छोड़ने तकके लिये उद्यत हो गये। उसी समय उन्हें अशरीरी दिव्य आकाशवाणी सुनायी दी—"हे तपोधन! तुम शरीर क्यों छोड़ते हो? शंकरजीके समीप जाओ, तुम शङ्करजीसे मंत्रग्रहण करके उसे सिद्ध करो। उस मंत्रकी अधिष्ठातृ देवीका जप करने से तुम्हें तत्काल साक्षात्कार होगा। उससे तुम पुत्र का वर माँग लेना।"

आकाशवाणीकी बात सुनकर महामुनि असित शंकरजीके समीप गये और उनसे मन्त्र दीक्षा लेकर जप करने लगे। उसके जपके प्रभावसे कुछ ही दिनोंमें उनके कंदर्पके समान शिवजीके अंशसे देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसे सुन्दर पुत्रको पाकर मुनि दम्पत्तिके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। कालान्तरमें देवल सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हुए और उन्होंने सुयज्ञनामक राजाकी रत्नमालावती पुत्री के साथ विवाह किया।

राजपुत्री रत्नमालावती अत्यन्त ही सुन्दरी थी, वह परम-साध्वी पतिपरायणा तथा पतिको प्राणों से भी अधिक माननेवाली थी। महामुनि देवल उसके साथ सहस्रों वर्षों तक संसारी सुखों का उपभोग करते रहे। अन्तमें उन्हें संसारसे विराग हुआ। अब उन्हें संसारी सुख विषके सदृश प्रतीत होने लगे। अब वे संसारी

भोगोंसे उदासीन हो गये। किन्तु वे अपनेभावों को अपनी पत्नी के सम्मुख प्रकट नहीं करते थे। उनके व्यवहारसे राजकुमारी समझ गयी कि मुनिका चित्त मेरी ओरसे उदासीन हो गया है। वे मुझे छोड़कर कहीं जाना चाहते हैं, इसलिये वह कभी उन्हें कहीं अकेले नहीं जाने देती। छायाके समान उनके सदा साथ ही बनी रहती। मुनिका चित्त अब एकान्तमें तप करनेको उत्सुक हो रहा था।

एक दिन मुनि रात्रि में सो रहे थे। समीप ही शंकित चित्तसे उनकी धर्मपत्नी भी सो रही थी। यद्यपि राजपुत्री सदा सावधान रहती, किन्तु उस दिन विधिका ऐसा विधान हुआ, कि उसे निद्रा आगयी। मुनिने इसे ही उत्तम अवसर समझा। वे शनैः शनैः शैयासे उठे और रात्रि में ही घोर वनमें चले गये। कुछ देरके पश्चात् मुनिपत्नीकी आँखें खुलीं। अपने प्राणनाथको समीप न पाकर वह उच्चस्वरसे रुदन करने लगी। उसके पुत्रोंने परिवार वालोंने उसे बहुत समझाया, किन्तु प्यारेका वियोग सहना साधारण बात नहीं है। विरहाग्निके कारण वह तप्त बालू में पड़े बीजकी भाँति जलने और उछलने लगी। अन्तमें वह पति वियोगको सहने में समर्थ न हो सकी, उसने इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। उसके पुत्रोंने उसके ओर्ध्वदैहिक संस्कार किये।

इधर महामुनि देवल बदरीवनके समीप गन्धमादन पर्वतकी एक गिरि गुहामें बैठकर घोर तप करने लगे। मुनि एक तो वैसे ही कामदेवके सदृश सुन्दर थे, फिर तपके प्रभावसे उनका सौंदर्य और भी निखर गया था। तप तेजसे उनका मुखचन्द्र दम दम दमक रहा था। उसी समय स्वर्ग की सर्व श्रेष्ठ अप्सरा रम्भा वहाँ होकर निकली। उन तेज पुन्ज अत्यन्त सुन्दर मुनिको देखकर उसका चित्तचंचल हो उठा।

भगवान् श्रीराधिकाजीसे कह रहे हैं—"प्रिये! जो सती नहीं

। ऐसी कामनियोंका चित्त सुन्दर पुरुष को एकान्तमें देखकर चल हो जाता है, फिर वे अपने मनको रोकने में सर्वथा असमर्थ हो जाती हैं। उस एकान्त शान्त निर्जन वनमें कंदर्पके सदृश न लावण्ययुक्त मुनिको देखकर रम्भा अपने आपेमें न रह की। वह सोलह शृङ्गार करके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर म सम्बन्धी अनेक संकेतोंको प्रकट करती हुई मुनिके समीप स्थित हुई। उसी समय मुनिका ध्यान भंग हुआ।

रम्भाने मंद मंद मुसकराते हुए व्रीडाका भाव प्रदर्शित रते हुए कहा—"मुनिवर! भगवान् ने तुम्हे इतना अनुपम रूप या है, तुम्हारे अंग इतने सुन्दर और सुकोमल हैं, तिसपर प इतना कठोर तप कर रहे है, यह आपको शोभा नहीं देता। म व्यर्थ शरीरको क्यों सुखा रहे हो?"

मुनिने कहा—"शोभने! हम मुनियोंका तप ही धन हैं। ह्मणका शरीर क्षुद्र कामवासनाके लिये नहीं होता। वह इस कमें घोर तप करके कष्ट सहता है, परलोकमें अनन्त सुखको प्त करता है।"

रम्भाने कहा—"मुनिवर! परलोक किसने देखा है। गोदके छोड़कर पेटके की आशा करना मूर्खता है। समुपस्थित प्रत्यक्ष खको छोड़कर काल्पनिक सुखकी आशासे शरीर सुखाना मूर्खता है तपोधन! पृथ्वी पर राजे महाराजे बड़े बड़े यज्ञ नुष्ठान इसीलिये करते हैं, कि स्वर्गमें हमें अप्सरायें प्राप्त हों। स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा हूँ, बड़े बड़े तपस्वी तेजस्वी यहाँ कि देवेन्द्र भी मेरे कृपा कटाक्षके लिये तरसते हैं। ऐसी मैं यं तुमसे प्रणयकी भिक्षा माँग रही हूँ, मैं तुम्हारी तपस्याकी मूर्तिमती सिद्धि हूँ। आप मुझे स्वीकार करें।"

मुनिने कहा—"भामिनि! तुम कैसी बातें कर रही हो। समस्त विषयोंको छोड़कर एकान्तमें यहाँ तप करने आया हूँ।"

तपस्यामें स्त्रीका सङ्ग सबसे बड़ा विघ्न है। अतः देवि! तुम
ऊपर कृपा करो। मुझे तप करने दो। तुम अपना रास्ता पकड़ो

रम्भाने व्यंगके स्वरमें कहा—तुम बड़े रूखे हो जी! पुरुष होकर तुम ऐसी नीरस बातें कर रहे हो। मैं तुम्हारे का पीड़िता हूँ, दुखी हूँ, दुखियों पर दया करना परमधर्म देखो, जो काम पीड़ित नारीका तिरस्कार करता है, उसे बड़ा लगता है। तुमतो मुनि हो। ब्रह्माजी ने काम पीड़िता मोहिनी तिरस्कार किया था, इसीलिये संसारमें उनकी कहीं पूजा होती। एक ओर तो लाखों वर्ष तप करना और एक ओर दुखि के दुखको दूर करना। इसमें दुखियोंके दुखको दूर करने धर्मसे तपस्याका पुण्य अत्यन्त तुच्छ है। अतः मेरे ऊ कृपा करो।"

मुनिने कहा—"सुन्दरि! तुम ये सब संसारी लोगोंकी कह रही हो। गृहस्थीको कामार्ता स्वपत्नीका परित्याग बताया है। परस्त्रीतो सदाही वर्जनीय है।

रम्भाने कहा—"ब्रह्मन्! मैं परस्त्री तो नहीं हूँ। मेरा एक पति नहीं। हम स्वर्गललनाओंका तो यह धर्म है, सदा है। जो हमें रतिसुख प्रदान करे वही हमारा पति है। स्व कितने पुण्यात्मा राजा आते हैं वे पुण्योंसे हमें प्राप्त करते हैं। पु क्षीण होने पर उनका पतन होता है, फिर हम दूसरे पुण्यात्मा को भजती हैं।"

मुनिने गम्भीरता पूर्वक कहा—"शोभने! तुम्हारा क सत्य है। तुम किसी एककी पत्नी नहीं। फिरभी मुनियोंके लिं स्त्रीमात्रका परिग्रह निषेध है। मोहिनीके शापसे ब्रह्म जगत्‌मेंअपूज्य हो गये होंगे, इसे मैं मानता हूँ, किन्तु वे भी स्त्री वालेही हैं। मैंनेतो स्त्री बच्चोंको त्याग दिया है। मैं तो त्य हूँ। तुम्हें काम पीड़ा दे रहा है, तो तुम किसी अन्य सु

रूपको भजो। तुम्हें चाहने वाले तो संसारमें बहुत हैं। बड़े बड़े लोग तुम्हें प्राप्त करनेको जप, तप, यज्ञ, अनुष्ठान आदि साधन करते हैं। तुम उन्हींके पास जाओ। देखो, मेरेबाल पक गये हैं। अपनी पतिव्रता स्त्रीका परित्याग करके यहाँ घोर वनमें—पर्वतकी कन्दरामें आकर बैठा हूँ, तुम मुझसे ऐसा अनुचित प्रस्ताव क्यों करती हो?"

रम्भाने अधीरताके साथ कहा—"ब्रह्मन्! इतना रूखापन अच्छा नहीं। तपस्या करके तुम्हें जितना पुण्य होगा उससे लाख गुना इस अबलाके ऊपर कृपा करनेसे होगा। देखिये, लोग मुझे पानेको कितना जप, तप, करते हैं, फिर भी वे मुझे देख भी नहीं पाते। वही मैं आपसे प्रार्थनाकर रही हूँ आप मेरा तिरस्कारकर रहे हैं। मुझे ठुकरा रहे हैं। रहा अन्य पुरुषको भजनेकी बात। सो, मुनिवर! जिसका मन जिसमें फँस जाता है, वह बूढ़ा हो, लंगड़ा हो, लूला हो कुरूप हो, कालाहो उसे वही अच्छा लगता है। आपके चाहें सब बाल पक गये हों, आप चाहें बूढ़े हों मैं तो तुम्हें चाहती हूँ।"

मुनिने गंभीर होकर कहा—"देवी! तुम मुझसे अधिक आग्रह न करो, तुम मेरी धर्मकी माताहो मैं तुम्हारी ओर आँख उठाकर भी न देखूंगा। मैं क्रोध भी न करूँगा। अब तुमसे बात भी न करूँगा। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो तहाँ चली जाओ। जहाँ बैठना चाहो यहीं बैठो। मैं तो अपने ध्यानमें लगता हूँ।"

'माता' शब्द सुनकर रम्भाके ओठ फरकने लगे। हाय, ये तपस्वी कैसे रूखे स्वभावके होते हैं। इनका हृदय वज्रका बना होता है, जो इतनी अनुनय विनयसे भी नहीं पिघलता। कितनी आशा लेकर मैं इस रूपवान् तपस्वीके समीप आयी थी। यह हृदय हीन मुझे माता कहता है। उसने क्रोधमें भरकर कहा—"तपस्वी! अब ऐसा शब्द फिर कभी भूलसे भी मुखसे मत निकालना।

कामसंतप्ता कामनीसे माता कहना उसे यह सबसे बड़ी गाली है अबके फिर तुमने ऐसा शब्द मुखसे निकाला तो मैं तुम्हें दारु शाप दे दूँगी। अब तुम्हारे सामने दो ही बातें हैं या तो तुम मु स्वीकार करो या मेरे दारुण शापको।"

यह सुनकर भी मुनिको क्रोध नहीं आया। उनके मन इतनी सुन्दरी स्वर्गीय रमणीके इतने प्रणय तथा विनय भरे वचन से कामकी गन्ध भी नहीं आयी। वे गंभीर होकर बोले—"देखो मैं तुम्हें एकबार माता कह चुका हूँ, तुम मुझसे बारबार ऐसी बा मत कहो। मैं ऐसी बात फिर सुननेको उद्यत नहीं।"

क्रोध में भरकर काम व्यथासे संतप्त होकर बारबार अँगड़ा लेती हुई, सम्पूर्ण शरीरको कँपाती हुई वह अप्सरा अत्यन्त मर्म स्पर्शीवाणी में दुःखित होकर बोली—"मुनिवर! कामाग्नि ज्वालासे मेरे प्राण जल रहे हैं, मन जल रहा है, आत्मासंतप्त रही है, चित्त क्षुभित हो रहा है, यदि तुम मेरे ऊपर प्रणय-अ छिड़क दो, तो मैं जीवित हो जाऊँगी। यदि तुम हठ करोगे, तो अपने दुःखित अंतःकरणसे तुम्हें घोर शाप दूँगी। अत्यन्त दुः अन्तःकरणसे नेत्रोंमें अश्रु भरकर जो दुखिया किसीको शाप दे है, उसे कमलयोनि ब्रह्माजी भी अन्यथा नहीं कर सकते। ब्रह्मन अब भी सोच लो, या तो मुझे प्रेमपूर्वक अपनाओ! या शा ग्रहण करने को उद्यत हो जाओ।"

मुनिने शांत भावसे कहा—"हे सुरसुंदरी! मैंने जो बात ए बार कह दी है, उससे मैं डिग नहीं सकता। मैं कभी तुम्हा कामभावसे स्पर्श न करूँगा। तुम चाहे रहो या जाओ। मैं अ तुमसे कुछ भी न कहूँगा।"

यह कहकर मुनिने आचमन किया और वे मौन हो गये नेत्र बन्द करके वे भगवान् का ध्यान करने लगे।

रम्भाको अत्यन्त ही मानसिक दुःख हुआ। कामकी पूर्ति

होने से उसकी नस नसमें क्रोध व्याप्त हो गया। क्रोधसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। वह मुनिको शाप देती हुई बोली—"हे वक्र हृदयके तपस्वी! तुम बड़े क्रूर हो, कुटिल हो, टेढ़े हो। तुमने अपने रूप यौवन और तप के अभिमानमें भर कर मेरा तिरस्कार किया है। अतः तुम्हारा रूप और यौवन नष्ट हो जायगा। तुम कौआके समान, अञ्जन पर्वतके समान, कोयलाके समान कृष्ण वर्णके विरूप वन जाओगे। आठ स्थानसे तुम टेढ़े हो जाओगे। तुम्हारा तप नष्ट हो जायगा। ऐसा शाप देकर रम्भा अपने इच्छित लोकको चली गयी।"

स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का शाप अन्यथा तो हो नहीं सकता। मुनिका शरीर काला हो गया वे आठ स्थान से टेढ़े हो गये। उनका तप नष्ट हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवान् उनके ध्यानमें नहीं आते।

अपने तप, तेज, रूप यौवन तथा साधनोंको नष्ट हुआ देख कर मुनिको बड़ा दुःख हुआ। उन्हें आठ स्थान से टेढ़े होनेका तथा कुरूप होनेका उतना दुःख नहीं था, जितना ध्यानमें भगवान् के न आनेका था। जिस जीवन में भगवान् का ध्यान न हो, वह जीवन व्यर्थ है। उससे तो मरना ही अच्छा। यही सब सोचकर मुनि ने सूखी-सूखी लकड़ियों को इकट्ठा किया, उनकी चिता बनाई और उसमें अग्नि देकर ज्यों ही कूदनेको उद्यत हुए त्यों ही मैं प्रकट हुआ और मैंने इन्हें वर दिया—"हे मुनि! जो काम पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, वे मेरी आत्मा ही हो जाते हैं। उन्हें मेरे लोककी प्राप्ति होती है। उनकी ज्योति मेरे साथ तदाकार हो जाती है। तुम शोक मोहको छोड़ दो, अभी कुछ दिन और तप करो। अन्तमें तुम्हें मेरे लोक की प्राप्ति होगी।"

भगवान् श्रीजीसे कह रहे हैं—"प्रिये! इस प्रकार मेरे आश्वासन देने पर मुनिने प्राण त्याग करने का विचार छोड़ दिया।

वे गन्धमादन पर्वतको छोड़कर मलयाचल पर आकर घोर तप करने लगे। बिना कुछ खाये पीये साठ हजार वर्षों तक तप करते रहे। उन्होंने अन्न जल सब छोड़ दिया था। इससे इनका अन्तःकरण जलकर भस्म हो गया था। ये मेरे परम भक्त थे, ये कामके वशमें नहीं हुए थे। इसलिये इन्हें मेरे लोककी प्राप्ति हुई। यह मैंने संक्षेपमें महामुनि अष्टावक्रका चरित्र सुनाया।"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! रम्भाने भी कहा और भगवान्ने भी समर्थन किया कि मोहिनीके शापसे ब्रह्माजी जगत्में अपूज्य बन गये। कृपा करके बताइये, यह मोहिनी कौन थी? क्यों इसने ब्रह्माजी को शाप दिया? कृपा करके हमें इस कथा को सुनाइये। तब आगे का प्रसङ्ग कहिए।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! यह कथा तो बहुत बड़ी है। इस कथाके प्रसङ्गमें मुझे और भी बहुतसी कथायें कहनी पड़ेंगी। इससे रसभङ्ग हो जायगा। कहाँ तो कितनी सुखद, सरस, कानोंको अत्यन्त सुख देने वाली रास विलासकी कथायें, कहाँ ये शापा शापी की नीरस, काम क्रोध युक्त कथायें। अब मैं कहने लग जाऊँगा, तो उसी प्रवाहमें बह जाऊँगा। अतः मुझे रासलीलाके प्रसङ्गको समाप्त कर लेने दो, तब आप लोग जो पूछेंगे, उसका मैं उत्तर दूँगा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह तो आपकी इच्छाके ऊपर ही निर्भर है वैसे रसभङ्ग की तो कोई बात नहीं। इन प्रसङ्गों को सुनकर सभीकी उत्सुकता बढ़ती है। इन कथाओंको शीघ्र-शीघ्र पढ़कर समाप्त करना चाहते हैं, कारण कि उन्हें आगे क्या हुआ इसे जाननेकी उत्कट इच्छा बनी ही रहती है। अतः रसभङ्गका तो कोई प्रश्न ही नहीं, फिर भगवत् चरित्रोंमें तो कभी रसभङ्ग होता ही नहीं। यह आमकी भाँति नहीं, कि रसरस पीओ छिलका गुठली फेंक दो। भगवत् कथा तो मिश्रीके समान है। ऊपर

नीचे, दायें बायें चाहें जिधरसे तोड़ों उधरसे ही मीठा लगेगा। कथा बढ़ जाय; तो भी कोई हानि नहीं। कथायें सुनाने ही तो आप बैठे हैं।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज। मुझे तो आपकी आज्ञा का पालन करना है। तो अब मैं उसी प्रसङ्ग को सुनाऊँगा जिसमें मोहिनीने भगवान् ब्रह्माको जगत्मे अपूज्य होनेका शाप दिया था। उसे आप सब दत्त चित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

परसि परस्पर प्रेम पुलक अँग अंगनि होवें।
लखि प्यारी हरि रूप देहकी सुधि बुधि खोवें॥
निज कर केश सम्हारि प्रिया की बाँधी बैनी।
भाल तिलक तिलचुवक अधर रँगरँगी सुनैनी॥
अंजन नयननिमहँ दयो, फूलनि के गजरा नये।
पहिरायें उर कटि करनि, बीरा श्रीमुखमहँ दये॥

रासलीला प्रस्ताव

(६६४)

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ३३ अ० २ श्लो०)

छप्पय

कर पद नख रँग रँगे महावर चरन सजाये।
महँदी दिव्य लगाइ अरुन पद अरुन बनाये॥
भूषन वसन सम्हारि इतर अँगअंग लगायो।
मलि हिय केशर कीच, विहँसि आदर्श दिखायो॥
नवतरंग छिन छिन उठें, मन दोउनिके नहिं भरें।
रूपासवको पान मिलि, दरपनमहँ दोऊ करें॥

संसारमें अभिमानही सबसे अधिक पतनका कारण है, जिसे जिसवस्तुके कारण अभिमान होगा उसका उसीके कारण अवश्य पतन होगा, यह निश्चित सिद्धान्त है। जो अपने धनके गर्वमें दूसरोंका अपमान करेगा, वह निर्धन होगा। जो अपनी

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तदन्तर भगवान् ने वहाँपर उन स्त्रीरत्नोंके साथ रासलीलाका आरम्भ किया। वे गोपिकायें अच्युतके अनुगत थीं, परम प्रसन्न थीं और भगवान्‌की बाहुओंमें बाहु डाले हुए थीं।

प्रतिष्ठाके पीछे दूसरोंका तिरष्कार करेगा। वह संसारमें कभी न कभी प्रतिष्ठासे हीन होगा। जो सदाचारके अभिमानमें भर-कर दूसरोंकी निंदा करेगा वह अवश्य एक दिन व्यभिचारी होगा, जो त्यागके अभिमानमें सबको तुच्छ समझेगा वह अवश्य एक दिन संग्रही होगा। यह निश्चित सिद्धान्त है, इसमें हेर फेर नहीं हो सकता। संसारमें जिसका भी पतन हुआ है अभिमानसे हुआ है, दर्प से हुआ है। कंदर्पको बहुत दर्प हो गया था। उसीके दर्प का दलन करनेके निमित्त भगवान्ने रासलीलाका अभिनय किया। एक कंदर्पके दर्पका भगवान् ने दलन किया हो, सो बात नहीं संसार में जिसेभी दर्प हो जाता है, जिसका भी अभिमान बढ़ जाता है। उसीके दर्पको दयालु दामोदर दलन कर देते हैं। दर्प भंग करना ही उनका एक मात्र व्यापार है, अभिमान ही उनका आहार है। उसे ही वे खाते हैं, अपने आश्रितोंके दर्पको भङ्ग करके ही वे सुखी होते हैं। उन्होंने ब्रह्माजीके दर्पको भंग किया। शिवजी के दर्पको भङ्ग किया। इन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा तथा धन्वन्तरि आदिके अभिमानको उन्होंने खंडित किया। उनके भक्तके हृदयमें जो भी अभिमान हो जाता है, उके वे चकनाचूर करदेते हैं। अपने भक्तोंके हृदयमें वे अभिमानको ठहरनेही नहीं देते, उनकी जड़ जमने नहीं देते। जहाँ भक्तोंके हृदयमें किसी प्रकारका अभि-मान अंकुरित हुआ, कि उसे जड़मूलसे उखाड़कर फेंक देते हैं। इसलिये भगवद्भक्तका अपमान हो जाय, उसका अभिमान चूर्ण हो जाय, तो उसे भगवान की कृपा ही समझनी चाहिए। अपनी इच्छासे न कोई शाप दे सकता है न वरदान। सब भगवान्की ही प्रेरणासे होता है और जो भी होता है जीव के कल्याणके ही निमित्त होता है। भक्तोंसे जो प्रमाद भी बन जाता है, उससे भी उनका कल्याण होता है, शिक्षा मिलती है। यदि भगवान् पर विश्वास रखकर, निरभिमान होकर जीव उनके ही आश्रय में रहे-

तो उसका कभी अकल्याण होगा ही नहीं। उसका सदा कल्याणही कल्याण है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महामुनि देवलको अपने रूप त्यागका अभिमान होगया होगा। इसलिये भगवान्ने रम्भाको भेजकर उनके रूपके अभिमानको आठ स्थानोंसे टेढ़ा करके कुरूप बनाकर भंगकर दिया। जब वे अभिमान शून्य होकर भगवान्की शरण में गये, तब उन्हें भगवत् लोककी प्राप्ति हुई। मुनियो! धनका रूप का तथा विद्या आदिकाही अभिमान नहीं होता, त्याग और सदाचार का भी बड़ा अभिमान होता है। हमने अपनी आँखों ऐसे लोगोंको देखा है जो अपने ब्रह्मचर्य और सदाचारी होनेके अभिमानमें सदा दूसरों की निन्दा किया करते थे। स्त्रियोंसे घृणा करते थे। पास भी नहीं आने देते थे, दूसरोंको देखकर हँसते थे, अंतमें वे ऐसे स्त्रीलम्पट हुए, कि स्त्रियोंके हाथोंके क्रीड़ामृग बनगये, उनके क्रीतदास हो गये। मनुष्य और अभिमानोंको चाहें सरलतासे छोड़ भी सके, किन्तु यह त्यागका इतना सुदृढ़ अभिमान है, कि इसका छोंड़ना अत्यन्त कठिन है। जबतक त्याग, ग्रहण, सत्य, असत्य तथा धर्म अधर्म दोनों ही प्रकारके अभिमानोंका त्याग न होगा, तबतक भगवान्की प्राप्ति दुर्लभ है। आपने मुझसे ब्रह्माजीको मोहनीका शाप कैसे हुआ, यह प्रसङ्ग पूछा था। यह कथातो बहुत बड़ी है, किन्तु मैं इसे अत्यन्त ही संक्षेपमें आप सबके सम्मुख कहूँगा। प्रतीत होता है ब्रह्माजीको अपने ऐश्वर्यका—ब्रह्माण्ड नायक होनेका—अभिमान हो गया होगा इसीलिये भगवानने यह लीला रची। यह कथा इस प्रकार है।

यह कथा रैवत मन्वन्तरकी है, उस समय सुचन्द्रनामके एक राजा बदरीवनमें घोर तप करते थे। वे दिव्य सहस्रों वर्षों तक भगवान् में मन लगा कर तपस्या करते रहे। उसके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उसे वर देने गये। उसने अन्य कुछ वर

न माँग कर भगवान्‌की अहैतुकी भक्तिका ही वर माँगा।

राजाको ब्रह्माजीने ईप्सित वर दिया। राजा उसी समय भगवान्‌का पार्षद होकर—दिव्य चतुर्भुज रूप रखकर—भगवानके लोक को चला गया। ब्रह्माजी हंसपर चढ़कर अपने ब्रह्मलोकको जा रहे थे। संयोगकी बात कि उन्हें मार्गमें मोहिनी नामकी स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी अप्सरा मिल गयी। ब्रह्माजीने तो उसकी ओर देखा भी नहीं, किन्तु विधिका विधान वह मोहिनी ब्रह्माके तेज रूप तथा प्रभावको देखकर उनके ऊपर आसक्त हो गयी। कामके वेगके कारण वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गयी। उसी दशा में वहाँ उसकी सखी रम्भा अप्सरा आयी। उसने चेत कराया और मूर्छाका कारण पूछा। मोहिनीने सब बात बता दी कि मेरा मन ब्रह्माजीमें अटक गया है, यदि उनका आलिंगन प्राप्त न होगा, तो मैं मृत्युका आलिंगन करूँगी तीसरेका आलिंगन मैं नहीं कर सकती।" इस पर रम्भाने कहा—"तुम कामदेवकी उपासना करो। वह स्त्रियों पर शीघ्र दया करते हैं। उनकी सहायतासे तुम अपने अभीष्टको प्राप्त कर सकोगी।"

रम्भाकी सम्मति मानकर मोहिनीने कंदर्पकी उपासना की। कंदर्पने प्रकट होकर मोहिनीको दर्शन दिये। वर माँगनेको कहा। मोहिनीने अपना अभीष्ट वर माँगा, कामदेव उसे साथ लेकर ब्रह्माजीके समीप ब्रह्मलोकमें गये। संयोग की बात ब्रह्माजी एक अत्यन्त सुन्दर उद्यानमें अकेले बैठे थे। मोहिनीने वहाँ जाकर उनके सम्मुख सुन्दर गायन किया, नृत्य किया और हावभाव कटाक्षों द्वारा लोकपितामहको रिझानेका प्रयत्न किया। कामदेवने भी इसमें अपनी पूरी शक्ति लगायी। ब्रह्माजीका मन चंचल हुआ। उनके नेत्रों में अनुरागके डोरे स्पष्ट दिखायी देने लगे। ... तो आकृति देखकर ही भावको ताड़ जाती हैं। मोहिनी का ठिकाना नहीं रहा। वह और भी अधिक कामकी

दिखाने लगी। ब्रह्माजी अब सम्हले। उन्होंने सोचा—"यह तो बड़ी गड़बड़ हुई। आँखें चार होने से ही अनुराग अधिक बढ़ता है, अतः उन्होंने मोहिनीकी ओरसे अपनी दृष्टि हटाली सिर नीचा कर लिया और बहुमूल्य हार पारितोषिक देकर उसे विदा करना चाहा, किन्तु मोहिनी हारके लोभसे तो आयी ही नहीं थी। ब्रह्माजीको लक्ष्य बनाकर मन्मथ उसके मनको मथन कर रहा था। वह ब्रह्माजी और मृत्यु दो में से एक का आलिंगन करने को कृतसंकल्प थी।

ब्रह्माजाकी ऐसी उदासीनता देखकर वह बोली—"ब्रह्मन्, मैं किसी और वस्तुके लोभसे आपकी सेवामें नहीं आयी हूँ। मैं तो आपकी कृपा चाहती हूँ।"

ब्रह्माजीने उदासीन भावसे कहा—"मेरी तो सभी प्राणियों पर समान कृपा है। मैं तुम्हारे नृत्य गीतसे प्रसन्न हूँ अब तुम चली जाओ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिसका मन जहाँ रम जाता है, फिर उसे स्वेच्छासे कोई छोड़ नहीं सकता। मोहिनीको जब अपना प्रयास विफल होता हुआ प्रतीत हुआ, तो उसने कामदेव की स्तुति की। कामने अपना सुदृढ़ शर संधान करके ब्रह्माजी पर प्रहार किया। वेदगर्भ ब्रह्मा कामके प्रहारसे प्रथम तो मर्म हत हो गये, पीछेज्ञानदृष्टिसे सब रहस्य समझ गये। उन्होंने कामको शाप दिया 'तू मेरा ही पुत्र होकर मुझपर प्रहार करता है। तेरा शरीर नष्ट हो जायगा।" काम यह सुनकर भाग गया।

अब तो मोहिनीकी विचित्र दशा थी, वह कामके आवेगमें अत्यन्त दुःखी हो रही थी, उसका शरीर काँप रहा था। उसने अनेक प्रकार दीनता दिखाकर, धर्म बताकर ब्रह्माजीको प्रार्थना की, किन्तु वेदगर्भ भगवान् ब्रह्मा नहीं पसीजे। उन्होंने कहा—"देख, मैं चराचरका पिता हूँ, तू मेरी पुत्रीके समान है। तू मुझसे

ऐसी बात मत कर। मैं बूढ़ा हूँ, निष्काम हूँ, तपस्वी हूँ, और भगवद् भक्त वैष्णव हूँ। मैं जानता हूँ, कामपीड़ा बड़ी कठिन होती है, किन्तु तुम किसी युवक देवकुमारके समीप जाओ। इन्द्र, वरुण, कुवेर हैं, उनके पुत्र हैं अश्विनी कुमार हैं, एकसे एक सुन्दर स्वरूपवान् युवा हैं। उनको भजो, मैं तो तुम्हारे पिता के समान हूँ।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! ब्रह्मा बाबाने स्वयं ही तो सृष्टि वृद्धि के लिये इस कामको अपने शरीरसे उत्पन्न किया और स्वयं ही इसके चक्करमें फँस गये। जैसे रेशमका कीड़ा स्वयं ही तो जालेको मुखसे निकालता है, और स्वयं ही उसके चक्करमें फँस जाता है। कामसे बढ़कर संसारमें बली कोई नहीं है। सिंहके मुखमें से लोग दाँत निकाल सकते हैं, सुमेरुको उखाड़ सकते हैं, समुद्रोंको शोप सकते हैं। अग्निका पानकर सकते। वायुको वसमें बाँधकर रोक सकते हैं, किन्तु कंदर्पके दर्पको दलन करने वाले संसारमें दुर्लभ हैं। कामके वेगको रोकना बड़ा असह्य है। मोहिनी तो वेश्या ही थी, वह अपने वेगको न रोकसकी, उसने ब्रह्माजीके वस्त्रको पकड़लिया। ब्रह्माजीका भी चित्त चंचल हो उठा। अब वे क्या करने, ऐसे समय एकमात्र भगवानका ही अवलम्ब रहता है। ब्रह्माजी मनसे भगवान्के रूपका ध्यान करने लगे। जिह्वासे भगवन्नामोंका उच्चारण करने लगे। भगवानने उनकी प्रार्थना सुनली। उसी समय वहाँ बहुत से ऋषि आगये। उनमें अत्रिपुलस्त्य, पुलह, वशिष्ठ, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, मरीचि, कपिल, वोढ़ु, पञ्चशिख, रुचि, आसुरी, प्रचेता, शुक्र, वृहस्पति, उतथ्य, करक, कण्व, कश्यप, गौतम, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कर्दम, शातातप, पिप्पल, शङ्ख, पराशर, मार्कंडेय, लोमश, मृकण्डु, च्यवन, दुर्वासा जरत्कारु, आस्तीक, विभाण्डक, ऋष्यशृंग, भारद्वाज, वामदेव, कौशिक तथा और भी

बहुतसे ऋषि थे, ऋषियोंको आते देखकर मोहिनीको लज्जा गयी। कैसी भी स्त्री क्यों न हो, वह अपरिचित पुरुष को देख लज्जित हो ही जाती है। उसने तुरन्त ब्रह्माजीके वस्त्रको छ दिया और वह उनके समीप बैठ गयी। उसका हृदय धक् धड़क रहा था। शरीर थर थर काँप रहा था, अंगोंसे पसे निकल रहा था, चित्त चंचल हो रहा था, ब्रह्माजीके वामपार वह चुपचाप लजाती हुई बैठ गयी। अपने पुत्र पौत्रोंको देख ब्रह्माजी भी सम्हल कर बैठ गये। सबने आकर पितामहके पद्मोंमें श्रद्धा सहित प्रणाम किया। ब्रह्माजीनेभी सबको यथाय आशीर्वाद किया।

कुशल प्रश्नके अनन्तर मुनियोंने विनयके साथ पूछा "भगवन्! यह स्वर्गकी वेश्या आपके समीप क्यों बैठी है। तो हमने देवलोकमें देखा है। यह तो अप्सराओंमें श्रेष्ठ मोहि प्रतीत होती है ?"

इस प्रश्नको सुनकर मोहनीको और भी लज्जा आ ब्रह्माजी समझगये, कि मोहिनी लज्जित हो गयी है। अतः उस लज्जाको मिटानेके लिये वे बोले—"कोई बात नहीं लड़की यहाँ नाचने आयी थी। नाचते नाचते थक गयी मेरे समीप गयी। मेरी तो यह पुत्रीके समान है।" ऐसा कहते कहते ब्रह्म को हँसी आ गयी। उसमें अपने जितेन्द्रियपने का कुछ गर्व था और उस स्त्रीकी परवशताका परिहास भी था। वे मुनि सर्वज्ञ थे, वे भी सब रहस्यको समझ गये। वे भी सब य रहस्यको समझकर हँसने लगे।

सबको हँसते देखकर मोहनीके हृदयमें तो मानों ला बिच्छुओंने एक साथ डंक मार दिया हो, मानों उसके पके हृद किसीने एक साथ असंख्यों सुइयाँ चुभो दी हों। मुनिय

और अत्यंत काम भावसे क्रोध नष्ट हो जाता है। उसने ब्रह्माजीके परिहाससे अपना घोर अपमान समझा। अब काम के स्थान पर उसके हृदयमें क्रोध छा गया। क्रोधके कारण वह थर थर काँपने लगी। उस कुलटाकामिनीका कुटिलानन और भी अधिक कुटिल हो गया, उसके नेत्र क्रोधसे जलने लगे, उनमेंसे लाल लाल लपटेंसी निकलने लगीं। अधर फरकने लगे। वह भरी सभामें उठकर खड़ी हो गयी और ब्रह्माजीको सम्बोधन करके कहने लगी—"ओ विधाता! तुम्हें अपने ज्ञानी होने का बड़ा अभिमान है। तुम अपनेको बड़ा जितेन्द्रिय लगाते हो। सरस्वतीके प्रति जो तुमने अनुचित भाव प्रदर्शित किये थे, उसे सभी जानते हैं। मेरे ऊपर आप क्या हँस रहे हैं, मैं तो नर्तकी हूँ, वेश्या हूँ। सृष्टिमें तो दैवने ही सर्वगामिनी बनाया है। कहाँ आप कहाँ मैं। मैं आपकी दासियोंकी दासी होनेके तुल्य भी नहीं। तिस पर भी आप मुझे देखकर हँसते हैं, अतः मैं आपको शाप देती हूँ, आप संसार में अपूज्य हो जायँ। आपका न कोई मंदिर बने न आपकी कोई पूजा करे। सबकी जैसे वार्षिकी पूजा होती है, वैसे आपकी कभी न हो। आपका पद सदा बदलता रहे जो ब्रह्मा बदल गया, उसे फिर कोई पूछेगा भी नहीं।" इस प्रकार शाप देकर वह मोहिनी कामदेवके समीप चली गयी वहाँ जाकर उससे उसने अपनी इच्छाकी पूर्तिकी। पीछे जब उसका कामवेग शान्त हुआ तो उसे अपने कर्म पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि स्वर्गकी वेश्या होकर मैंने चौदहो भुवनोंके स्वामी लोकपितामह ब्रह्माको कैसा शाप दे दिया।

इधर उस अप्सराके शापसे समस्त ऋषि मुनि भी खिन्न हुए। सबने भगवान् ब्रह्मासे कहा—"पितामह! आप भगवान् वैकुण्ठ नाथके समीप जायँ वे कुछ उपाय करेंगे।"

सबकी सम्मति मानकर भगवान् ब्रह्मा श्रीहरिके समीप

वैकुण्ठ लोकमें गये। वहाँ प्रणाम नमस्कारके अनन्तर उन्होंने सब वृत्तान्त निवेदन किया। सब सुनकर भगवान् बोले—"ब्रह्माजी! देखिये, कुछ भूल आपसे अवश्य हो गयी। आप तो वेदोंको उत्पन्न करने वाले हैं, गुरुओंके गुरु हैं। सब कुछ जानते हैं। यह स्त्री जाति प्रकृतिका अंश है। जो स्त्रीका अपमान करता है, वह मानों प्रकृतिका अपमान करता है। उसे अपने कृत्यका फल अवश्य भोगना पड़ता है। मनुष्य जब कामके अधीन हो जाता है, जो विवश हो जाता है, विशेष कर स्त्री, ऐसी दशामें उसका परिहास करना, उसके ऊपर हँसना उसका अपमान करना, यह अभिमानका द्योतक है। आपको अपने ब्रह्मापनेका अभिमान हो गया था।"

ब्रह्माजीने नम्रतासे कहा—"महाराज! आपने ही तो मुझे ब्रह्माण्डका एकमात्र अधीश्वर बनाया है।"

अब तो भगवान् समझ गये, ब्रह्माजीको अपने ब्रह्माण्डाधिप होनेका अत्यधिक दर्प हो गया है। सहसा उसी समय भगवान्‌का द्वार-पाल आया और बोला—"प्रभो! बाहर एक ब्रह्मा खड़े हैं?"

ब्रह्माजी सुनकर चकित हो गये, कि ब्रह्मा तो एक मात्र मैं ही हूँ, दूसरा ब्रह्मा कौन आ गया। तब भगवान्‌ने पूछा—"किस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं।" ब्रह्माजीका मुख फक्क पड़ने लगा। अरे मेरे इस ब्रह्माण्डसे पृथक् भी कोई ब्रह्माण्ड है क्या? भगवान्‌ने द्वारपालसे कहा—"अच्छा, आने दो।"

उसी समय एक सौ मुखके ब्रह्मा हाथ जोड़े आकर उपस्थित हुए। ब्रह्माजीको अपने चार मुखोंका ही अभिमान था, अब सौ मुखके ब्रह्माको देखते ही उनकी सिटिल्ली भूल गयी। उसी प्रकार सहस्र मुख, लक्षमुखके असंख्यों ब्रह्मा वहाँ आ गये। उन सबको देखकर उनका विष्णुके सदृश होनेका मोह दूर हो गया। वे

मूर्च्छितसे हो गये। उसी समय उन्होंने देखा, भगवानके जितने रोम कूप हैं, उतने अनंत ब्रह्माण्ड हैं, उन सबके पृथक् पृथक् ब्रह्मा, इन्द्र-मनु, प्रजापति और देवता हैं।" यह देखकर उनका अभिमान जाता रहा और वे भगवानके भक्त बन गये। वे आये हुए समस्त ब्रह्मा भगवान्‌को प्रणाम करके चले गये।

ब्रह्माजी को बड़ी लज्जा आयी। 'हाय' मुझसे कैसा अपराध हो गया। वे लज्जित होकर भगवानके निकट सिरनीचा करके बैठ गये। भगवानने सोचा—ब्रह्माजीकी लज्जाको किसी प्रकार दूर करनी चाहिये।'

इस पर शौनकजीने पूछा—"हाँ, सूतजी तो फिर क्या हुआ? भगवान् ने ब्रह्माजीके संकोचको दूर किया?"

सूतजी बोले—मुनियो! भगवान की समस्त चेष्टायें समस्त क्रीड़ायें-लोक कल्याणके निमित्त तथा भक्तोंको सुख देने के निमित्त होती हैं। ब्रह्माजी लज्जित बैठे ही थे, कि उसी समय शंकरजी वहाँ आगये। अन्य ऋषि, मुनि,देवता भी आये। उन्होंने यहाँ आकर भगवान की आज्ञासे रास सम्बन्धी दिव्य गान किया। उस गानको सुनकर समस्त देवता ऋषि मुनि यहाँ तक कि स्वयं भगवान् भी द्रवीभूत होकर जल रूप में होगये। पीछे भगवानने अपने योग प्रभावसे सबको ज्योंकात्यों पृथक् पृथक् बना दिया। वह जल धारा रूपमें बहने लगा वैकुंठ से स्वर्ग आया। स्वर्गसे पृथ्वी पर उसीका नाम गङ्गा हो गया। भगवानने कहा—ब्रह्माजी! आप इस गंगाजी में स्नान करलें, शुद्ध तो आप हैं ही आपके स्नान करने मे यह शुद्ध हो जायगी।" भगवान् की आज्ञा से ब्रह्माजीने गङ्गाजीमें स्नान किया। उनकी लज्जा दूर हो गयी। फिर उन्होंने सरस्वती की उपासना की। सरस्वतीने उन्हें अपनाया। उनके साथ सुखपूर्वक रह कर ब्रह्माजी ब्रह्माण्डका पालन करने लगे।

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! ब्रह्माजी तो वेदगर्भ हैं, सबसे बड़े ज्ञानी हैं,उन्होंने मोहिनीका परिहास क्यों किया ?"

सूतजी हँसकर बोले—"अजी, महाराज ! काहेका परिहास है । यह सब भगवान् की लीला है। ब्रह्माजी कोई पृथक् थोड़े ही हैं। सब भगवान्का ही रूप हैं, उन्हें जब जैसी क्रीड़ा करनी होती है तब तैसा वेप बनाकर क्रीड़ा करते हैं। बड़े क्रीड़ाप्रिय हैं । खिलाड़ी हैं, मायावी हैं।

बात यह है, कि जब तक 'काम' न हो तब तक संसार की उत्पत्ति न हो । संसार न हो, तो क्रीड़ा कैसे हो मकड़ीकी भाँति स्वयं ही जाला बनाते हैं, स्वयं ही उसमें विहार करते हैं। जब चाहते हैं, निगल जाते हैं। सृष्टि की इच्छासे ब्रह्माजीको बनाया। ब्रह्माजीने सृष्टि करनेको पुत्रोंको उत्पन्न किया। वे कोई सृष्टिमें प्रवृत्त होना ही नहीं चाहते थे। तब ब्रह्माजीने एक कन्या उत्पन्न की और एक पुत्र कामदेव उत्पन्न किया। कामदेवको बाण देकर कहा—"तू सर्व विजयी होगा, सब तेरे वशमें होंगे।"

भस्मासुर की भांति कामदेवने सर्वप्रथम ब्रह्माजी पर ही अपने अमोघ अस्त्र की परीक्षा की । ब्रह्माजी का अस्त्र अमोघ ही था। सामने खड़ी हुयी अपनी पुत्री पर उनकी दृष्टि गयी। पीछे उन्होंने लज्जाके कारण शरीर त्याग दिया वह कन्या भी मर गयी। ऋषियोंने भगवानको स्मरण किया । भगवान्ने आकर ब्रह्माजीको योग प्रभावसे जीवित किया और उपदेश दिया— "ब्रह्मन् ! आप सृष्टि करें। कामसे ही तो सृष्टि है, किन्तु वह काम धर्मके अविरुद्ध होना चाहिये। जो धर्म विरुद्ध कामका सेवन करते हैं, वे नरकके अधिकारी होते हैं। संसारमें दो ही बड़े पाप हैं, पर स्त्री पर मन चलाना, पर धन की इच्छा करना। जो लोग आसक्त होकर धर्म विरुद्ध स्त्री सेवन करते हैं

उन्हें राजयक्ष्मादि भयङ्कर रोग होते हैं। उनका ज्ञान नष्ट होजाता है और इस लोकमें उनकी अपकीर्ति होती है। उत्तम पुरुष सदा भगवान्‌का चिन्तन करते रहते हैं, मध्यम पुरुष सदा सत्कर्मों में लगे रहते हैं और अधम पुरुष स्त्री लंपट होते हैं, वे सदा स्त्रियोंके ही रूप का चिन्तन करते रहते हैं। एकान्तमें स्त्रीको देखकर पुरुषको और पुरुषको देखकर स्त्रीको मोह हो ही जाता है। इस कामदेवको आपने इसीलिये उत्पन्न ही किया। यह लीला जो हुई, वह तो कामदेवके प्रभावको दिखानेके लिये हुई। अब आपका मन कभी विचलित न होगा। यह जो लड़की है, यह पुनः जीवित होकर कामदेव की पत्नी होगी। इसका नाम रति होगा। ये कामदेव और रति दोनों मिलकर संसारको मोहमें डालेंगे उसीसे सृष्टिका व्यापार चलेगा। "अब आप किसी परस्त्रीको काम भावसे न देखें।" ऐसा कह भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माजी सृष्टिके कार्यमें लग गये, ब्रह्माजीको भगवान्‌का यह उपदेश स्मरण था, इसीलिये बहुत प्रार्थना करने पर भी ब्रह्माजीने मोहिनीके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया।

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! तब इसमें ब्रह्माजीका दोष क्या था, उन्होंने तो भगवान की आज्ञाका ही पालन किया। फिर वे एक कुलटा अप्सराके शापसे जगत्‌में अपूज्य क्यों बन गये ? यह तो उलटी ही बात हो गयी।"

इस पर हँसकर सूतजी बोले—"नहीं महाराज ! उस वेश्या के परित्यागसे या उसके शापसे ब्रह्माजी अपूज्य थोड़े ही हुए। उन्हें जो 'मैं ब्रह्माण्डनायक हूँ, इस जगत्‌का एकमात्र अधीश्वर हूँ, यह जो अभिमान हो गया था, उसी अभिमानको चूर्ण करने के निमित्त भगवान्‌ने यह लीला रची। मोहिनी के मुखसे शाप दिलाया और स्वयं ही अपने ऐश्वर्यका दर्शन कराया। भगवन् ! श्रीहरिका काम ही है लोगों के गर्वको खर्व करना। उनका नाम

मदहारो हैं। संसारमें जिसे भी गर्व हुआ उसीके गर्वको भगवान् ने चूर्ण किया। जहाँ अभिमान आ जाता है, वहाँ भगवान् नहीं रहते। अभिमानके भगवान् शत्रु हैं। भक्तके हृदयमें किसी भी प्रकारका जहाँ अभिमान आया कि वे उसे तुरन्त माया रचकर चूर्ण कर देते हैं। धनका, ऐश्वर्यका, सदाचारका, प्रभुत्वका तथा और भी कैसा भी अभिमान मनमें आते ही मद बढ़ जाता है। भगवान् देखते हैं, यह तो मेरे भक्तको गिरा देगा अतः वे उसके अभिमानको नष्ट कर देते हैं भगवान्ने जैसे ब्रह्माजीके मदको चूर्ण किया वैसे ही शङ्करजीके, पार्वतीके, चन्द्रमाके, सूर्यके, अग्निके, दुर्वासाके तथा धन्वन्तरिके भी मदको क्रमशः चूर्ण किया था।"

इस पर शौनकजीने कहा—"सूतजी! शङ्कर, पार्वती, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि; दुर्वासा तथा धन्वन्तरिको मद क्यों हुआ और भगवान्ने उनके मदको कैसे चूर्ण किया, कृपा करके इन कथाओं को भी हमें सुनाइये।

इस पर सूतजी बोले—"अजी, महाराज! आप ऐसे ही प्रश्न में से प्रश्न करते जायँगे तब तो रासलीला हो चुकी। मुझे तो रासलीला वर्णन करने की चटपटी लगी है, आप ये मद भंग होने की कथायें ही पूछते जाते हैं। भगवन्! इन कथाओंका अंत नहीं, पार नहीं। ये अपार कथायें हैं। जिस रासलीलाके गानसे सब ऋषि, मुनि देवता यहाँ तक कि भगवान् भी पिघल कर गंगा रूपमें हो गये उस रासलीला की कथा को ही श्रवण कीजिये।"

इस पर गंभीर होकर शौनकजी बोले—"सूतजी! जैसे आपको रासलीला कहने की चटपटी लगी हुई है, वैसे हमें भी उस दिव्य प्रसंगको सुनने की चटपटी लगी है, किन्तु महा भाग! प्रसङ्ग वश जो कथा आ गयी है, उसे सुननेसे इस विषय

में और भी उत्कंठा बढ़ेगी। आप इन कथाओंका विस्तार न करें। अत्यंत संक्षेपमें सार रूपसे सुना दें। देखिये, इन कथाओंसे बड़ी शिक्षा मिलती है। अब ब्रह्माजी को कथासे ही यह शिक्षा मिली कि किसी को विवशता देखकर उसकी हँसी न उड़ानी चाहिये। न उस पर व्यंग करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह चाहें साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न हो, अपूज्य हो जाता है। संसारमें उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है। इन कथाओंका सार उपदेश लेना चाहिये, सोचना चाहिये इससे क्या शिक्षा मिलती है। यह कभी न सोचना चाहिये कि जब ब्रह्माजी भी फिसल गये, तो हमारी क्या बात है। यह तो भगवान् शिक्षा देनेके लिये ऐसी लीलायें करते हैं। आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। इन कथाओं को संक्षेपमें हमें अवश्य सुनावें। तदनंतर रास विलासकी सरस सुन्दर सारमया सरिता बहावें।

सुतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! जैसी आज्ञा। मुझे तो कथा ही कहनी है। ये भी परम शिक्षाप्रद भगवत चरित्र हैं। पहिले मैं इन्हें ही सुनाता हूँ।

श्रीशिवदर्पभङ्ग

(१)

सुनियो ! एक बार शिवजी के मनमें यह भाव आगया, कि मुझे सब महादेव कहते हैं, मैं सभी देवोंसे श्रेष्ठ हूँ आशुतोष हूँ। वरदानियों में श्रेष्ठ हूँ। इसलिये भगवान्ने लीला रची। महानुभावो ! शिव और विष्णु दो तो हैं नहीं। शिवजी के हृदयमें सदा विष्णु रहते हैं और विष्णुके हृदयमें सदा शिव। शिवजीके इष्ट विष्णु हैं और विष्णुके इष्ट शिव। जब कोई लीला करनी होती है तो दोनों में से एक स्वामी बन जाता है एक सेवक। नाटक में यही तो होता है। बाप बेटा बन जाता है

बेटा बाप। हाँ तो एक वृक नामका असुर था। उसने शिवजीकी आराधना करके यह वर माँगा कि मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वही मर जाय। शिवजी ने तथास्तु कह दिया। उस दुष्टने गौरी हरणकी लालसासे शिवजीके ही सिरपर हाथ रखना चाहा तब शंकरजी भगवान्‌की शरणमें गये। भगवान्‌ने बड़ी युक्तिसे उस असुरसे उसके सिरपर हाथ रखवाकर उसे भस्म करा दिया। इस प्रकार शिवजीका दर्प दूर हुआ वे भगवान्‌को ही सर्वश्रेष्ठ समझने लगे। यहाँ मैंने इस कथाका संकेत मात्र कर दिया है। आगे इसका विस्तारके साथ वर्णन करूँगा।

(२)

दुर्गा दर्पदलन

भगवती दुर्गा दुष्टोंका वध करके दक्षकी पुत्री सतीके रूप में प्रकट हुई थीं। उन्होंने भूलसे सीताजी का रूप रख लिया था। इससे शंकरजीने उनका परित्याग कर दिया था। इधर उनके पिता दक्ष प्रजापतिको प्रजापतियोंका पति होनेसे बड़ा गर्व हो गया था। उसके गर्वको नाश करनेके लिये सतीजी ने उसके यज्ञ में शरीर त्याग दिया। शिवजीने वीरभद्रके द्वारा दक्षके गर्वको खर्व कराया। यह कथा मैं पीछे विस्तार से वर्णन कर ही आया हूँ। वे ही सती हिमालयके यहाँ पार्वती रूपमें प्रकट हुई। हिमालय अपनी कन्याका विवाह शिवजीसे करना चाहते थे। किन्तु शिवजी ठहरे निस्पृह त्यागी, विरागी। वह विवाह क्यों करने लगे। हिमालय ने सोचा—मेरी पुत्री त्रैलोक्य सुन्दरी है शिवजी उसे देख लें तो अवश्य विवाह करनेको सहमत हो जायँगे। उन्होंने शिवजीसे प्रार्थना की—"मेरी पुत्री आपकी सेवा कर जाया करे तो कोई हानि तो नहीं है।" शिवजी ने कहा—"कोई हानि नहीं।"

अब तो पार्वतीजी नित्य ही सेवा करने आने लगीं। शिवजी उनकी सेवासे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। वे सर्वथा उनके अधीनसे हो गये। पार्वतीजी को गर्व हो गया, शिवजी मेरे रूप पर आसक्त हो गये हैं। ये काम के अधीन हो गये हैं। शिवजी ने सोचा—मेरी प्रिया के हृदयमें ऐसा अभिमान होना उचित नहीं है उसी समय उन्होंने अपने तीसरे नेत्रसे कामदेवको भस्म कर दिया। और पार्वतीजीसे उदासीन हो गये। यह देखकर पार्वतीजी का समस्त अभिमान चकनाचूर हो गया। उन्होंने घोर तप करके शिवजीको प्रसन्न किया और उन्हें पुनः प्राप्त किया। पीछे मैं इस कथाको विस्तार के साथ कह ही चुका हूँ।

(३)

इन्द्र दर्प नाश

देवेन्द्रके दर्प नाशकी कथा भी मैं पीछे कह आया हूँ। देवेन्द्रको भी अभिमान हो गया था, कि मैं तो तीनों लोकोंका स्वामी हूँ, बृहस्पतिजीको देखकर क्यों उठूँ। एक दिन गुरुके आने पर अहंकार वश सिंहासन से नहीं उठे। इससे उनकी समस्त श्री नष्ट हो गयी और पदभ्रष्ट होकर इधर-उधर भटकते रहे। अभिमानके वश मे उन्होंने गौतमकी पत्नी अहल्या के साथ अनुचित व्यवहार किया। अपने पुरोहित विश्वरूपका वध किया। इससे उन्हें ब्रह्महत्या लगी। ऋषियोंने यज्ञ कराके उन्हें निष्पाप बनाया। वे पुनः स्वर्ग के ऐश्वर्यको भोगने लगे। अबके उन्होंने विश्वकर्माको एक ऐसा नगर निर्माण करनेकी आज्ञा दी कि ऐसा नगर कहीं न हो। अब रात दिन कन्नी बसूला खटकने लगा। सौ वर्ष हो गये इन्द्रको तृप्ति ही न हो। भवनके ऊपर भवन बनते जायँ। विश्वकर्मा नापते नापते थक गये। वे जब भी घर जानेकी आज्ञा माँगें, तभी इन्द्र उन्हें डाँट दें, कि काम पूरा करके ही कहीं जा सकते हो।

विश्वकर्मा बड़े घबड़ाये, उन्होंने सोचा—"न जाने इसका काम कब समाप्त होगा। वे भगवान् का ध्यान करने लगे—"हे प्रभो! मुझे इस इन्द्रसे अवकाश दिलाइये।" भगवान् तो सब सुनने वाले हैं वे एक छोटे ब्राह्मण बालक का वेष बनाकर इन्द्रके समीप आये। इन्द्रने बालकका सत्कार किया और आनेका कारण पूछा।

ब्राह्मण ने कहा—"हे सुरेन्द्र! आप यह नगर तो बड़ा सुन्दर बनवा रहे हैं। ऐसा नगर तो आपके पहिले किसी इन्द्रने नहीं बनवाया न किसी दूसरे विश्वकर्मा ने ऐसा नगर बनाया।"

छोटे बच्चेके मुखसे ऐसी बड़ी बात सुनकर इन्द्रको हँसी आ गयी और वह व्यंगके स्वरमें हँसी करते हुए बोला—"अच्छा बूढ़े बाबा! तुम यह बताओ कि तुम कितने इन्द्रों को जानते हो"

बालक गंभीर होकर बोला—"देवेन्द्र! तुम इन्द्रकी बात कहते हो। मैं तुम्हारे बाप कश्यपको जानता हूँ, उनके भी बाप मरीचिको जानता हूँ, मरीचिके बाप ब्रह्माको भी जानता हूँ और उनके भी बाप नारायणको जानता हूँ। ब्रह्माके एक दिन में चौदह इन्द्र होते हैं। उनके ३६० दिनका एक वर्ष होता है, उन वर्षोंसे ब्रह्मा एक सौ आठ वर्ष जीते हैं। फिर दूसरे ब्रह्मा आ जाते हैं ऐसे असंख्यों ब्रह्मा हो गये हैं। उन सब को मैं जानता हूँ। जैसा यह ब्रह्माण्ड है ऐसे असंख्यों ब्रह्माण्ड हैं। महाविष्णुके एक एक रोमकूपमें अगणित ब्रह्माण्ड फैल फूटकर पड़े हैं। उन सब ब्रह्माण्डोंमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र मनु, देवता प्रजापति तथा ऋषिगण हैं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! उस छोटे बच्चेके मुखसे ऐसी बात सुनकर इन्द्र बड़े विस्मित हुए। उसी समय वहाँ एक बिलसे करोड़ों असंख्यों छोटी-छोटी चींटियाँ निकलने लगीं। उन झुन्ड की झुन्ड चींटियों को देखकर वह विप्रबालक हँसने लगा।

इन्द्र ने पूछा—"अरे, बालक ! तुम हँसते क्यों हो ?"

बालक रूप हरि बोले—"मैं हँसता इसलिये हूँ, कि जितनी ये चींटियाँ हैं, तुम्हारे पश्चात् क्रमशः ये सबकी सब इन्द्र होंगीं।"

इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ उसी समय लोमश मुनि आ गये। भगवान् ने उनसे पूछा—"तुम कौन हो ?"

उन्होंने कहा—"महाराज। मेरा नाम लोमश है। जब एक ब्रह्माका अन्त होता है, तो मैं अपने एक लोमको गिरा देता हूँ। असंख्यों ब्रह्मा मेरे सामने बदल गये।"

यह सुनते ही इन्द्रको बोध हो गया। उन्होंने वटु रूपी भगवान्को प्रणाम किया। विश्वकर्मा को तुरन्त घर जानेकी आज्ञा दी, और वे ब्रह्मज्ञानी बन गये। उनका त्रैलोकाधिप होने का मोह दूर हो गया।

(४)

सूर्य दर्प भङ्ग

इसी प्रकार एक बार सूर्यको भी अभिमान हो गया था कि मैं तीनों लोकोंको प्रकाश प्रदान करता हूँ, मेरे बराबर संसार में कौन है ? उसी समय माली सुमाली नामक दो प्रबल पराक्रमी दैत्य हुए। उन्होंने शिवजीको प्रसन्न करके उनसे एक ऐसा विमान प्राप्त किया, कि जब सूर्य अस्त हो जायँ, तो वे दोनों उस विमान के प्रकाशसे रात्रिको भी दिनके सदृश बना दें। सूर्यदेवने क्रोध करके अपने वज्रसे उन्हें मारकर गिरा दिया। कृपालु शंकरने आ करके अपने दोनों असुर भक्तोंको जिला दिया और वे सूर्य को मारनेको उनके पीछे भागे। सूर्यदेवने जब अपने बचनेका कोई उपाय न देखा, तो ब्रह्माजीकी शरण गये। ब्रह्माजीने दिव्य स्तोत्रसे शिवजीकी स्तुति की उन्हें प्रसन्न किया। शिवजी ब्रह्मा

जी की विनयसे सन्तुष्ट होकर बोले—"अच्छी बात है, मैं आप के कहनेसे सूर्यको छोड़ देता हूँ। आगे ये ऐसा अभिमान न करें।" शिवजीके उपदेशको सुनकर सूर्यदेवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने अभिमानका त्यागकर दिया। इस प्रकार सदाशिवके द्वारा सूर्यदेवका दर्प दलन हुआ।

(५)

अग्निके अभिमानका खंडन

अग्निको भी एक बार ऐसा ही अभिमान हो गया। बात यह थी कि भगवान् भृगुने उन्हें सर्वभक्षी होनेका शाप दे दिया था। इससे उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे कहने लगे—"मैं ही तो देवताओंका मुख हूँ, सबको आहार पहुँचाता हूँ। प्राणियोंके शरीरमें रहकर सबको जीवन दान करता हूँ। मुझे इस छोटेसे मुनि ने ऐसा दारुण शाप दे दिया। अच्छी बात है, मैं तीनों लोकोंको भस्म किये देता हूँ।" ऐसा सोच कर वे सौ ताल वृक्षोंसे भी ऊँची-ऊँची लपटें उठा कर तीनों लोकोंको भस्म करनेके लिए उद्यत हो गये। उनके ऐसे अभिमानको देखकर भगवान् बालक वेष बनाकर उनके सम्मुख आये और लपटोंसे कुछ भी न डरकर हँसते हुये अग्नि से पूछने लगे—"हे हुताशन! तुम इतने रुष्ट क्यों हो रहे हो?"

अग्निने क्रोधमें भरकर कहा—"भृगु मुनिने मुझे सर्वभक्षी होने का शाप दे दिया है, इससे मैं तीनों लोकोंको भस्म कर दूँगा।

हँसकर बालक रूपी हरि बोले—"यह अच्छी रही। देवदत्त चोरी करे यज्ञदत्त फाँसी पर लटकाया जाय। अरे, भाई ! भृगु ने तुम्हें शाप दिया है, भृगुको भस्म कर दो। त्रैलोक्यने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? बिना अपराध तीनों लोकोंको क्यों जलाना

चाहते हो ? देखो, यह त्रैलोक्य तो ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया है, विष्णु इसका पालन करते हैं, रुद्र संहार करते हैं। तुम्हें इसे जलाने का क्या अधिकार है ?"

अग्नि ने कहा—"पालन तो मैं ही करता हूँ। मैं अन्नको न पकाऊँ तो कोई प्राणी जी सकता है ? मेरी शक्तिसे ही तो संसार के सम्पूर्ण कार्य चल रहे हैं।"

भगवान् ने कहा—"तुममें क्या शक्ति है ?"

अग्नि ने कहा—"मुझमें वह शक्ति है कि मेरे सम्मुख जो भी वस्तु आ जाय, उसे मैं जला सकता हूँ।"

यह सुनकर वटु रूपी भगवान् ने अपने हाथ पर एक सूखा सरपत का पत्ता रखकर कहा—"अच्छा अब इसे तो जलाकर दिखाइये।"

अग्नि ने अपना सम्पूर्ण बल लगाया, किन्तु उस पत्ते को तिल भर भी झुलसा नहीं सके। तबतो अग्निको बड़ी लज्जा आयी। उनका सम्पूर्ण दर्प भंग हो गया। वे थर-थर काँपने लगे और भगवान्को ही अपनी शक्तिका मुख्य कारण समझने लगे।

(६)
दुर्वासा दर्प भंग

महामुनि दुर्वासाको भी अपने शाप देनेका बड़ा अभिमान था। ये शिवजीके अंशावतार हैं। इनका भी राजा अम्बरीषके यहाँ अभिमान भंग हो गया, इनकी कथा मैं पीछे कह ही चुका हूँ।

(७)
धन्वन्तरि दर्प दलन

एक बार भगवानके अंशावतार भिषक्तम धन्वन्तरिको भी अभिमान हो गया था, कि मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता।

शिवजीसे गरुड़जीने विषहारिणी विद्या प्राप्त की थी और गरुड़जीसे धन्वन्तरिजीने। इस सम्बन्ध से धन्वन्तरिजीके गुरु गरुड़जी थे और बाबा गुरु भोले बाबा थे। एक बार धन्वन्तरि जी अपने बहुतसे शिष्योंको साथ लिए हुए अपने बाबा गुरु शंकरजीके दर्शनोंके लिये कैलाश जा रहे थे, कि मार्ग में उन्हें तक्षक नाग पड़ा हुआ मिला। उसके फणों पर दिव्य मणियाँ चमक रही थीं, उसे अपने उल्वण विषका बड़ा अभिमान था। उसके साथ और भी बहुतसे लाखों नाग थे। वे सब सम्मिलित धन्वन्तरिजीको देखकर उन्हें डसने के लिये दौड़े। धन्वन्तरि उनकी ऐसी मूर्खताको देखकर हँस पड़े। उनका एक दम्भ नामक शिष्य था। उसने मंत्रोंके द्वारा तक्षकको जम्भित कर दिया। वह मंत्र प्रभावसे मूर्छित हो गया। दम्भीने उसे उठाकर रस्सीकी भाँति घुमाया और उसके फणोंसे मणि हर ली। फिर ज्योंका त्यों मार्गमें मृतकके समान डाल दिया। वह अचेत पड़ा रहा। उसके साथियोंने नागोंके राजा वासुकी को सूचना दी। समाचार सुनकर वासुकीने द्रोण, कालीय, कर्कोटक पुण्डरीक और धनञ्जय इन पाँच नागराजोंके सेनापतित्व बहुत से नागोंको भेजा। धन्वन्तरिजीने उन सबको मंत्र प्रभाव से निश्चेष्ट बना दिया।

वासुकी ने जब यह बात सुनी तो उसने अपनी बहिन मानस को भेजा। वह भी शिवजीकी शिष्या थी। उसने जाकर धन्वन्तरिजीसे अनेक अस्त्र शस्त्रोंके द्वारा युद्ध किया। वह कुमारी कन्या थी। अन्तमें जब उसने धन्वन्तरिजी के सब अस्त्र शस्त्र मंत्र और ओषधियाँ व्यर्थ बना दीं, तो उन्होंने क्रोधमें भर कर शिवजीके शूलको उठाया। उसी समय वहाँ शिवजी, ब्रह्माजी तथा गरुड़जी आ गये। ब्रह्माजीने कहा—"धन्वन्तरिजी! तुम क्या कर रहे हो? इस मानसा देवीको तुम नहीं जीत सकते

तुम इनकी पूजा करो।"

ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर धन्वन्तरिजीने शास्त्रोक्त विधिसे देवीका पूजन किया, स्तुति की। उनकी पूजासे प्रसन्न होकर मानसा देवीने उन्हें वर दिया। इस प्रकार धन्वन्तरिजीका मद भी उस कन्याके द्वारा चूर्ण हुआ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने आपकी आज्ञासे ब्रह्माजी, शिवजी, पार्वतीजी, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा तथा धन्वन्तरिजी के मानभङ्गकी कथायें अत्यन्त ही संक्षेपमें सुनायीं। महाभागो! जिन अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वेश्वर श्रीकृष्णने इन सब अपने भक्तोंके दर्पका नाश किया। उन्होने ही श्री वृन्दावनमें कंदर्पका दर्प भी दलन किया। रासलीलाका एक यह भी उद्देश्य था, कि कामदेवके बढ़े हुए अभिमानका नाश हो जाय। रास-लीलामें भगवानने कामदेवको चुनौती देकर बुलाया था।

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! रास किसे कहते हैं?"

इसपर सूतजी बोले—"महाराज! जिसमें रस आ जाय वही रास है।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! रस किसे कहते हैं?"

सूतजी बोले—"भगवान्! जो मनके द्वारा, चाटकर, देखकर, सुनकर, सूँघकर, छूकर आनन्द आ जाय वही रस है। इसकी अभिव्यक्ति आठ प्रकार से होती हैं। इसीलिए रस शास्त्रवालोंने शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और शान्त ये आठ रस बताये हैं। इन सबमें शृंगार प्रधान है। कहना चाहिये कि एकमात्र शृंगार ही रस है। शृंगार के ही ये रूपान्तर मात्र हैं।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! शृंगार किसे कहते हैं?"

हँसकर सूतजीने कहा—"अब महाराज! शृंगार क्या बताऊँ? आप तो ऐसे खोद खोदकर पूछ रहे हैं। शृंगार कहते हैं, रंगीले,

रसीले, चटकीले, स्वच्छ सुघर, मनोज्ञ, जो भी संसारमें सुन्दर आकर्षक स्वच्छ और हृदयको सुख देने वाले पदार्थ हैं सबका सम्बन्ध शृंगार रस से है। जो रूखे सूखे बाल बढ़ाये, लँगोटी लगाये, राख भभूत लपेटे डोलते हैं ये सब रसहीन नीरस हैं।"

हँसकर शौनकजीने पूछा—तो सूतजी। ये शिवजी नीरस हैं क्या ?"

सूतजी बोले—"अजी, तुम इन शिवजीकी कुछ मत पूछो महाराज! ये भी बड़े रँगीले हैं। कहना चाहिये रसके साक्षात् स्वरूप तो ये ही हैं। रासमें इन्होंने जटाओंकी वैंणी बना ली थी, भभूतका अंगराग बना लिया, बाघम्बरकी साड़ी और फटे कानोंके कुंडलोंके भूमका और कुंडल लटकाकर, लँहगा पहिन कर, चूरी बिछुआ धारण करके लोगसे लुगाई बन गये। महाराज शृंगार रसकी अनुभूति स्त्रीके बिना होती नहीं शृंगारको उद्दीप्त करता है संगीत।

संगीत क्या होता है सूतजी !" उत्सुकताके साथ शौनकजी ने पूछा।

सूतजी बोले—"भगवान्! नाचना, गाना और बजाना इ तीनोंका नाम संगीत है। वाद्य और गायनके साथ नट औ नटी मिलकर जो नृत्य करती हैं। एक दूसरेको पकड़कर विचि प्रकारसे जो हाव भाव कटाक्षोंका प्रदर्शन किया जाता है। उ का नाम रास है। इस रसमें रँगा रँगीला अपनी रँगीली सखि के साथ ही रास करता है। जितने अवतार हैं कोई तो म धाड़ करता है, कोई सदा तीर कमान ही ताने रहता है, क भीख माँगता है, कंगालोंके पीछे पड़ा रहता है। हमारे ये टेढ़ी टाँग वाले रँगीले रसीले रासेश्वर ही एक मात्र ऐसे हैं जो इन सबसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखते, सदा मुरलीकी तान छेड़ा

करते हैं। मंद मंद मुसकराते रहते हैं। प्यारीके साथ नाचते हैं, गाते हैं रास क्रीड़ा करते हैं। अतः मूर्तिमान शृंगार रस श्याम सुन्दर हैं। प्रियाजीके साथ उनकी जो कीड़ायें हैं वे ही रास कहलाती हैं। और महाराज! मैं इसमें अधिक रासकी क्या व्याख्या बताऊँ ?

शौनकजी बोले—सूतजी! आप पहिले हमें संगीतका स्वरूप बताइये, तब रासका रसयुक्त प्रसंग सुनाइये।

हँसकर सूत जी बोले—"अजी, महाराज! संगीत शास्त्र तो बड़ा गहन विषय है। मुझ जैसे नीरसका उसमें प्रवेश भी नहीं हो सकता। उसका विस्तारसे वर्णन तो चतुर्मुख ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। फिर भी जो मैंने कुछ गुरु मुखसे सुना है, उसे अत्यंत संक्षेपमें—सूत्र रूपमें—आपको सुनाता हूँ, आप दत्त-चित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

दोऊ रसमहँ पगे प्रेमकी बँधे डोरतैं।
करें हियेमहँ ध्यान निहारें नैन कोरतैं॥
झुकि झुकि चूमत बदन विरह संताप मिटावैं।
ऊपर गिरि गिरि परत परसिके प्रेम बढ़ावैं॥
अरसत परसत परस्पर, बहत तरंगनिमहँ उभय।
पीवत ज्यों ज्यों नेहरस, त्यों त्यों छूटत सकुच भय॥

रासारम्भ

[६६५]

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः॥*
(श्री भा० १ स्क० ३३ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

श्यामा श्याम सजाइ रास मंडलमहँ लाये।
जै निरखीं तहँ नारि श्याम तै रूप बनाये॥
द्वै गोपिनिके बीच बीच हरि सोहत कैसे।
स्वर्ण मणिनिके मध्य नील मणि दमकत जैसे॥
गलवैयां डारें चपल, नटवर वेष बनाइकें।
ताता थेई करि हँसत, नाचत ताल मिलाइकें॥

साहित्य और संगीत संसारमें दो ही रस अभिव्यक्तिके साधन हैं। जो इनसे हीन हैं वे पशु सदृश हैं। पशुओं पर साहित्यका कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं यह कहना तो कठिन है, किन्तु

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! गोपियोंके मंडलसे मंडित रासका उत्सव आरम्भ हुआ। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन स्त्रियोंमेंसे दो-दो के बीचमें एक-एक रूप बनाकर उनके कण्ठोंमें कर डालकर खड़े हो गये।

संगीतका प्रभाव तो पशुओं पर अवश्य पड़ता है। गान्धारमें गाने-से सब गौएँ एकत्रित हो जाती हैं और कान खड़े करके गान सुनने लगती हैं। हरिन गानके लोभसे ही प्रान गँवाते हैं। व्याध मीठे स्वरसे बीन बजाते हैं। हरिन उस गानको सुनकर आत्म विस्मृत हो जाते हैं उस दशामें व्याध उनका वध कर देते हैं, पकड़ लेते हैं। सर्प आँखोंसे ही सुनता है, उसके कान नहीं होते, फिर भी संगीत सुनकर वह झूमने लगता है। इसी प्रकार संसार-के समस्त प्राणी प्रकृतिके इस मनमोहक संगीत के चक्करमें ऐसे फँसे हुए हैं, कि अपने आपको भूल गये हैं। जिस संगीतसे आत्मविस्मृति न हो—अपना आपा भुलाया न जा सकता हो—वह सङ्गीत सङ्गीत नहीं, वेसुरा रुदन है। रुदन भी हो तो सुस्वर हो। कोई भी देवता सङ्गीतके बिना नहीं रह सकता। सङ्गीत शास्त्रोंमें बड़े विस्तारके साथ वर्णन आता है कि कौन देव किस स्वरमें गाते हैं। लिखा है अग्नि षड्ज स्वरमें गाते हैं। ब्रह्माजी ऋषभमें गाते हैं, चन्द्रमा गांधारमें और विष्णु मध्यम में। पंच-में नारद और धैवत और निषादमें तुम्बुरु गन्धर्व गाते हैं। कोई ऐसा देवता न होगा जिसका कोई न कोई विशेष वाद्य न हो। सरस्वती सदा वीणा लिये रहती हैं। भोले बाबा डमरू बजाते हैं। विष्णु भगवान् अपने पांचजन्य शङ्खको कभी हाथसे छोड़ते ही नहीं। नारदकी वीणा विश्वमें प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णकी मुरली के विषयमें तो कुछ कहा ही नहीं जाता। भगवान्‌की प्राप्ति करनेके दो ही साधन हैं। ध्यान और गान। जो ध्यान गान दोनोंमें से एक भी नहीं जानता उसका इस लोकमें और परलोकमें सर्वत्र अपमान होता है। यह संपूर्ण विश्वमें ही व्याप्त है।

नाचना गाना और बजाना इन तीनोंका ही नाम सङ्गीत है। तीनों मिलकर ही सङ्गीत कहाते हैं। भली भाँति जो गाया जाय उसीका नाम सङ्गीत है। संसारमें संगीतके अतिरिक्त कुछ है ही

नहीं। सभी अपना अपना नाच. नाच रहे हैं। सभी अपनी अपनी पृथक ढपली पृथक राग लेकर अपने-अपने पृथक गीत गा रहे हैं। घोर शान्त एकान्तमें चुपचाप बैठो तो तुम्हें मधुर-मधुर मुरलीकी मनोहारिणी मंद-मंद ध्वनि सुनाई देगी। उसी पर मन को स्थिर करो तो तुम्हें दिव्य सङ्गीत सुनाई देगा। समुद्रकी लहरियों को ध्यान पूर्वक देखो तो वे तुम्हें नाचती हुई सी दिखाई देगी। उस पर अपने चित्तकी वृत्तिको केन्द्रित करो। सम्पूर्ण मानसिक संकल्पको उस पर सीमित करदो, तो तुम्हें यह सम्पूर्ण विश्व एक दिव्य नृत्य करता हुआ दिखाई दे... करके एकान्तमें बैठ जाओ तो तुम्हें एक ... देगा, उसीमें मनको अटका दो तो चारों प्रकारके बाजे सुनाई देंगे। सङ्गीत कहींसे लाना थोड़े ही है यह सम्पूर्ण विश्व सङ्गीतमें परिप्लावित है। केवल उसकी अनुभूति करनी है, उसे समझना है, अनुभव करना है।

सङ्गीत शास्त्र उसी प्रकार अनन्त है जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं। सङ्गीत जीवोंको ही प्यारा हो सो बात नहीं। भगवान् को भी बहुत प्रिय है। एक दिन नारदजीने भगवान्से पूछा—"महाराज! कोई कहता है आप वैकुण्ठमें अधिक रहते हैं। कोई कहता है श्वेत द्वीपमें, क्षीरसागरमें तथा योगियोंके हृदयके अष्टदल कमलमें आप रहते हैं। कोई आपको सर्वव्यापक बताता है। अब मुझे तो आपके दर्शनोंकी नित्य ही चटपटी लगी रहती है। मैं कभी वैकुण्ठ गया वहाँ आप न मिले तो मुझे बड़ा दुःख होगा। अपना कोई एक निश्चित स्थान बता दीजिये जहाँ जानेसे आपके दर्शन हो ही जायँ, निराश होकर न लौटना पड़े।" यह सुनकर भगवान हँस पड़े और बोले—"नारद! वैकुण्ठ तो मेरा लोक ही है, वहाँ मुझे जाना तो पड़ता ही है, न जाऊँगा तो मेरी घर वाली लक्ष्मी अप्रसन्न हो जायगी। इच्छा न

होनेपर भी बहूके डरसे घरमें तो जाना ही पड़ता है किन्तु वहाँ मैं रहता नहीं। ऐसे ही घूम घाम करके, लक्ष्मीजीको बहलाकर इधर-उधरकी बातें बनाकर—भाग आता हूँ।

और भैया, ये योगी तो बड़े रूखे हृदय के होते हैं। इनकी जटायें दाढ़ियाँ सब रूखी रूखी होती हैं। नाकके वेगसे वायुको खींचने छोड़नेसे शरीर भी रूखा हो जाता है। अब मेरे लिये ये सब कष्ट सहते हैं, इसलिये इनके हृदयोंमें कर्तव्यवश जाना तो पड़ता ही है, किन्तु मैं वहाँ बैठता नहीं, खड़े खड़े दर्शन देकर लौट आता हूँ। किन्तु भैया नारद! देख जहाँ मेरे भक्त मिलकर ताल स्वरके सहित संगीत शास्त्रके अनुसार गाते हैं, वहाँ तो मैं पालथी मारकर बैठ जाता हूँ, जब तक वह होता रहता है, मैं उठता नहीं, इसलिये जहाँ शुद्ध संगीत हो रहा हो, वहाँ तुम मुझे निर्भय होकर खोज लिया करो। वहाँ मैं अवश्य मिल जाऊँगा।" नारदजीने सोचा—'मैं कहाँ संगीतज्ञोंको खोजता फिरूँगा'। वे अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये और बोले—"पिता जी! मुझे संगीत सिखा दो।' ब्रह्माजी तो वेदगर्भ ही ठहरे। उन्होंने नारदजीको विधिवत् संगीतकी शिक्षा दी और एक "स्वर ब्रह्म विभूषिता" वीणा दी और कहा—"इसे बजाकर जहाँ तुम भगवान्के नामोंको गाओगे, वहीं भगवान तुरन्त उसी प्रकार चले आवेंगे जैसे कोई समीपकी कोठरीका जागता पुरुष नाम लेकर बुलानेसे तुरन्त आ जाता है।' उसी दिनसे नारदजी वीणा को बजाकर भगवान् के नाम और गुणोंका गान करते हुए चौदहू भुवनोंमें स्वच्छन्द होकर विचरने लगे। गायन ऐसी विद्या है, कि सभी सहृदय पुरुष गायकसे प्रेम करते हैं। संगीतमें सर्वप्रथम गाना फिर बजाना, अन्तमें गाये बजायेको भाव प्रदर्शित करके—नाचकर—दिखाना, तीनोंकी मिलकर ही संगीत संज्ञा है।

बात यह है कि सर्वप्रथम शब्द ब्रह्म प्रणवकी उत्पत्ति हुई है।

उसीका नाम अनहद है। उस ओंकार शब्दसे ही समस्त वेद शास्त्रोंका विस्तार हुआ। जीव उसीकी संज्ञा है जो प्राणोंको धारण करे। प्राणोंमें स्पंदन रागसे होता है, तभी तो राग सबको प्रिय है। राग कहते हैं आसक्तिको। जिसमें मन तल्लीन हो जाय वहीं समझो राग है। यह होता है संगसे। संसार में मनका रंजित हो जाना, वह राग कहलाता है, वही राग भगवान्में हो जाय, तो उसकी प्रेम संज्ञा है। रागमें और प्रेममें तात्विक कोई भेद नहीं। राग ही रसको प्रकट करता है। सर्व रसोंमें शृङ्गार रस सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिये दो ही मनको तल्लीन करनेवाले आनन्द हैं, विषयानन्द और ब्रह्मानन्द। संसारी शृङ्गारमें राग होगा तो मन संसारी विषयोंमें रँग जायगा। वही राग श्रीराधाकृष्णके शृंगार रसमें रङ्ग जायगा तो वह नित्य रासका अधिकारी होगा। राग बिना रूपके होता नहीं। जहाँ राग और रूप दोनों मिल जाते हैं वहीं रास आरम्भ हो जाता है। संसारमें श्रीकृष्ण और गोपियोंसे बढ़कर कोई रूपवान् नहीं। उनका सा राग—अनुराग—संसार में कहीं नहीं। रागका यथार्थ मर्म विरही ही जान सकता है। जिसके हृदयमें कसक नहीं, टीस नहीं वह राग क्या समझेगा। 'भैंसके आगे बीन बजाये भैंस खड़ी पगुराई।"

आर्य शास्त्रकारोंने समस्त रागोंको छै भागोंमें विभक्त कर दिया है। इसीलिये हमारे यहाँ भैंरो, मालकोस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ ये छै ही राग माने गये हैं। इन छै रागोंकी पाँच-पाँच स्त्रियाँ हैं इस प्रकार ये तीस रागनियाँ हैं। इन्हींमें कुछ हेर फेर करके अनन्त रागिनी हो गयी हैं, वे सब संकर जातिकी हैं। शुद्ध राग रागिनी कोई विरले ही गा सकते हैं, नहीं तो सब संकर रागिनियोंको ही गाते हैं। शुद्ध राग गानेसे जड़ भी चैतन्य हो जाते हैं। जैसे भैंरों राग है उसे कोल्हूके सामने गाओ। जब उस गानेको सुनकर काठका कोल्हू अपने आप चलने लगे, तो

समझो भैरों राग शुद्ध गाया गया। इसी प्रकार मालकोसको सुनकर पत्थर अपने आप पिघल जाय, हिंडोल रागको सुनकर हिंडोला अपने आप भूलने लगे, मेघ रागको सुनते ही बिना बादलोंके वर्षा होने लगे, श्रीरागको सुनकर सूखा वृक्ष हरा हो जाय और दीपक रागको सुनकर बुझे हुए दीपक अपने आप जलने लगे तब समझना चाहिये ये राग शुद्ध गाये गये।

आर्यशास्त्रोंमें सभी वस्तुओंके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ये तीन रूप वर्णन किये गये हैं। इन छै राग और तीस रागिनियोंके शास्त्रोंमें रूप, रङ्ग, वाहन आदि सबका वर्णन है। यहाँ विस्तार भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता। सब राग सब समय नहीं गाये जाते और सब ऋतुओंमें नहीं गाये जाते। सबका समय निर्धारित है; सबकी ऋतुएँ निर्धारित हैं। जैसे पिछले पहरमें भैरों राग गाना चाहिये और उनकी रागिनी भैरवी, बङ्गाली, वैराटा, मधु, माधवी तथा सिंधवी इनको भी गाना चाहिये। प्रातःकाल जब सूर्य निकल आवे, उस समय मालकोस राग और उसकी टोढ़ी, गौरी, गुनकली तथा खम्भायत रागिनियोंको गाना चाहिये। जब एक प्रहर दिन चढ़ जाय, तब हिंडौल रागको गाना चाहिये और उसकी रमकली, पट, मञ्जरी, देवसाखि, ललित और विलायत इन रागिनियों को भी गाना चाहिये। ठीक मध्यान्हके समय दीपक रागको तथा नट, कान्हरो, केदारो, कमोद और प्रमोद इनको गाना चाहिये। चौथे प्रहरसे सूर्यास्त पर्यन्त श्रीरागका और उसकी धनाश्री, आसावरी, मारू, वसन्त और मालसिरी इन रागनियोंके गानेका समय निर्धारित है। कुछ ऐसे राग रागिनी हैं जो सब समय गाये जा सकते हैं। कुछ ऐसे राग हैं जो किसी विशेष समय पर गाये जाते हैं। जैसे मेघ रागको तभी गावे जब बादल हों। फाल्गुनके महीनेमें सभी राग सभी समय गाये जा सकते हैं। उस समय तो होली

है। वसन्त ऋतुमें सभी राग रात भर गाये जाते हैं, एक प्रहरका विश्राम देकर। भैरों राग का उत्तम समय शरद् ऋतु है। मालकोसका शिशिर, हिंडोलका वसंत, दीपका हेमन्त और ग्रीष्म तथा मेघ रागका सर्वश्रेष्ठ समय वर्षा ऋतुको बताया है।

स्वरकी उत्पत्तिके शास्त्रकारों ने तीन स्थान बताये हैं हृदय, कण्ठ और शिर। मन्द्र, मध्य और तार ये तीन स्वर हैं। मन्द्र स्वर हृदयसे उत्पन्न होता है, मध्यकण्ठसे और तार विशेषकर शिरकी सहायता से। षड्ज मध्यम और गान्धार ये तीन ग्राम बताये हैं। सात-सात स्वरों का एक सप्तक होता है षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाध और धैवत ये सात स्वर हैं। इक्कीस मूर्च्छना हैं। प्रत्येक ग्रामकी सात-सात मूर्च्छना बतायी हैं। उन सबका यहाँ विस्तार नहीं किया जा सकता।

स्वरोंकी पहिचान अत्यन्त कठिन है। यह बड़ा ही गहन शास्त्र है। मयूर सदा षड्ज स्वर में कूकता है, गौ सदा ऋषभ स्वरमें रम्हाती है। बकरी गान्धारमें मिमियाती है, क्रौंच पक्षी मध्यम स्वरमें बोलता है. वसंत ऋतुमें कोकिला पंचम स्वरमें कुहू-कुहू करती है, घोड़ा धैवत स्वरमें हिनहिनाता है और हाथी निषाद स्वरमें बोलता है। इन सब स्वरों की पृथक् पृथक् जाति हैं, वर्ण हैं। संगीत शास्त्रोंमें स्वरोंका विशेष विस्तार किया गया है। शुद्ध संगीतसे रसकी उत्पत्ति होती है और रस ही ब्रह्मका एक मात्र रूप है। वह रसरूप साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं। जब तक साथ में श्री नहीं होती, तब तक कृष्ण कृष्ण नहीं ठंठपाल मदन गोपाल हैं। श्री साथमें होनेसे ही वे रस रूप श्रीकृष्ण कहाते हैं।

गायनके साथ वाद्य आवश्यक है। संसारमें सहस्रों भाँतिके बाजे हैं, उन सबको शास्त्रकारोंने चार भागोंमें विभक्त करके उनकी चार संज्ञायें बना दी हैं। संस्कृतमें इनकी तत, सुषिर, घन, और

अवनद्ध ये संज्ञायें हैं। जो तारसे बजनेवाले बाजे हैं जैसे वीणा, तानपूरा, सारंगी। इनमें भी दो भेद हैं एक तो ठोकरसे बजने वाले जैसे सितार तानपूरा, वीणा आदि। दूसरे गजसे बजने-वाले जैसे सारंगी मोरबीन आदि। सुषिर वे बाजे कहलाते हैं जो फूँकसे बजते हैं, जैसे वंशी, मुरली, वेणु, अलगोजा तथा बीन आदि। घन उन बाजोंका नाम है जो ताल देते हैं। कांसे आदिके मजीरा, करताल आदि। अवनद्ध वे बाजे कहलाते हैं जो खालके मढ़े हुए होते हैं और हाथसे बजाये जाते हैं जैसे पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक तथा नगाड़े आदि।

गायनमें स्वर ताल और लय तीनों नियमानुसार मिलनी चाहियें। अमुक गीत किन-किन स्वरों में गाया जायगा, उसका ठाठ बनाकर उसे मुखसे उच्चारण करना उसे अलाप कहते हैं। बाजोंमें जो स्वर कहे जायँ वे ज्योंके त्यों निकाले जायँ उन्हें गमक कहते हैं। बाजे बजाने की चातुरी यही है, कि स्वरोंके गमक स्पष्ट प्रकट किये जायँ। पहले सभी बाजे मिलाये जाते हैं। जब स्वर ताल और लय एक हो जाय, तब संगीतमें रस आता है। तालोंके बीचके कालका नाम लय है। लय तीन प्रकारका होता है। द्रुत, मध्य, और विलम्बित। जैसे १६ मात्रा हैं, उन्हें ही ३२ मात्राके समयमें शीघ्र ही बजा देना यह मध्य हुआ। उसे ही ६४ मात्राके समयमें बजा देना द्रुत हुआ। इस प्रकार कंठ और बाजोंका स्वर ताल और लय एक हो जानेसे जो बोल मुख-से निकले, वे ही स्पष्ट बाजेसे भी सुनायी दें। उन्हींको भावोंके द्वारा व्यक्त करें तो उसका नाम नृत्य है।

दूसरोंके कृत्योंका अनुकरण करनेका नाम नाटक है। उसीके संस्कारको नृत्य कहते हैं। नृत्यमें मनके सभी भाव चेष्टा द्वारा प्रकट किये जाते हैं। नवों रसोंको बिना बोले केवल अङ्ग विक्षेपों द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। यह शास्त्र भी बड़ा

गहन है। नृत्य दो प्रकार का होता है। एक नाट्य नृत्य दूसरा लास्य नृत। नाट्य नृत्य नाटक अभिनयोंमें किया जाता है। इसके लिये रंगमञ्चकी आवश्यकता होती है। वह रंगमञ्च-नाट्य मंडप—में ही होता है। लास्य नृत्य जहाँ भी चाहें किया जा सकता है। जो नृत्य भाव और रससे समन्वित हो, ताल-काव्य और गीतके अनुसार चलनेवाला हो वही सुखप्रद नृत्य रसकी वृद्धिमें हेतु बताया गया है। नृत्यकी भावभंगीके ... इन सबका वर्णन भरत नाट्य शास्त्रमें विस्तारसे ... विष्णु धर्मोत्तर तथा नारदादि पुराणोंमें भी इनका यथा स्थान वर्णन आया है। यहाँ हमने केवल विषयको समझने के निमित्त संकेतमात्र कर दिया है। रासमें गायन, वाद्य और नृत्य तीनोंकी ही आवश्यकता होती है। संगीतका साकार स्वरूप तो रासमें ही व्यक्त होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह प्रेमका मार्ग ऐसा अनोखा है, कि इसमें जैसे नित्यनूतनता आती है, वैसे ही नित्य नये संकोच भी उत्पन्न हो जाता है। संकोच प्रेम बढ़ानेका एक यन्त्र है नया संकोच नये प्रेमकी वृद्धि करता है। गोपिकायें मुरलीकी ध्वनि सुनकर घरसे दौड़ी आयीं थीं। यहाँ आकर त्रिभंग ललित गति खड़े हुए मुरली मनोहरको देखा। उन्हें संकोच हुआ। श्याम सुन्दरने उनका संकोच छुड़ानेको ऐसी कुछ अटपटी बिना ... की बातें कीं। प्रेमकी सब बातोंका एक ही अर्थ होता है; प्रे... बढ़ाना। कृष्णने कहा—"रात्रिमें तुम यहाँ क्यों आयीं? चन्द्र... देखने आयीं क्या? वनकी शोभाके लिके मनललचा उठा ... क्या? व्रजमें कोई आपत्ति-विपत्ति तो नहीं आ गयी?"

श्रीकृष्ण कोई दूध पीनेवाले बच्चे तो थे नहीं जो न जानते हों कि ये क्यों आयीं हैं। जानते क्या थे, स्वयं ही उन्होंने मोहि... मंत्र पढ़कर वंशी द्वारा उन्हें बुलाया था। गोपिकायें भी जान...

थीं, कि ये जान बूझकर अनजान बन रहे हैं। हमें दुख देनेके लिये—ऐसी व्यर्थकी चेष्टायें दिखा रहे हैं। ऐसी भोली भाली बातें कर रहे हैं। किन्तु संकोच दूर करनेके लिये बातें करना आवश्यक है। बिना बातें किये रहा भी नहीं जाता और संकोच भी दूर नहीं होता। गोपियोंने श्रीकृष्णको मीठी-मीठी झिड़कियाँ देकर डाँटा अपनी विवशता दिखायीं। श्याम हँस गये। उनके कंठोंमें अपनी भुजायें डाल दीं, संकोच दूर हुआ मिलन हुआ। एक अध्याय समाप्त हुआ। सहसा श्याम छिप गये—अन्तर्हित हो गये। प्रेमका दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ। पिछली सब बातें अनंतमें विलीन हो गयीं। श्यामसुन्दर नये हो गये, गोपिकायें नयी हो गयीं। प्रेममें नित्य नया परिचय करना पड़ता है। नित्य संकोच होता है। फिर वे ही बातें करके संकोच दूर करना पड़ता है। फिर मिलन होता है। जहाँ वियोग हुआ कि फिर नया खेल आरंभ होता है। यही तो प्रेमकी क्रीड़ा है। बच्चे खेलमें करते क्या हैं? बड़े परिश्रमसे घरुआपाती बनावेंगे। गीली मिट्टीके नाना भाँतिके खिलौने बनायेंगे। रसोई घर बर्तन, लड्डू, पूड़ी सब एक ही रसीली मिट्टीके बनालेंगे। जब खेलको समाप्त करना होगा, तो यह नहीं करेंगे इसे कलके लिये ज्योंका त्यों छोड़ दो। खेलमें ज्योंका त्यों रहता ही नहीं। "मनुआ मरि गयो, खेल बिगर गयो।" दूसरे दिन फिरसे सब नया बनाते हैं। प्रिया प्रियतमकी रासक्रीड़ा कबसे हो रही है, किन्तु अभी तक आपसमें पूरी चिन्हारी भी नहीं हुई। एक दिन मिल जाते हैं जहाँ तनिक अलग हुए फिर श्यामसुन्दरजीको श्री जी नयी नयी-सी दिखायी देती हैं, श्रीजीको श्यामसुन्दर नित्य नये नये दीखते हैं। इतना तो उन्हें ज्ञान रहता है, कि ये मेरे कोई हैं, किन्तु इनसे परिचय कब हुआ, ये वे ही हैं यह सुधि नहीं रहती, जिस दिन देखती हैं, उसी दिन सबसे अधिक सुन्दर दीखते हैं,

यही दशा प्यारेकी भी है।

अन्तर्धान होनेके अनन्तर फिर नया परिचय करना पड़ा। गोपियोंने प्रश्न पूछे, श्यामसुन्दरने उत्तर दिये। क्षमा प्रार्थनाकी पिछली सब बातों को भुला देनेको कहा। अब नया परिचय हुआ जैसे धनलोलुप नित्य अधिक धन चाहता है, उसकी धनसे कभी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार प्रेमी नित्य नया प्रेम चाहता है। कलसे कुछ आजके प्रेममें विशेषता हो, क्योंकि कलके प्रेमीसे आजके प्रेमीमें विशेषता हो गयी है। आज वह कलसे भी अधिक मोहक आकर्षक और प्यारा हो गया है।

स्त्रियोंका स्वभाव स्वतः संकोची होता है। पुरुषके बिना संकेत पाये वे कुछ करती नहीं; मनमें चाहे उनके कुछ भी हो। मनके भाव तो छिपे रह नहीं सकते। विशेषकर प्रेमीसे तो छिपाना चाहो तो भी नहीं छिपते। श्यामसुन्दरकी भी इच्छा रास करनेकी थी और गोपियाँ भी यही चाहती थीं किन्तु दोनोंमें से पहिले कहे कौन ? जो अधिक निर्लज्ज हो, जो अधिक मुँह फट हो वही कह सकता है। नटखट श्रीकृष्णसे अधिक चंचल, मुँहफट और कौन हो सकता है ? अतः वे बोले—"चलो रास करें।"

अब तक गोपियोंसे घिरे श्रीकृष्ण बैठे थे। अब सर्वप्रथम वे रासके लिये उठ खड़े हुए। गोपिकायें तो श्रीकृष्णकी अनुगत ही हैं। छायाके समान हैं। जो वे करावें वह करना है। श्रीकृष्ण-ने अपने आप उनके कंठमें अपनी बाहुओंको डाल दिया। उनके संकोचको दूर कर दिया। उनके रोमाञ्च हो गये। सुन्दर सुडौल चिकनी भगवानकी बाहुको उन्होंने मुख झुकाकर चूम लिया। अत्यंत कोमल अधरोंके स्पर्शसे श्यामसुन्दरकी बाहुके जो रोम गिरे हुए थे वे सब खड़े हो गये और उनमें स्पंदन आरम्भ हो

गया, मानों गोपिओंने अपने अधरोंके द्वारा उनमें किसी रसको भर दिया हो।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! गोपियाँ तो असंख्यों थीं, श्रीकृष्णने किसी एकके ही साथ रास किया, तो यह तो पक्षपात हुआ। और तो सब उस सुखसे वंचित ही रह गयीं होंगी ?"

सूतजी बोले—"देखिये, भगवन् ! साधारण योगी भी योग प्रभावसे अपने जितने चाहें रूप बना सकते हैं, सो भगवान् तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं, उन्होंने पक्षपात नहीं किया, जितनी गोपियाँ थीं उतने ही उन्होंने रूप बना लिये। एक गोपी एक कृष्ण, एक गोपी एक कृष्ण इस प्रकार बड़ा भारी मंडल बन गया। भगवान् अपनी दोनों भुजाओंसे एक एक भुजासे दायीं ओरकी गोपीके कंधेमें हाथ डाले हैं, एक भुजासे बाईं ओर वालाके। इस प्रकार सभीको दोनों ओरसे श्यामसुन्दरका सुखद आलिंगन प्राप्त हो रहा था। सभी समझती थीं कि श्यामसुन्दर हमारे ही साथ हैं।"

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! जब भगवान्के दोनों हाथ घिर गये, तब वे मुरली कैसे बजाते होंगे ? मुरली बिना बजाये रासमें आनन्द ही क्या आवेगा। फिर जिस मुरलीने कृपा करके सब गोपियोंको घर घरसे बुलाया, उसे रास सुखसे वंचित रखना यह तो कृतघ्नता होगी। बिना मुरलीकी ध्वनि सुने गोपियोंका उत्साह कैसे बढ़ेगा, उनके नाचनेको पैर कैसे उठेंगे ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! आप बड़ी रहस्यकी बात पूछ लेते हो ? भगवन् ! श्रीराधिकाजी तो सब गोपियोंके समान नहीं थीं। वे तो उन सबकी अधीश्वरी थीं, अतः वे सबके बीचमें खड़ी हुईं। सबकी इच्छा भी यही थी वे बीचमें खड़ी हों, तो हम सब एक साथ उनके दर्शन करें। जब प्यारीजी बीचमें खड़ी

गयीं तो श्यामसुन्दर उन्हें अकेली कैसे छोड़ते, अतः उनके साथ ही खड़े हो गये, उनके भी कण्ठमें बाहु डाल दी। एक हाथ वहाँ खाली रह गया, उससे वे मुरली बजाने लगे। मुरलीकी ध्वनिमें नूपुर, करधनी, पाइजेब, कंकण तथा चूड़ियोंकी ध्वनि मिलाकर वे सब ताल देने लगीं।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! चूड़ियाँ तो काँचकी होती हैं, यह भी कोई बाजा है क्या?"

खिलखिलाकर हँसते हुए सूतजी बोले—"अजी, महाराज! कुछ मत पूछो। यदि आप मुझसे धर्मकी बात पूछते हैं, तो मैं तो कहूँगा, संसारमें चूड़ियोंसे सुन्दर कोई बाजा ही नहीं। हमकैसा भी कामकर रहे हों, जहाँ कानोंमें चूड़ियोंकी झनक पड़ी तहाँ मनमें कैसा भाव उठता है, उसे अब आप बाबाजियोंको क्या बतावें। भगवन्! वह बाजा तो अनुभवगम्य है। कहने सुननेकी बात नहीं। हाँ, तो श्रीकृष्णकी मुरलीके साथ नूपुरकी ध्वनियाँ चूड़ियोंकी खनखनाहट और झनझनाहट भी सुनाई देने लगीं। इससे श्यामसुन्दरका मयूरपिच्छ ऊपर सिरपर झोटा खाने लगा और भीतर उनका मन-मयूर नृत्य करने लगा।"

शौनकजीने कहा—"सूतजी! अब आपकी बातको हम काटें कैसे? आप कहते हो, कड़े, छड़े, पाइजेब, नूपुर और विशेष कर चूरियोंकी झनकार सबसे मधुर वाद्य हैं, किन्तु हमें तो वीणा, वेणु, मृदङ्ग तथा पखावज इन बाजोंकी ही ध्वनि अत्यन्त मधुर लगती है। बाजे तो हमें ये ही प्रतीत होते हैं, इनके बिना नृत्यमें क्या आनन्द आता होगा। नूपुर आदि तो बोलोंकी सहायतार्थ लिये हैं।"

शीघ्रताके साथ सूतजीने कहा—"हाँ, महाराज! बाजे तो ये हैं ही, इन चुरी आदिकी झनकारकी जो मैंने प्रसंशा की, वह शृंङ्गार रसकी वृद्धिके अभिप्रायसे कही। वैसे दुन्दुभी, झाँझ

पणव तथा अन्याय वाद्योंकी मधुरिमाके विषयमें क्या कहना ? इन बाजोंका भी वहाँ रास मण्डलमें अभाव नहीं था। भगवान् को रास करनेके लिये उद्यत देखकर स्वर्गसे देवता, गन्धर्व, किं-पुरुष तथा विद्याधरादि अपनी स्त्रियोंके सहित विमानोंमें चढ़ कर वहाँ आ गये। आते ही उन सबने गोपियोंके मण्डलमें रास के लिये खड़े हुए भगवान् और उनकी सखियोंके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की तथा मधुर स्वरमें वीणा, पणव और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! देवता अपनी स्त्रियोंको साथ क्यों ले आये ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! वे स्वयं लाये थोड़े ही, स्त्रियाँ ही पीछे लग लीं। मेला, ठेला, उत्सव पर्वमें सबसे पहिले स्त्रियाँ ही दौड़ती हैं। उन्हींसे शोभा है। फिर श्रीकृष्ण तो गोपी-जन-बल्लभ ही ठहरे। ये तो मूर्तिमान् शृङ्गार रस हैं। उन्हें देखनेकी इच्छा किसी अत्यन्त अभागेके ही हृदयमें न होगी। नहीं तो सभी उन्हें देखना चाहेंगे, फिर उनकी दिव्यातिदिव्य रासलीला के विषयमें तो कहना ही क्या ! स्वर्गीय देवताओंको रासलीलाके दर्शन तो अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। स्वर्गमें भला रास कहाँ हो सकता है ? यह तो गोलोकके अनन्तर पृथ्वीका ही सौभाग्य है। रासका नाम सुनते ही देवता, उनकी स्त्रियाँ, लड़कियाँ सभी एक साथ चल दीं। रासमें कोई प्राकृत कामकी गन्ध तो थी ही नहीं। वह तो अप्राकृत चिन्मय परम दिव्यातिदिव्य क्रीड़ा थी; अतः आकाश मण्डल दर्शकोंकी भीड़से भर गया। अन्त-रिक्षमें देवताओंके विमान ही विमान दिखायी देने लगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ऊपर तो दिव्य संगीतमें गन्धर्व गोविन्दके गुन गा रहे थे, नीचे गोपिकाओंके साथ रासेश्वर ब्रज-बल्लभ रास रच रहे थे। भगवान्‌की मुरली, गोपियोंके आभू-

पणों और गन्धर्वोके गीत वाद्यकी सब ध्वनियाँ मिलकर एक विचित्र स्वर लहरी उत्पन्न कर रहीं थीं।"

छप्पय

तातायेई करें फिरें हियमहँ हरषावें।
होहि परस्पर परस फुरहुरी पुनि पुनि आवें॥
उरझि हारमहँ हार सरसता अधिक बढ़ावें।
मिलें चन्द्रिका मोर मुकुटमहँ लट सटि जावें॥
चमकति चपला सम सखी, अगनित घन सम श्यामछवि।
अनुपम रास विलासकी, उपमा को करि सके कवि॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥

(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

मज युवतिनिके कण्ठ डारि कर नृत्यवर नटवर ।
रुनझुनु नूपुर बजत झनक छुरियनिकी मनहर ॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चंचल ।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनिके अंचल ॥
पग पटकत कुण्डल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर ।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उत भ्रमर ॥

अरे, आः संसारी जीवों ! संसारी अश्लीलताको हृदय-

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान्‌की प्यारी वे गोपिकायें उन्हींके यशका गान करती हुईं तालके साथ पैरोंको उठाने बाहु विक्षेप करनेसे मधुर मुसकानयुक्त भ्रुकुटि विलाससे कमरकी लचक और चञ्चल अञ्चल तथा कपोलोंके समीप हिलते हुए कुण्डलोंके कारण मेघमण्डलमें चमकती हुई चपलाके समान सुशोभित हुईं। रासमें श्रम करनेसे गोपिकाओंके मुख पर स्वेद बिन्दु झलक रहे थे। उन्होंने अपने कटिबन्धन और केशोंको कस लिया था (तो भी वे ढीले हो गये थे)।"

से निकालकर तुम रासेश्वरके रासको देखनेकी चेष्टा करो। इन संसारी अश्लील बातोंमें क्या रस है ? यह तो उस दिव्यातिदिव्य रसकी एक क्षीण-सी छाया है छाया। रस निकाले हुए ईखके छिलके हैं। इनमें जो मिठास है, उस रसके संसर्गसे है। वह यथार्थ रस तो रसिकेश्वरके रासमें है। दिव्य प्रकृतिके साथ दिव्य पुरुष अनादिकालसे रास रच रहा है, कमनीय क्रीड़ायें कर रहा है। अनन्तकाल तक यह रास ऐसे ही होता रहेगा। इसमें व्यवधान नहीं विश्राम नहीं, इसका पर्यवसान नहीं। यह दिव्य क्रीड़ा निरन्तर अव्याहत गतिसे होती रहती है। रासेश्वर थकते नहीं, उनकी प्रियायें अकुलाती नहीं, उन्हें नित्य नूतन उत्साह होता है। प्यारके संस्पर्शसे भला कौन ऊबेगा, किसकी तृप्ति होगी ? कौन चाहेगा प्यारके कण्ठसे विलग हो जायँ ? जब तक मनमें मलिन वासनायें हैं, तब तक रास देखनेका अधिकार प्रा न होगा। रासेश्वरकी रास मण्डलीमें मिल जाना, उनके परिका में सम्मिलित हो जाना यह तो बड़े भाग्यसे होता है। जीवनक एक मात्र लक्ष्य महारासकी झाँकी है। जिसने एक बार उसे प लिया वह निहाल हो गया, कृतकृत्य हो गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिस महारासकी इतने दिनों प्रतीक्षा थी, वह महारास यमुनाके पुलिनमें वृन्दावनकी पर पावन अवनिमें शरद्की ऋतुमें निशाकी वेलामें, चन्द्रिका आलोकमें आरम्भ हुआ। मंडलाकार गोपी कृष्ण खड़े हुए। मध्य में श्रीराधाकृष्णकी युगल जोड़ी सुशोभित हुई, अब होने लग ताताथेई। देवता बाजे बजा रहे थे, गन्धर्व तान अलाप रहे थे अप्सरायें नृत्यानुकरण कर रही थीं। श्रीकृष्ण गोपियोंको नच रहे थे, और साथ ही स्वयं भी नाच रहे थे। गोपियाँ कृष्णक नचा रही थीं या कृष्ण गोपियोंको नचा रहे थे, यह प्रश्न जटि है इसका उत्तर दे देना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है; अतः इ

प्रश्नको उठाना ही व्यर्थ है।

हाँ, तो श्रीकृष्णने सर्वप्रथम अपने चरणोंके नूपुरोंकी ध्वनि की, गोपियोंने उनकी ध्वनिमें अपने नूपुरोंको ध्वनि मिलायी फिर श्रीकृष्ण थिरकने लगे, गोपिकायें भी थिरकने लगीं। उनके उदर कृश थे, कमर लचीली और पतली थीं। नितम्ब स्थूल थे जब वे पदविन्यास करती हुई नृत्य करतीं, तो लच जातीं। श्रीकृष्णके अंगोंसे सट जातीं, मिल जातीं। उनके सुवर्णहार कृष्णकी वनमालामें उलझ जाते। झोटा खाती वैणी श्रीकृष्णके पृष्ठ देशको सुहलाने लगती। कभी कपोलोंकी आभासे दमकते हुए कुंडल भगवान्के कुंडलोंसे मिल जाते। इस प्रकार निरन्तर भगवान्का सुखद स्पर्श होनेसे सभीके अंगोंमें समस्त सात्विक भाव उदित हो गये थे। सबके अंगोंमें कँपकपी छूट रही थी। सभीके मुखों पर मोतियोंके सदृश नन्हें नन्हें स्वेद विन्दु झलकने लगे। श्यामसुन्दर अपने परम मृदुल सुखद कर कमलसे उनके कपोलों और मस्तकों पर उदित हुए स्वेद विन्दुओंको पोंछ देते, इससे उनके भावोंमें और स्फूर्ति आती। उन्हें नृत्य गायनमें औरभी अधिक उत्साह मिलता। वे दूने चावके साथ बाँके विहारी के गीतमें गीत मिलाकर नृत्य करतीं। कोई बेसुरा राग नहीं अलापतीं। किसीका पैर तालके विरुद्ध न पड़ता। कोई भी लयका अतिक्रमण न करतीं। प्यारेके संग उनका सुखद स्पर्श पाकर वे परम प्रमुदित हो रही थीं। घर द्वार, कुटुम्ब परिवार, शरीर यहाँ तक कि, सम्पूर्ण संसारकी वे सुधि बुधि भूले हुए थीं। दोनोंके अङ्गोंसे अङ्ग, वस्त्रोंसे वस्त्र, आभूषणोंसे आभूषण, सटकर, मिलकर एक हो जाते। मानों द्वैत वहाँ किसीको भी प्रेय नहीं था। सभी अपनेसे मिलनेको समुत्सुक थे। वे क्रीड़ासक्त कलकण्ठनिनादिनी कामिनियाँ कानोंके कमनीय कनक कुण्डलोंके कारण कलित कपोलोंकी कान्तिसे चम-

कती हुई चंचला चपलाके समान प्रतीत होती थीं। अनेक मूर्तियों का धरे हुए श्याम जलभरे नूतन मेघोंके समान रस बरसा रहे थे और मधुर-मधुर स्वरमें गायन कर रहे थे। उस दृश्यको कथन करनेकी सामर्थ्य किस कविमें हो सकती है? कौन उस अनुपम दृश्यका वर्णन कर सकता है।

वे समस्त सखियाँ नृत्य, गायन और वाद्य तीनों काम एक साथ ही कर रहीं थीं। अंगोंको मटकाकर, सैनोंको चलाकर तथा हाव भावोंको दिखाकर नृत्य कर रही थीं। चरणोंके कड़े छड़े और कटिकी कर्धनीके घुँघरुओं तथा हाथोंके आभूषणोंको बजा रहीं थीं और अत्यन्त आनन्दित होकर उच्च स्वरसे राग रागनियोंको गा रहीं थीं। इस प्रकार वे स्वयं श्यामसुन्दरकी शोभा पर रीझ कर उनके पुण्य स्पर्शको पाकर प्रमुदित हो रहीं थीं और अपने संगीत द्वारा उन्हें रिझा रहीं थीं। इस प्रकार उनके दिव्य संगीत की गूँज सम्पूर्ण विश्वमें भर गयी। सम्पूर्ण संसार उस दिव्य संगीतकी स्वर लहरीसे व्याप्त हो गया। अचर सचर हो गये। वृन्दावनके वृक्षोंके पुलक होने लगे। गोपिकायें पूरी शक्ति लगाकर गोविन्दको रिझा रहीं थीं। वे उनके अंग संगसे अत्यंत आह्लादित हो रहीं थीं। भगवान् एक रागको अलापते थे, उसीका अनुकरण दूसरी गोपियाँ करतीं। भगवान्ने जिस गानको मंद्र मध्य स्वरोंमें अलापा उसीको एक गोपी खींचकर तार स्वरमें ले गयीं। उसके इतने सुरीले उच्च स्वरके अलापको सुनकर श्यामका रोम रोम खिल उठा। मुरलीकी ध्वनिके साथ उनकी हृत्तन्त्रीके तार स्वतः ही झंकृत हो उठे, उस झंकृतिकी लयमें अपने आप ही मुखसे "साधु साधु, धन्य धन्य, बहुत अच्छा बहुत अच्छा", ऐसे शब्द निकल पड़े।

उसी लयको दूसरीने "ध्रुव" नामक तालमें गा दिया। तब श्यामसुन्दर चकित रह गये। बारबार उसका आलिङ्गन करके

कहने लगे—"मुझे पहिले यह पता नहीं था, तुम संगीत शास्त्रकी इतनी पंडिता हो, तुमने तो सीमोल्लंघन ही कर दी।" प्यारेका आलिङ्गन पाकर वह निहाल हो गयी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! संसारमें यदि कोई सबसे बड़ा पारितोषिक है, तो वह है, प्रियका आलिङ्गन। दंडकारण्यमें जब जानकीजीवन अवधकुल मंडन, कौशल्यानंदवर्धन भगवान् कोशलकिशोर विचरण कर रहे थे, तब पंचवटीमें उनकी आज्ञासे लक्ष्मणने एक कुटी बनायी। जिनके जीवनका एक मात्र उद्देश्य प्यारेको प्रसन्न करना होता है, वे सभी कलाओंमें स्वतः ही निपुण हो जाते हैं उनके सभी काम स्वतः ही सुन्दर होने लगते हैं, लक्ष्मणजीने बड़ी सुन्दर कुटी बनायी। राघव उस कुटीकी शोभाको देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। वे अपनी प्रसन्नताको प्रकट करते हुए लक्ष्मणजीसे बोले—"सौमित्र! तुमने यह बड़ी ही सुन्दर कुटी बनायी। मैं तुम्हारी इस कलासे अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें कुछ पारितोषिक देना चाहता हूँ, किन्तु मैं राज्यभ्रष्ट हूँ. सब कुछ छोड़ कर वनमें वासकर रहा हूँ मेरे पास देनेको और है ही क्या, फिर भी संसारमें प्रियका आलिङ्गन सबसे बड़ा पारितोषिक है. आओ मैं आज तुम्हें उसीको दूँगा"। यह कहकर भगवान्ने लज्जासे नीचा सिर किये हुए अपने विनयी भाईको दोनों हाथ फैलाकर कसकर हृदयसे चिपका लिया। उनका गाढ़ालिङ्गन किया। लक्ष्मणजीने मानो अनन्त जन्मोंकी सेवाका पारितोषिक इस एक ही आलिंगनसे पा लिया। उसी प्रकार जब गोपीने श्रीकृष्णकी लयको 'ध्रुव' तालमें गा दिया तो भगवानने उसे आलिंगन प्रदान करके उसके संगीतके श्रमको सफल बना दिया।

कोई गोपी श्यामसुन्दरको रिझानेको इतनी नाची इतनी नाची कि नाचते नाचते थक गयी। उसके करोंके कंकण तथा

केशपाशोंमें गुँथी हुई मल्लिका मालतीकी मालायें खिसकने लगीं। अंग शिथिलसे हो गये, मुख पर स्वेद विन्दु छलकने लगे। कटिवस्त्र ढीला हो गया। अंग श्रमितसे प्रतीत होने लगे। तब वह समीपमें खड़े हुए मदनमोहनके स्थूल कमनीय कंधेके सहारे खड़ी हो गयी और उनकी विशाल भुजाओंसे लिपट गयी। भगवान्ने भी उसे तनिक बल लगाकर दबा दिया। उसीसे उसका समस्त श्रम दूर हो गया। अंगोंकी पीड़ा शान्त हो गयी। मन मुकुर खिल गया। श्यामसुन्दरने अपने पीताम्बरसे उसके पसीनेको पोंछ दिया। वह कृतकृत्य हो गयी।

किसी गोपीके कन्धे पर बल देकर वनवारी नृत्यसे निवृत्त होकर खड़े थे। वह भी कुछ थकी थी; श्याम भी अँगड़ाइयाँ ले रहे थे। इससे उसका भी धैर्य छूट गया। उसने तुरन्त उनकी विशाल गुदगुदी, चिकनी सुखप्रद भुजाको झुकाकर चूम लिया। जिससे चन्दन और अगुरुकी सुगंध आ रही थी, जो पीत चन्दन चर्चित है। उस कमल कुसुमके सदृश भुजाकी गन्धसे सखी उन्मत्त सी हो गयी। प्यारेके श्रीअंगसे वैसे ही सदा दिव्य गन्ध निकलती रहती है, फिर जिसमें दिव्य अंग राग लगा हो, केशर, कस्तूरी, कपूर तथा चन्दन आदिसे अनुलिप्त हो, उसकी गन्धके विषयमें तो कहना ही क्या। कामसंतप्ता ऐसी कौन सी कामिनी होगी, जो उस अलौकिक गन्धको सूँघकर मतवाली-सी न बन जाय।

किसी गोपीका नाचते नाचते सिर लुढ़ककर श्रीकृष्णके सिरके समीप स्वतः ही चला गया। उनके मुखसे उसका मुख स्वतः ही मिल गया। श्यामके मनोहर मुखने देखा, कि कमलके समान कुंडलोंकी कान्तिसे उद्भासित यह मनोहर मुख मुझसे मिलने आया है, तो इसका कुछ स्वागत सत्कार तो करना ही चाहिये। भोजन न सही तो पान बीरीसे तो सम्मान करना ही चाहिये। अतः श्रीकृष्णके मुखके पास जो पान था, उसने वह अपनेसे सटे

गोपीके मुखमें दे दिया। बस दिव्यप्रसादी पानको पाकर गोपीका आनन खिल गया। अधर फरकने लगे और नयन अनुरागसे रंजित होने लगे। सिर गोदीकी ओर ढुकने लगा।

किसी गोपीको गाते गाते हृदयमें स्थित काम क्लेश देने लगा। संताप पहुँचाने लगा, तब वह अबला भयभीत होकर अन्य किसीको अपने समीप सहायक न निहारकर पासमें ही विराजमान श्यामसुन्दरकी गोदीमें लुढ़क गयी और उनके अभय देनेवाले कर कमलको उठाकर हृदयपर रखकर संकेत करने लगी कि संतापी दुष्टको तुम दंड दो। मेरे कठिन हृदयमें जो यह उपद्रव मचा रहा है, उसे ताड़न करके शिक्षा दो।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! यह विषय वर्णन करने योग्य नहीं है। प्राकृत पुरुष इसमें अश्लीलताका आरोप करेंगे। कामी पुरुष इस प्रसंगका दुरुपयोग करेंगे, अतः मैं इस विषय का बहुत विस्तार करना नहीं चाहता। वैसे विस्तार करनेका यथार्थ विषय तो यही है। श्रीकृष्ण चरित्रका हृदय है रास पंचाध्यायी। उसमें भी ये पाँच श्लोक पंच प्राण हैं, जीवन हैं परन्तु करूँ क्या ? मुझमें अब कहनेकी शक्ति रही नहीं, मेरी वाणी रुद्ध हो रही है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि वे कृष्णकान्ता अपने प्रेष्ठ की बाहुपासमें बँधी हुई—परमानंद सुखका अनुभव करती हुई—अपने दिव्य संगीतके द्वारा राधारमणको रिझाती हुई, रास विलास तथा आनंद विहार करने लगीं।"

छप्पय

क्रीड़ा कमलाकान्त करें कल वेनु बजावें।
रमनिनि राधारमन रमन करि रहसि रिझावें॥
पाइ विहारी अङ्ग सङ्ग विहरें व्रजबाला।
अस्त व्यस्त पट केश भये खिसकी गलमाला॥
पाइ प्रेम प्रियको परम, अति प्रमुदित प्रमदा भईं।
आलिङ्गनतें शिथिल अँग, मदमाती-सी बनि गईं॥

केशपाशोंमें गुँथी हुई मल्लिका मालतीकी मालायें खिसकने लगीं। अंग शिथिलसे हो गये, मुख पर स्वेद बिन्दु छलकने लगे। कटिवस्त्र ढीला हो गया। अंग श्रमितसे प्रतीत होने लगे। तब वह समीपमें खड़े हुए मदनमोहनके स्थूल कमनीय कंधेके सहारे खड़ी हो गयी और उनकी विशाल भुजाओंसे लिपट गयी। भगवान्‌ने भी उसे तनिक बल लगाकर दबा दिया। उसीसे उसका समस्त श्रम दूर हो गया। अंगोंकी पीड़ा शान्त हो गयी। मन मुकुर खिल गया। श्यामसुन्दरने अपने पीताम्बरसे उसके पसीनेको पोंछ दिया। वह कृतकृत्य हो गयी।

किसी गोपीके कन्धे पर बल देकर वनवारी नृत्यसे निवृत्त होकर खड़े थे। वह भी कुछ थकी थी; श्याम भी अँगड़ाइयाँ ले रहे थे। इससे उसका भी धैर्य छूट गया। उसने तुरन्त उनकी विशाल गुदगुदी, चिकनी सुखप्रद भुजाको झुकाकर चूम लिया। जिससे चन्दन और अगुरुकी सुगंध आ रही थी, जो पीत चन्दन चर्चित है। उस कमल कुसुमके सदृश भुजाकी गन्धसे सखी उन्मत्त सी हो गयी। प्यारेके श्रीअंगसे वैसे ही सदा दिव्य गन्ध निकलती रहती है, फिर जिसमें दिव्य अंग राग लगा हो, केशर, कस्तूरी, कपूर तथा चन्दन आदिसे अनुलिप्त हो, उसकी गन्धके विषयमें तो कहना ही क्या। कामसंतप्ता ऐसी कौन सी कामिनी होगी, जो उस अलौकिक गन्धको सूँघकर मतवाली-सी न बन जाय।

किसी गोपीका नाचते नाचते सिर लुढ़ककर श्रीकृष्णके सिरके समीप स्वतः ही चला गया। उनके मुखसे उसका मुख स्वतः ही मिल गया। श्यामके मनोहर मुखने देखा, कि कमलके समान कुंडलोंकी कान्तिसे उद्भासित यह मनोहर मुख मुझसे मिलने आया है, तो इसका कुछ स्वागत सत्कार तो करना ही चाहिये। भोजन न सही तो पान बीरीसे तो सम्मान करना ही चाहिये। अतः श्रीकृष्णके मुखके पास जो पान था, उसने वह अपनेसे सटे

गोपीके मुखमें दे दिया। बस दिव्यप्रसादी पानको पाकर गोपीका आनन खिल गया। अधर फरकने लगे और नयन अनुरागसे रंजित होने लगे। सिर गोदीकी ओर ढुकने लगा।

किसी गोपीको गाते गाते हृदयमें स्थित काम क्लेश देने लगा। संताप पहुँचाने लगा, तब वह अबला भयभीत होकर अन्य किसीको अपने समीप सहायक न निहारकर पासमें ही विराजमान श्यामसुन्दरकी गोदीमें लुढ़क गयी और उनके अभय देनेवाले कर कमलको उठाकर हृदयपर रखकर संकेत करने लगी कि संतापी दुष्टको तुम दंड दो। मेरे कठिन हृदयमें जो यह उपद्रव मचा रहा है, उसे ताड़न करके शिक्षा दो।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह विषय वर्णन करने योग्य नहीं है। प्राकृत पुरुष इसमें अश्लीलताका आरोप करेंगे। कामी पुरुष इस प्रसंगका दुरुपयोग करेंगे, अतः मैं इस विषयका बहुत विस्तार करना नहीं चाहता। वैसे विस्तार करनेका यथार्थ विषय तो यही है। श्रीकृष्ण चरित्रका हृदय है रास पंचाध्यायी। उसमें भी ये पाँच श्लोक पंच प्राण हैं, जीवन हैं परन्तु करूँ क्या? मुझमें अब कहनेकी शक्ति रही नहीं, मेरी वाणी रुद्ध हो रही है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि वे कृष्णकान्ता अपने प्रेष्ठ की बाहुपासमें बँधी हुई—परमानंद सुखका अनुभव करती हुई—अपने दिव्य संगीतके द्वारा राधारमणको रिझाती हुईं, रास विलास तथा आनंद विहार करने लगीं।"

छप्पय

क्रीड़ा कमलाकान्त करें कल बेनु बजावें।
रमनिनि राधारमन रमन करि रहसि रिझावें॥
पाइ विहारी अङ्ग सङ्ग विहरें ब्रजबाला।
अस्त व्यस्त पट केश भये खिसकीं गलमाला॥
पाइ प्रेम प्रियको परम, अति प्रमुदित प्रमदा भईं।
आलिङ्गनतें शिथिल अँग, मदमाती-सी बनि गईं॥

बिम्ब प्रतिबिम्बकी स्थल क्रीड़ा

[६६७]

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः
केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ६६ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

पुनि पुनि परसत अधर चुवावत रस बरसावत ।
सहसा चुटकी भरत करत सी-सी हरषावत ॥
दंतक्षत करि हँसत हियेपै नखक्षत करिकैं ।
पान प्रसादी देहिं मुखनिमहँ रति रस भरिकैं ॥
करें कामिनिनिपै कृपा, स्वेदबिन्दु पौंछें करनि ।
सुधामधुर मुसकानतें, लखि मेटत जियकी जरनि ॥

बालक शीशामें अपना ही प्रतिबिम्ब देखता है, अपने आप ही हँसता है मुग्ध होता है। स्वयं मुँह बनाता है जब वह

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे कुरुकुलतिलक राजन् ! भगवान्‌के अङ्ग सङ्गके आनन्दसे जिनकी इन्द्रियाँ अत्यंत आकुल हो गयी हैं वे व्रजाङ्गनायें अपनी वेणीको, वस्त्रोंको तथा कंचुकीको सम्हालनेमें समर्थ न हो सकीं । उनके अङ्गोंके आभूषण कण्ठकी मालायें अस्तव्यस्त हो गयीं थीं ।"

अपना प्रतिबिम्ब वैसा ही शीशेमें देखता है, तो खिलखिला कर हँस पड़ता है। रस बाहर नहीं है अपने ही रसको हम बाहर पान करते हैं। किन्हींके यहाँ विवाह होता है, तो गृहस्थी कहते हैं—"देखो यह अमुकके विवाहका गिन्नौरा आया है, कैसा मीठा है।" वास्तवमें वह गिन्नौरा (केवल सफेद चानीकी बनी एक गोल मिठाई है) अपनी ही है। हम विवाहमें जिसके घर गिन्नौरा भेजते हैं, वही हमारे यहाँ भेजता है। अधिक व्यवहार पटु तो यहाँ तक करते है कि उसे तौल लेते हैं, जितना बड़ा उसके यहाँसे आया होगा, उतना ही भेजेंगे। यदि उसका कोना टूटा होगा, तो अपने यहाँसे भी तोड़कर भेजेंगे। कहावत है अपना भात ही दूसरेके घरमें बैठकर खाया जाता है, जिसे हमने कभी खिलाया होगा उसीके यहाँ हम खायँगे। हम जो ये रूप देखते हैं ये सब हमारे भीतर ही हैं। भीतर न हों तो बाहर दिखायी ही न दें। हम जो वस्तुओंमें रस लेते हैं, यह रस हमारे भीतर ही है, बाहर नहीं है। कोई हमें अत्यन्त प्यारा लगता है। उसे देखनेको सदाचित्त चंचल बना रहता है, उसकी वाणी सुनकर चित्त परम प्रमुदित हो उठता है, बड़ी उत्सुकतासे उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। दूसरा उसे देखकर घृणा करता है, उसके हृदयमें उसे देखते ही शूल-सा चुभ जाता है। यदि सुख देनेकी सामर्थ्य उस व्यक्तिमें ही होती, तो सभीको उसे देखकर सुख होना चाहिये। अकेले हमें ही क्यों होता है? इससे सिद्ध होता है, सुख हमारे ही भीतर है, भीतरसे हम जिसे सुख समझ लें वही सुख है, जिसे दुख समझलें वही दुख है। बाहरी वस्तुओंमें सुख नहीं है सुख तो प्रेममें ही है। इसीलिये ज्ञानीको तुष्टिके लिये अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं रहती वह अपने आपमें ही सदा सन्तुष्ट बना रहता है। परिपूर्णको क्रीड़ाके लिये बाहरी संभार एकत्रित नहीं करने पड़ते, वह तो आत्मकीड़

होता है। अपने आपसे ही खेलता है। गोपिकायें श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं है। जैसे आमने सामने दो शीशे लगा दो, तो अपने ही सैकड़ों प्रतिविम्ब उनमें दिखायी देंगे। हम अकेले मुँह मट-कावें, तो वे शीशोंमें जितने प्रतिविम्ब होंगे सभी मुँह मटकावेंगे। इसी प्रकार गोपिकायें श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं। केवल रसास्वादन करनेको श्रीकृष्णकी विभिन्न शक्तियाँ ही गोपी रूपमेंव्यक्त हो गयीं हैं। अपने आप ही शक्तिमान अपनी शक्तियोंके साथ क्रीडा कर रहे हैं। इन क्रीड़ाओंकोजो दोप वुद्धिसे देखतेहैं। उनकी आँखोंमें ही दोप हैं। इनमें जो प्राकृत कामकी कल्पना करते हैं। उनका मन ही कामपूर्ण है, नहीं तो प्रकृतिसे परे, नित्य, निर्लेप विशुद्ध ब्रह्ममें भला प्राकृत भाव कैसे संभव हो सकते हैं। उनकी समस्त क्रीड़ायें केवल विशुद्ध प्रेममयी ही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इच्छा न रहनेपर भी अब मैं इस रासलीलाके वर्णनको समाप्त करके आगे बढ़ना चाहता हूँ महाराज! यह तो ऐसा रस है, कि जिसका इसमें प्रवेश हो गया फिर वह उसीमें घुलमिल जाता है, फिर लौटकर संसारमें बताने नहीं आवेगा। नमककी पुतली समुद्रकी थाह लेने गयी, उसीमें घुलमिलकर रह गयी, फिर बताने नहीं आयी, कि समुद्र कितना गहरा है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भूमिका तो इतनी लम्बी चौड़ी बाँधी तबसे हम बड़ी आशा लगाये बैठे थे, कि आप रास लीलाका विस्तारके साथ वर्णन करेंगे, किन्तु आपने तो सब गुड़ गोवर कर दिया। यह तो वही बात हुई कि पाठशालाके विद्यार्थी अपने सेठके यहाँ विवाह की धूमधाम देखकर आशा लगाये बैठे थे कि बढ़िया बढ़िया माल मिलेंगे। पचफैंनी मिलेंगी, रसगुल्ले उड़ावेंगे। कई दिनसे भर पेट भोजन नहीं किया। अन्तमें विवाह के दिन एक एक लड्डू देकर उन्हें टाल दिया। जिस प्रकार

उन विद्यार्थियोंको निराशा होती है, वैसे ही हम सब मुनियोंको हुई। श्यामसुन्दरने बाँसुरी बजायी' इस प्रसंगको सुनते ही हम सब बड़े उत्सुक हो उठे, कि अब रासका वर्णन होगा। आप जितना ही विस्तार करते थे, उतनी ही हमारी उत्सुकता बढती जाती थी। हम बीचमें इसी भयसे नहीं बोलते थे, कहीं रस भंग न हो जाय। बड़े धैर्यसे हम आपकी कथाको सुनते रहे, किन्तु आपने तो ऐसे स्थानपर आकर सहसा तान तोड़ दी, जहाँ आत्यधिक आनन्द आ रहा था। महाभाग! रासलीला का कुछ और वर्णन कीजिये। आप संसारी कामी लोगोंकी ओर क्यों देखते हैं? ये तो कुत्ते हैं बिना भूखे मानेंगे नहीं। आपको उनसे क्या काम? आप तो भगवद्‌भक्त रसिक भावुकोंके लिये इस रास रसकी वर्षा कर रहे हैं। वे भगवान्‌की लीलाओंमें अश्लीलताकी बात सोच भी नहीं सकते। फिर अश्लीलताके मानी क्या? अश्लीलताका आरोप होता है अन्यमें, जहाँ सब अपना ही अपना है, वहाँ तो भयकी कोई बात नहीं।

सूतजीने कहा—"नहीं, महाराज! मुझे संसारी लोगोंका भय नहीं है। अधिकांश लोग धर्मको ही ढकोसला समझते हैं। बहुतसे भगवान्‌को ही नहीं मानते, तो उनके पीछे हम धर्म और भगवान्‌की बातें कहना थोड़े ही छोड़ सकते हैं, किन्तु भगवन्! रासलीलाका विषय है ही ऐसा कि उसका प्राकृत भाषामें वर्णन हो ही नहीं सकता। उसके लिये हम शब्द कहाँसे लावेंगे। शब्द तो वे ही होंगे; जो प्राकृत स्त्री पुरुषोंकी रतिके समय व्यवहृत होते हैं। उन शब्दोंके भावको न समझकर लोग शब्दोंकी ही पकड़ करेंगे और कहेंगे—'श्रीकृष्ण साधारण गोप बालक थे। वे वनचरी गोपिकायें व्यभिचारिणी दुष्टा थीं। उनकी कामक्रीड़ा धर्म विरुद्ध थी।' इसीबातका मुझे भयहै। इसीलिये मैंइस विषय का विस्तार करना नहीं चाहता। नहीं तो महाराज, व्रजभाषामें

इस रसके रसिकोंने इस विषयका इतना विस्तार किया है, कि कोई जीवन भर भी पढ़ता और सुनता रहे, तो भी पार नहीं पा सकता। मैं अपनेको इस रसके वर्णन करनेका अधिकारी समझता नहीं। अब मैं इस प्रसंगको समाप्त करना चाहता हूँ।"

शौनकजीने कहा—"अच्छी बात है, जैसे आपकी इच्छा। अच्छा, यह तो बता दो, कि गोपिकायें जो भगवान्‌के अंगोंसे लिपटकर, उनके अंगकी दिव्य सुगंधको सूँघकर, उनके त्रिभुवन कमनीय रूपको निहारकर, उनके प्रसादी पानको पाकर, उनके अधरामृतका पान इसी प्रकार करती रहीं या कुछ और हुआ। इस प्रसंगको तो पूरा कर दो देवताजी!"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! अब आप मानोगे नहीं। इन सूखी दाढ़ी जटाओंके भीतर आपके हृदयमें भी श्रीराधाकृष्ण अनुराग रसका समुद्र हिलोरें मार रहा है, आप ऊपर से ही बाबाजी बने हो, भीतर बड़े रंगीले रसीले हो।"

आँखोंमें आँसू भरकर शौनकजी बोले—"सूतजी! हमारा कहाँ ऐसा भाग्य! हम तो नीरस हृदयके हैं। श्रीराधाकृष्ण रस का तो हमारे हृदयसे स्पर्श भी नहीं हुआ है। आप ही ऐसी सरस श्रुतमधुर कथा सुनाकर—रसके छींटे देकर—हमारे सूखे हृदय को उसी प्रकार सरस बना रहे हो, जिस प्रकार गुणी गायक श्रीरागको गाकर सूखे वृक्षको हरा बना देता है।"

सूतजी बोले—"अच्छा, हाँ महाराज! तो फिर अब आप रास प्रसंगको ही सुनिये। भगवान् रमारमण हैं, वे कमलाके साथ निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं। उन्हीं भगवान्‌को गाँवकी गँवारिनि ग्वालिनियोंने पति रूपमें प्राप्त कर लिया। जिनके दर्शनोंके लिये बड़े-बड़े योगी अनेक जन्मों तक जप, करते रहते हैं, उन्हींको भगवानने स्वयं पकड़कर अपने हृदयसे सटा लिया। उन्हें स्वयं माला पहिनायी, अपने हाथसे प्रसादी चंदन लगाया।

अपना प्रसादी पान दिया। अपने हाथों उनके मुखका पसीना पोंछा और कहाँ तक कहें उनके चरणोंको भी दवाया। बताइये इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है ?

गोपिकाओंने भी अपना कुछ भी नहीं रखा। अपना सर्वस्व श्यामसुन्दरके पादपद्मोंमें अर्पणकर दिया। भगवान्ने कहा—"यहाँ बैठो" वहीं बैठ गयीं। भगवानने कहा—"उठो" तुरन्त उठ खड़ी हुई। भगवानने कहा 'नाचो' नाचने लगीं।" भगवानने कहा—"गाओ" गाने लगीं, सारांश कि उन्होंने श्यामके संकेतपर ही नाचनेका अपना दृढ़ संकल्प कर लिया था। श्यामसुन्दरने स्वयं ही समस्त सखियोंको सजाया था। न जाने कहाँसे वे इतने कुमदिनियों के खिले हुए कुसुम ले आये थे। सभीके कानोंमें उन्होंने वे कुसुम खोस दिये थे। दिव्य सुगंधित पुष्पोंकी मालायें उनकी वेणियोंमें बाँध दीं थीं। उनकी गंधके लोभसे भ्रमर चारों ओर मँडरा कर गुनगुना रहे थे। मानों गोविन्दके गुन गा रहे हों। उनकी गुनगुनाहटमें ताल मिलाकर गोपिकायें नाच रहीं थी भाव दिखा रहीं थीं। उनके मुखोंपर जब श्रमके कारण स्वेदबिन्दु आ जाते तो श्यामसुन्दर उन्हें स्वयं पोंछ देते इससे उनका उत्साह पुनः नूतन हो जाता। हृदयसागरमे भावकी तरंगें उठने लगतीं। मुनियो ! भगवान नाचते नाचते कभी उनके मुखको, वक्षःस्थलको तथा कटिप्रदेशको स्पर्श कर लेते, कभी आलिंगनदान देते, कभी प्रणय कटाक्ष और मंद मंद मनोहर मुसकान द्वारा उनका अभिनंदन करते। इस प्रकार स्वयं खेलने लगे और उन्हें खिलाने लगे। उन रमणियोंको रासमें रमण कराने लगे। इन गोपिकाओंके आनंदकी कोई सीमा नहीं थी। जैसे कोई सुरापी सुरापान करके मत्त हो और फिर भी पीता ही जाय पीता ही जाय, यही दशा इन व्रजवनिताओंकी थी, केशग्रन्थोंसे मालायें गिरने लगीं। कटिके वस्त्र ढीले होकर

खिसकने लगे। कञ्चुकी की तनी टूट गयीं। वक्षःस्थल अनावृत हो गया। फिर भी उन्हें कुछ भी पता नहीं चला। वे विहारीके साथ विहार करते करते ऐसी विह्वल हो गयी थीं कि देह गेहकी कुछ भी सुधबुध उन्हें न रही।

गोपिकायें ही आत्मविस्मृत हुई हों सो बात नहीं। चन्द्रमा अपनी गति भूल गये। रात्रि भी देवताओंकी रात—छै महीनेकी हो गयी। समस्त ग्रह तारागण गतिहीन होकर स्तब्ध हो गये। आकाशमें अपने पतियोंके साथ जो देवांगनायें विमानोंपर बैठी थीं, उनकी भी तनियाँ तड़कने लगीं। वे सबकी सब सुरसुन्दरियाँ कामातुरा होकर मोहित हो गयीं। उनके वस्त्र खिसक गये, किन्तु उन्हें कुछ सुध ही न थी।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान्के मनमें कुछ काम भाव नहीं उत्पन्न हुआ क्या ?"

चौंककर सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! कैसी बात कर रहे हैं आप ? भगवान् तो आत्माराम ठहरे। उनके मनमें कभी कामभाव उत्पन्न हो सकता है। वे तो आत्माराम हैं, आत्मरति हैं आत्मतुष्ट और आत्मक्रीड़ा हैं। कामको विजय करनेकी ही तो उन्होंने यह क्रीड़ा की थी। देखिये, जितनी गोपियाँ थीं उतने ही रूप भगवान् ने रख लिये, जैसे जितने देह होते हैं, उतने ही रूप देही रख लेता है। जितना छोटा बड़ा देह होता है चैतन्यात्मा वैसा ही छोटा बड़ा बन जाता है। यह सब लीलाधारीकी लीला थी, क्रीड़ाप्रियकी क्रीड़ा थी, विनोदीका विनोद था, विहारीका विहार था। राधारमणका रमणियोंके साथ रमण था।"

जब वे गोपांगनायें रास करते करते थक गयीं, तो उनके शरीरोंको सुहलाकर, मुखपर छाये स्वेदबिन्दुओंको पोंछकर

उन्हें अंकमें लिटाकर थपथपाकर उनके श्रमको दूर किया। प्रेमपूर्वक शान्तिदायक करकमल उनके अंगोंपर फेरा। भगवान्के नख स्पर्शसे प्रमुदित होकर वे पुण्यप्रेममयी प्रमदायें अपने झिलमिलाते हुए कमनीय कनककुंडलोंसे तथा काली काली घुँघराली अलकावलीकी कलित कान्तिसे मण्डित लोल कपोलोंकी आभासे और सुधामधुरमयी मंद मुसकानयुक्त चारु चितवनसे चितचोरके चित्तको चुराती हुई उनके प्रति अनुराग प्रदर्शित करने लगीं और उनकी क्रोड़में पड़ी ही पड़ी उनके गुणोंका गान करने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक तो सम्मिलित रास होता है, जिसमें गोपिकायें राधा कृष्ण सब साथ मिलकर नाचते हैं और एक वैयक्तिक नृत्य होता है। श्रीराधाकृष्ण एक सिंहासन पर विराज जाते हैं, फिर क्रमशः एक एक गोपी आकर अपनी नृत्यकला दिखाती हैं। सबके नाचनेपर श्रीराधाजी नाचती हैं, फिर श्रीकृष्ण भी अपना नृत्य दिखाते हैं। इस प्रकार दोनों ही भाँतिका नृत्य हुआ। नृत्य करते करते सभीको श्रम और गरमी दोनों ही प्रतीत होने लगीं। तब श्यामसुन्दरने सखियोंके सहित जलकेलि करनेकी बात सोची। मुनियो! जलको जीवन कहा है, जलको पाते ही प्राणी प्रसन्न हो जाता है जलमें प्रवेश करते ही शरीर शीतल हो जाता है। गरमीमें तो जलका स्पर्श अत्यंत ही सुखद होता है। स्नान करनेसे शरीर हलका हो जाता है। जलमें स्नान करनेसे प्रसन्नता होती है, यदि अपनी प्रियाओंके संग जलकेलि करनेका अवसर मिले, तो फिर कहना ही क्या? वह सुखकी सीमा है, दोनों को ही परमाह्लाद होता है। अब कुछ मैं उसीका वर्णन करूँगा।"

छप्पय

हुँकैं गोपी थकित श्यामके अंक विराजैं।
ललना ललित दुकूल पीतपट मिल अति भ्राजैं ॥
सुहरावें तिनि अंग पोंछि मुख पुनि पुनि जोहैं।
निरखि चकोरिनि चन्द्र द्रवें त्यों नटवर सोहैं ॥
भरत न चित चितचोरको, चितवत अपलक अलीगन।
गोपी मुखपंकज निरखि, भयो श्याम अलि मत्तमन ॥

आत्मारामकी जलकेलि

[६६८]

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥*
(श्री भ० गी० १ अ० ४२,४३ श्लोक)

छप्पय

चले श्याम जलकेलि करन बनि गायक मधुकर।
करत गान सँग चलत कँपकँपी उठति सखिनि उर॥
वायु डुलावत व्यजन सुशीतल मंद सगंधित।
कृष्णकंठमहँ डारि भुजा प्रमदा अति प्रमुदित॥
करिनि संग जलकेलि ज्यों, करे करी अति हिय हरषि।
त्यों सखियनि सँग श्याम पुनि, करें खेल जल महँ प्रविशि॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जलमें प्रवेश करने पर वे व्रज युवतियाँ भगवान्पर चारों ओरसे जल उलीचने लगीं और प्रणय-कटाक्षों द्वारा चोट करती हुई बार-बार खिलखिलाकर हँसने लगीं। विमानोंमें बैठे देवगण ऊपरसे पुष्प बरसाते हुए स्तुति करने लगे। इस प्रकार स्वयं आत्मरति होनेपर भी भगवान् उन व्रजकामिनियोंके साथ इसी प्रकार क्रीड़ा करने लगे जैसे कुंजरकुंजरियोंकेसाथ क्रीड़ा करता है।"

संतापके अनन्तर जो शीतलता प्राप्त होती है, वह उसी प्रकार सुखद होती है, जिस प्रकार भूखमेंलच्छेदाररबड़ी या गुलाब जल पड़ा खुरचन। शीतल वस्तुकेस्पर्श से रोम खड़े हो जाते हैं,भीतरसे कॅपकॅपी छूटती है। साथ ही प्यारेके स्पर्शसे भी कँपकँपी हुआ करती है। यदि दोनों ही वस्तु साथ मिल जायँ सुशीतल जलमें प्यारेके सुखद संस्पर्श और संगभी प्राप्त हो, साथ ही हास्य विनोद भी हो, तो उस सुखकी फिर क्या सीमा है? वह असीम सुख है। विना गोपी बने यह सुख प्राप्त हो नहीं सकता। वैसे भगवान् गोपोंके साथ भी नहाते हैं, किन्तु भर्राये कंठवाले गोप हाहा करके हँसते हैं उनके हास्यमें वह स्वारस्य कहाँ जो कोकिलकंठी कामिनियोंके कंठोंमें है। वैसे गोपोंको चोटियोंमें से भी जलविन्दु गिरते हैं, किन्तु उन जलविन्दुओंमें वह सौंदर्य कहाँ जो काली नागिनिके सदृश झोटा खाती हुई वैणियोंसे वारिविन्दु गिरते हैं। वैसे गोपोंके दाँत नहाते नहाते कभी वज जाते हैं,किन्तु जो नहाते समय चूड़ियोंकी झनकार सुनकर श्यामका मनमयूर नृत्य करता है, वह इन रूखे गोपोंके दंत कटाकटमें आनंद कहाँ? इस लिये सब बातोंपर विचार करके, ऊँच-नीच देख भालकर यही निर्णय देना पड़ता है कि जलकेलिका आनंद तो गोपियोंके साथ ही आता है, वैसे कोई मनको कैसे भी समझा लो, यह सुख तो गोपियोंके ही भाग्यमें वदा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब रासका श्रम प्रिय के अंग स्पर्श और बहुमानसे दूर हुआ, तब श्याम बोले—"चलो, स्थल क्रीड़ाको छोड़कर जलक्रीड़ा करें। रासके श्रमको यमुनास्नान से शांत करें।" गोपिकायें तो शीतलता चाहती ही थीं। इसलिये श्रीकृष्णके सुशीतल करको बार-बार मुखपर, उरपर तथा अन्य अंगोंपर रखतीं। वे अपने संपूर्ण तनकी तपन बुझानेके लिये व्यग्र थीं। प्यारेके प्रस्तावसे उनका मनमुकुर खिल उठा। संपूर्ण

ममता बटोरकर प्यारेका गाढ़ालिङ्गन करके उनकी दृष्टिमें अपनी दृष्टि मिलाकर अनुराग भरितवाणीमें बोलीं "हाँ, चलो चलें। नीलनीरके संस्पर्श से शीतलता प्राप्त होगी।"

. फिर क्या था. गोपियोंसे घिरे घनश्याम उसी प्रकार चले जिस प्रकार बिजलीसे लिपटे हुए घन नभमंडलमें चलते प्रतीत होते हैं। घामसे संतप्त यूथपति गजेन्द्र जिस प्रकार अपनी हथिनियों से घिरा हुआ सरिताकी ओर जाता है उसी प्रकार व्रजवल्लभ व्रजाङ्गनाओंसे घिरे हुए कालिन्दीके कलित कूलकी ओर जल-केलिके निमित्त चल दिये। सबके अंगोंपर अत्यंत क्षीणपट थे जिनसे अम्बर स्पष्ट दिखायी दे जाय, उन वस्त्रोंको पहिने प्यारेके कंठको दृढ़तासे जकड़ हुए आती हुई, सी-सी करती हुई, अंगोंको कँपकँपाती हुइ, अपने सम्पूर्ण भारको श्यामपर लादती हुई वे घनश्यामके साथ जलमें घुसीं। ऊपरसे देवता देख रहे थे और पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे। देवताओंके बरसाये पुष्पोंसे यमुना पुष्पमयी बन गयीं। व्रजाङ्गनाओंके सिरोंपर कल्पवृक्षके पुष्प उसी प्रकार शोभित होते थे, जिस प्रकार काले रंग की सहस्रों शिवपिंडियों पर चढ़े हुए पुष्प शोभा देते हों। देवता "साधु साधु, धन्य धन्य, जय हो जय हो, ऐसे शब्द बार-बार कह रहे थे।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान् सर्व समर्थ हैं, उनके लिये न कुछ अच्छा है न बुरा, न कर्तव्य न अकर्तव्य। फिर भी कुछ मर्यादाका पालन करना चाहिये। देवताओंके सम्मुख गोपियोंके अंगोंसे अंग सटाकर वरुणके निवास स्थान जल में प्रवेश करना कुछ उचित नहीं जान पड़ता। व्रजकुमारिकायें नग्न स्नान करती थीं उनके इस तनिकसे अपराधपर भगवान् ने उन्हें कितना नाच नचाया, कितने प्रकारके व्यायाम कराये। जलसे निकलो, दोनों हाथ ऊपर उठाओ, सूर्यको प्रणाम करो। लड़-

कियाँ धर्मभीरु थीं। धर्मके भयसे सब कुछ उन्होंने किया। अब इन चोरशिखामणिसे कोई पूछे—क्या इस प्रकार स्त्रियें के अंगोंसे अंग सटाये जलमें प्रवेश करना मर्यादाके विरुद्ध नहीं है ?" किन्तु महाराज ! बड़ोंकी बड़ी बात। ये जो करें वही अच्छा। छोटे जो भी करें वही बुरा।

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! आप इन टेढ़े टाँगवाले देवताको कुछ बात मत पूछो। इनका अंग ही तीन स्थानोंसे टेढ़ा नहीं है, इनकी सभी बातें टेढ़ी ही टेढ़ी हैं। मर्यादा का काम तो इन्होंने धनुपधारीको सौंप दिया है, क्योंकि मर्यादाका पालन तो शांतदृष्टिसे गंभीरतापूर्वक होता है। ये ठहरे महाचंचल। इनकी दृष्टि एक स्थानपर स्थिर होती ही नहीं। इसलिये आप मर्यादा खोजना चाहते हों, तो जानकी जीवन दशरथनंदन प्रणतपाल अवधकुलमंडन श्रीराघवेन्दुमें देखें। ये तो लोकवेदकी मर्यादारूप बाँधको भी भिन्न करनेवाले स्वच्छन्द इभराज गजेन्द्र हैं। इसलिये मेरे गुरुदेवने इन्हें "इभराज इवभिन्नसेतुः" कहकर पुकारा है। महाराज ! श्रीकृष्णावतारमें तो रसकी अभिव्यक्ति की है। शृंगार रसकी सरिता जैसी इस अवतारमें बहायी है वैसी अन्य अवतारोंमें कहाँ ! यदि यह अवतार अवनिपर न होता, तो श्रीराधाकृष्णकी लीलाओं का प्राकट्य इस मर्त्यलोकमें न होता, यह सम्पूर्ण संसार रसहीन-नीरस-बन जाता। शृंगार और संगीतके प्राण तो श्रीराधाकृष्णकी ललित लीलायें ही हैं। बाँसुरीकी तानने सम्पूर्ण संसार को रसमें सराबोर कर रखा है। मूर्खसे मूर्खको और विद्वानसे विद्वान्‌को श्यामकी बाँसुरी विह्वल बनाये हुए हैं। यदि यह रसभरी मुरली न बजी होती तो सबके हृदय सूख जाते। उनमें जो सरस भावना रूपी मछलियाँ थीं, वे सब तड़प तड़पकर मर जातीं। इस सम्पूर्ण जगत्‌को श्रीराधाकृष्णके कृपा कटाक्षने

सरस बना दिया। महाभागा गोपिकाओंके रासने जगत्में रसकी सरिता बहा दी। महाराज! गोपिकायें तो उनकी नित्य सहचरी थीं यथार्थ धर्मपत्नी थीं। ब्रह्ममोहके समय सभीका श्यामसुन्दरने पाणिग्रहण किया था, सभीको बाईं ओर बिठाया था। पत्नीके साथ गाँठ बाँधकर जलमें प्रवेश करना अपने हाथों उसे मलमल-कर न्हिलाना धर्म विरुद्ध नहीं परमधर्म है। जो पत्नीके रहते गाँठ बाँधकर स्नान नहीं करते वे पुण्यके भागी नहीं रहते। मुनियो! यही तो आप लोगोंमें नीरसता है। यह आपका दोष नहीं आपके कठिन तपका दोष है। कैसा सरस प्रसंग कह रहा था। कैसा प्रश्न उठाकर रसभंग कर दिया।"

शौनकजी शीघ्रतासे बोले—"नहीं, नहीं सूतजी! हमें क्षमा कीजिये। हमने तो वैसे ही पूछ लिया, हाँ तो आप अब भगवान् की गोपियोंके साथ जल क्रीड़ाका ही वर्णन करें।"

अन्यमनस्कभावसे सूतजी बोले—"अजी, महाराज! अब क्या वर्णन करें। प्रसंग उड़ गया सो उड़ गया। चित्तकी वृत्ति सदा एक-सी नहीं रहती। अब जैसा मैं अत्यन्त सरस वर्णन करना चाहता था, वैसा तो संभव है न हो सकेगा फिर भी करता हूँ, सुनिये।"

हाँ, तो उस समय उन युवतियोंके स्नान करनेसे कृष्णवर्णा कालिन्दी पीतवर्णा हो गयी थीं। श्यामसुन्दर उस जलमें स्नान करते-करते अघाते नहीं थे। बार बार अपने पीताम्बरमें उस जल को भरते और गोपियोंके ऊपर उलीचते।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! कृष्णवर्णा कालिन्दी क्या कृष्णके पीताम्बरसे पीली हो गयी थीं?"

खीजते हुए सूतजी बोले—"अब रहने दो महाराज तुम। ऐसे अरसिकोंके से प्रश्न मत पूछा करो। श्रीकृष्णके पीताम्बरका रंग तो पक्का था, वह जलको पीला कैसे कर सकता है। मान लो

कर भी दे तो उससे गोपियोंका भावोद्दीपन हो सकता ? श्रीकृष्ण के अंगोंमें फुरहुरी तो युवतियोंके वक्षःस्थलपर लिपटी हुई कुंकुमका कीचसे हो सकती हैं। उसकी कीचने कृष्ण जलको पात बना दिया। और भगवानकी पंचरंगी वनमालाको भी पीला बना दिया। भ्रमरोंने सोचा—"भगवान्‌की माला तो इस दिव्य रंगमें रंगकर परम रसमयी बन गयी।" एक तो पुष्प का रस और फिर कुंकुमकी गन्ध। दोनोंको ही सूँघकर षट्पद मत्त बन गये। उन्होंने सोचा—"श्रीकृष्ण हमारी जातिके हैं समानशील हैं। वे भी रसप्रिय हैं हम भो रस पीकर जीते हैं। वे भो काले हैं और हमारा भी कृष्ण वर्ण है। वे भी गानप्रिय हैं हम भी गुनगुनाते रहते हैं। उन्हें भी वनवास अत्यन्त प्रिय है, और हम वनमें वास करते हैं। उनका वस्त्र पीला है हमारे भी पंख पीले हैं, फिर उनके धनके हम भी भोगनेके भागी हैं; अतः उड़ उड़कर उस मालाके मधुको पीने लगे, निर्भर होकर उसकी दिव्य गन्धको सूँघने लगे।" श्यामको घेरकर उन्हें गान सुनाने लगे। गोपिकाओंके आनन्दकी परिधि नहीं थी। जलके स्पर्श से एक तो स्वतः आनन्द आता है, फिर साथ ही प्रियका स्पर्श। वे अपने प्रणयकटाक्ष रूप सरोंका प्रहार करती हुई खिल खिलाकर हँसती हुई उस वनप्रदेशको मुखरित बनाने लगीं कालिन्दीकी लहरकी तालमें ताल मिलाकर वे गीत गाने लगीं। चारों ओरसे नटवरको घेरकर उनके ऊपर जल उलीचने लगीं। जलकी बौछारसे वनवारीको विवश बनाने लगीं, उन्हें चिढ़ाने लगीं। उनके अत्यन्त क्षीण पट जलमें भीगनेसे अंगोंमें सट गये थे, इससे सुवर्णकी कान्तिके सदृश उनके सभी अंग प्रत्यंग स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। वे निर्भय होकर श्यामसे लिपट जातीं और उन्हें लेकर जलमें डुबकी मार जातीं। श्याम उन्हें ऊपर ऊठा देते, वे स्वयं

विवशता व्यक्त करतीं। जैसे गजराज अपनी सूँड़में जल भर कर हथिनियोंके ऊपर फेकता है और उनके साथ बड़ी देर तक क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार भगवान् उनपर जल उलीचते हुए— उन्हें सरसतायुक्त जलमें भिगोते हुए—चिरकाल तक क्रीड़ा करते रहे। भगवान्को क्रीड़ाके लिये अन्य सामग्रीकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे तो आत्मरति हैं, आत्मक्रोड़ हैं। गोपिकायें उनका स्वरूप ही थीं अपने नाना स्वरूपोंसे नाना भौतिक खेल करने लगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जलक्रीड़ा करनेके अनन्तर घाटपर आकर सूखे वस्त्र धारण करके युवतियोंके यूथोंसे घिरे हुए और भ्रमरोंके गायनको सुनते हुए श्यामसुन्दर यमुनाके समीपवर्ती उपवनोंमें विचरण करने लगे। गोपिकाओंको पुष्पोंकी शोभा दिखाते हुए उन्हें सब प्रकारसे रिझाने लगे। कभी लता कुंजोंमें बैठकर उन्हें पुष्प तोड़कर स्वयं सुँघाते, कभी उनसे मधुमयी मीठी मीठी बातें करते। इस प्रकार उन्हें श्यामसुन्दरने सभी प्रकारके सुख दिये। सब प्रकारसे उनकी इच्छा पूर्ति की।"

छप्पय

विविध भाँति जलकेलि करी हरि बाहर आये।
पुनि पट पहिरे प्रियनि संग वन उपवन धाये॥
भद्र, लौह, श्री, ताल, बकुल, भाण्डीर, महावन।
खदिर, कुमुद अरु काम्य, बारहों श्रीवृन्दावन॥
बारह वन उपवन बहुत, केलि, केतकी, रासथल।
शेषशायिवन केमद्रुम, सुललित, उत्सुक वन विमल॥

वनवारीका वन उपवनोंमें रासविलास

[६६६]

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-
प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो
यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० २५ श्लोक)

छप्पय

धन्य धन्य व्रज धाम जहाँ पावन धन उपवन ।
वृन्दावन अति धन्य धन्य सब सखा सखीगन ॥
नन्द यशोदा धन्य धन्य हैं वे व्रजवासी ।
जिन सँग हरि नित करें शयन वन भोजन हाँसी ॥
वृन्दावन व्रजधाम नित, व्रजलीला परिहास नित ।
गो, गोपी, गोलोक नित, परिकर रास विलास नित ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजाङ्गनाओं और भ्रमरोंकी भीड़से घिरे हुए उस स्थान पर आये जहाँ सब ओर जल और स्थलके सुमनोंकी सुगंधसे सुवासित वायु बह रहा था । उस यमुनातटके सुरम्य उपवनमें वे उसी प्रकार विचरण करने लगे, जिस प्रकार मद चूता हुआ मत्त हाथी अपनी हथिनियोंके साथ भ्रमण कर रहा हो ।"

श्रीकृष्ण नित्य हैं, उनकी आह्लादिनी महाशक्ति नित्य हैं। उनके सखा नित्य हैं, सखी परिकर नित्य हैं, उनका धाम नित्य है, उनका नाम नित्य है, उनकी लीला नित्य है, उनका रास-विलास नित्य है। उसमें देश, काल तथा कार्य कारण भावकी अपेक्षा नहीं। वह तत्व, सनातन तथा शाश्वत सत्य है। जिनकी श्रीकृष्ण नामरूप, लीला और धाममें प्राकृत बुद्धि है। उन्हें प्राकृत पदार्थोंकी ही प्राप्ति होती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! स्थलक्रीड़ा करनेके अनन्तर भगवान्ने व्रजाङ्गनाओंके साथ बहुत देर तक जलक्रीड़ा की। तदनंतर वस्त्र पहिनकर उन गोपियोंको वन और उपवनकी शोभा दिखाने लगे। दिव्य वृन्दावनकी शोभा अवर्णनीय है। वैसे तो व्रजमंडलकी तिल-तिल भूमि दिव्य है, अप्राकृत है। वहाँ के सभी वन परम रम्य चिन्मय और रसयुक्त हैं, किन्तु इन सब वनोंमें श्रीवृन्दावन सर्वश्रेष्ठ है। गोलोकका जो मुकुटमणि स्थान है, वही भूलोकमें ज्योंका त्यों आ गया है, उसके नाम रूपमें कोई अन्तर नहीं, कोई भेद नहीं। जिस गोलोकमें अपनी प्राण-प्रिया श्रीराधिकाजी तथा अन्य गोपियोंके यूथोंके साथ श्याम-सुन्दर निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं, वे ही सब व्रज में प्रकट हुए हैं। गोपियाँ तो श्यामसुन्दरकी सनातनकी सहचरी हैं, जैसे व्रजमंडल नित्य है, सब वन उपवन नित्य हैं, गोप गोपी नित्य हैं वैसे ही यह रासविलास भी नित्य है।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! यह रसभंग न होता हो तो हम एक बात पूछें?"

सूतजी ने कहा—"हाँ, महाराज! पूछिये। रासलीला प्रसंग तो अब समाप्त ही समझिये। स्थलक्रीड़ा जलक्रीड़ा तो अब हो गयीं। अब आप निर्भय होकर प्रश्न करें।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! पूछना हमें यह है कि आप

बार ब्रजके वन उपवनोंका उल्लेख कर चुके हैं, इसलिये हमें यह जाननेकी बड़ी इच्छा है, कि ब्रजमें कितने वन उपवन हैं। भगवानने वहाँ कौन कौन-सी क्रीड़ायें कीं ?"

सूतजी बोले—अजी महाराज ! आपने तो बड़ा गहन प्रश्न कर दिया। यदि विस्तारसे मैं आपके इन प्रश्नोंका उत्तर दूँ, तब तो कभी पूर्ण हो ही नहीं सकता। क्योंकि ब्रजमंडलकी महिमा अनन्त है। पृथ्वीकी महिमा इसीलिये अत्यधिक है कि उस पर माथुर प्रदेश विराजमान है। शास्त्रकार ब्रजमण्डलकी उपमा सहस्रदल कमलसे देते हैं। ब्रजमण्डलमें बारह वन हैं। जिनके नाम भद्रवन, श्रीवन, लोहवन, भाण्डीरवन, महावन, तालवन, खदिरवन, बकुलवन, कुमुदवन, काम्यवन, मधुवन और वृन्दावन। इस प्रकार ये बारह वन हैं। इनमें सात तो यमुनाजीके पश्चिमीतटपर हैं और पाँच यमुनाजीके पूर्वकी ओर हैं। वैसे सभी एकसे एक श्रेष्ठ हैं, किन्तु महावन (गोकुल) मधुवन (मथुरा) और वृन्दावन इन तीनोंमें विशेष लीलायें की हैं, इसलिये इनका महत्व विशेष माना गया है। इन बारह वनोंके अतिरिक्त बहुतसे उपवन भी हैं, जिनमें कदम्बवन, खण्डकवन, नन्दवन, नन्दीश्वरवन, नन्दनन्दन खण्डवन, पलाशवन, अशोकवन, केतकीवन, सुगन्धि मादनवन, केलिवन, अमृतभोजनस्थल, सुखप्रसाधनवन, वत्सहरणवन, शेषशायिकवन, श्यामपूर्णवन, दधिग्राम, वक्रवन, भानुपुर, संकेतद्विपद, बालक्रीड़, धूसर, केमद्रुम, सुललितवन, उत्सुकवन, नानाविधरसमय क्रीड़ावन, नानालीलारसस्थल, गविस्तार विष्टम्भ तथा रहस्यद्रुम आदि स्थान हैं।

शास्त्रकारोंने सहस्र दल कमलकी कल्पना करके; प्रत्येक दलमें भगवानकी लीलाओंकी, उनके तत्तद् लीलानुसार नाम रूपकी उनके सखा सखियोंके परिकरकी कल्पना की है। उसका मैं

विस्तार करूँ तो कथा बढ़ जायगी, अतः यही समझो इन वन उपवनोंमें समस्त ऐश्वर्यपूर्ण श्यामसुन्दर नाना प्रकारकी क्रीड़ायें किया करते हैं। जिस वृन्दावनके आश्रयसे अच्युत अत्यन्त रसमयी रास विलासकी क्रीड़ायें करते हैं, उस दिव्यातिदिव्य वृन्दावनकी रचना चिन्तामणि रत्नोंसे हुई है। वहाँके यमुनाजीके घाट दिव्य मणियोंसे बने हैं। यहाँ भगवान् सदा नित्यकिशोर रूपसे विराजते हैं। श्रीजी नित्य किशोरी रूपमें। श्रीकृष्णजी कभी बालक होते हैं न बूढ़े। सदा सोलह वर्षके बने रहते हैं और श्रीजी पन्द्रह वर्षकी। यह युगल जोड़ी निरन्तर रास विलासमें ही लगी रहती है। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। उन सब ब्रह्माण्डोंके एक मात्र अधीश्वर श्यामसुन्दर हैं। सभी ब्रह्माण्डोंमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। वे अपना-अपना काम देखते हैं। ब्रह्माण्डकी अवधि समाप्त होते ही वह श्यामसुन्दरके श्रीअंग मे विलीन हो जाते हैं, फिर और ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। जैसे मनुष्य चलते फिरते, उठते बैठते अन्य सभी काम करते हुए श्वाँस लेता रहता है इसके लिये उसे कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार भगवान्के श्वासप्रश्वासोंसे अगणित ब्रह्माण्ड त्रिदेवोंके सहित उत्पन्न होते रहते हैं, विलीन होते रहते हैं, उसके लिये उन्हें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। अपनी रासक्रीड़ा में वे लगे रहते हैं। मुरली ही उनका आकर्षण यन्त्र है। उसीकी सहायतासे वे सबको अपनी ओर खींच लेते हैं। उन्हें अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी आवश्यकता नहीं। केवल एक मुरली बजानेको और एक प्रियाजीके अंकमें डालनेको उन्हें दो ही भुजाओंकी आवश्यकता है; अतः वृन्दावनविहारी श्याम सदा द्विभुज ही रहते हैं। उनका रूप त्रिभुवनमोहन है। उनके नित्यपार्षदके रूपमें सहस्रों सखा और सखी हैं उनके साथ वे विहार करते हैं, इसीलिये उनका नाम विहारी है। ये गोपियोंके अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये उन्हें गोपीजनवल्लभ भी

कहते हैं। श्रीराधाजीके साथ निरन्तर रमण करनेसे वे श्रीराधा-रमण कहाते हैं। उनके सखाओंमें श्रीदामा, वसुदामा, सुदामा, किङ्किणी तथा तोककृष्ण ये मुख्य हैं। वैसे सहस्रों सखा हैं। इसी प्रकार बहुत सी सखी भी हैं। कुछ गोपिकायें तो वेदोंकी ऋचायें हैं, कुछ देवकन्यायें हैं, कुछ ऋषिरूपा हैं और कुछ साधनसिद्धा हैं। इन सबमें श्रीराधिकाजी ही सर्वप्रधाना हैं। ये रासेश्वरी कहाती हैं। ये मूलप्रकृति रूपा हैं। इनकी आठ सखियाँ हैं जो भगवान्‌के चारों ओर आठों दिशाओंमें रहती हैं। उनके नाम, विशाखा श्यामला, श्रीमती, धन्या, श्रीहरिप्रिया, शैव्या, पद्मा तथा क्रमणिका हैं। ललिता और चारुचन्द्रा ये इन आठोंमें भी प्रधान हैं।

जैसे श्रीराधिकाजी मूलप्रकृतिरूपा हैं वैसे ही चन्द्रावली भी हैं। और सखियोंका तो श्रीराधिकाजीमें स्वामिनी भाव है किन्तु इनका राधिकाजीमें सापत्न्य भाव है। ये अपनेको श्रीजीसे किन्हीं बातोंमें कम नहीं समझतीं। इनकी प्रधान सखी पृथक् हैं उनके नाम चित्ररेखा, चन्द्रा, मदसुन्दरी, प्रिया, श्रीमधुमती और हरिप्रिया, श्रीमती तथा चन्द्रावलीके सहित ये आठ हैं। इन सबके भी यूथ हैं। ये सब श्रीकृष्णको सुख देती हैं। श्रीकृष्ण वन प्रिय हैं। सब वन उपवनोंमें वे गोपियोंके साथ विहार करते हैं।

इनकी लीलाके दो भेद हैं। एक प्रकट और दूसरी आभ्यन्तर अथवा गोष्ठकी और अन्तःपुरकी। गोष्ठकी तथा वनकी लीलायें तो प्रकट हैं, उनमें गोपी, बालक, युवक तथा वृद्ध सभीका प्रवेश है, किन्तु जो अभ्यन्तर लीला है उसमें तो केवल युवती गोपियोंका ही प्रवेश है। जिन्होंने चिरकाल तक रस मयी साधना की है, उन्हें ही गोपीभावकी प्राप्ति होती है साधारण पुरुषोंका इस भावमें प्रवेश ही नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण को दाढ़ी मूँछोंसे बड़ी चिढ़ है। इसलिये न इनके कभी दाढ़ी मूँछ आती है, न इनके परिकरकी गोपिकाओंके ही मुखपर दाढ़ी

मूँछें हैं। जो इस लीलाके दर्शन करना चाहेगा, उसे सबसे पहिले दाढ़ी मूँछोंको स्वाहा करना पड़ेगा।"

चौंककर शौनकजीने कहा—"सूतजी! हम लोगोंकी दाढ़ी मूँछें, तो बड़ी लम्बी-लम्बी हैं। इसका तो यही अर्थ हुआ, कि हम लोग तो सदा इस रससे वंचित ही रहेंगे। कभी उस रास विलासको देख हो नहीं सकते।"

हँसकर सूतजी बोले—"हाँ, महाराज! दाढ़ीवालोंका तो वहाँ प्रवेश है नहीं।"

तब शौनकजीने कहा—"तो सूतजी! फिर वहाँ जानेके लिये दाढ़ी मूँछे मुड़वानी पड़ेगी।"

हँसते हुए सूतजी बोले—"अजी, महाराज मुड़वानेसे दाढ़ी थोड़े ही जाती है। कैसी भी मुड़वाओ ठुड्डी तो बनी ही रहती है। जहाँ मुख पर एक भी बाल दिखाई दिया वहीं कान पकड़के बाहर निकाल देते हैं। इसलिये भगवन्! छुरासे मुड़ानेसे काम न चलेगा। रास मंडलके बाहर एक ऐसा रसकुन्ड है, कि उसमें बुड़की लगाते ही दाढ़ी मूँछ सब विलीन हो जाती है। नाक छिद जाती है, उसमें अपने आप नथ लटक जाती है, हाथोंमें चूड़ियाँ खनखनाने लगती है। जटाओं की वैंणी बन जाती है, माँगमें सिंदूर भर जाता है। रूखा वदन चिकना हो जाता है। समस्त कुरूपता धुलकर करोड़ों रतियोंसे भी सुन्दर स्वरूप हो जाता है। तब उस महामण्डपमें प्रवेश होनेका अधिकार प्राप्त होता है। यह सब होता है गुरुरूप भगवानकी कृपासे। रास शरद की पूर्णिमाको एक दिन ही हुआ हो, सो बात नहीं। वह तो नित्य निरन्तर होता रहता है, जिसे जब भी गोपी भाव प्राप्त हो जाय, तभी उसे उसके दर्शन होते हैं। अर्जुनको बड़ा अभिमान था श्यामसुन्दर मेरे बड़े स्नेही हैं। मेरा रथ हाँकते हैं, मेरे अधीन हैं. मैं जो चाहूँगा, वही करा लूँगा। कहीं उन्होंने किसीसे

उड़ती उड़ती यह बात सुन लो, कि भगवानने गोपियोंके साथ रास किया था। अतः एक दिन एकान्त पाकर उन्होंने रासका प्रश्न पूछ ही तो डाला। पहिले तो भगवान् टाल मटोल करते रहे। जब अर्जुनने बहुत ही आग्रह किया तो भगवान् बोले—"सुन भैया! तू मेरी सच्ची बात। वहाँ गांडीव धनुषसे या अक्षय तूणीरसे तो काम चलनेका नहीं। वह दिव्य स्थान शारीरिक बलसे तो प्राप्त होनेवाला नहीं। वह तो कृपासाध्यलोक है, कृपा भी उसीपर होती है, जो उस लोकके अनुरूप हो जाता है, उसमें प्रवेशका जिसे अधिकार प्राप्त हो जाय।"

अर्जुनने दीनताके स्वरमें कहा—"तो महाराज! अधिकार प्राप्त करानेवाले भी तो आप ही हो, अधिकार प्राप्त करा दो। मुझे उस लीलाके अवलोकनका अधिकारी बना दो।"

हँसकर भगवान् बोले—"वहाँ तो कड़े छड़े चूड़ी बाँछिया पहिनने पड़ते हैं, तिलकके स्थानपर माथेमें चमकीली बेंदी चिपकानी पड़ती है, वेणी बाँधनी पड़ती है और माँगमें सिन्दूर भरना पड़ता है।"

अर्जुनने कहा—"महाराज! मुझे सब स्वीकार है आप जैसा चाहो रूप बना दो, जैसे चाहो वस्त्राभूषण पहिना दो, किन्तु उस दिव्य रासकी झाँकी करा दो।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जब अर्जुनने बहुत आग्रह किया, तो भगवान्ने उन्हें विशुद्ध गोपी बनाकर उस दिव्याति-दिव्य रसका आस्वादन करा दिया।"

यह सुनकर अत्यन्त उत्सुकताके साथ शौनकजीने कहा—"सूतजी! भगवान्ने उस अपनी नित्यलीलाका दर्शन कुन्तीपुत्र अर्जुनको कैसे कराया? अर्जुनजीने भगवानने कैसे प्रश्न किये? कौन कौन-सी बातें कहीं, भगवानने उन्हें गोपी कैसे बनाया। कृपा करके इस प्रसङ्गको हमें विस्तारके साथ सुनाइये।

इसे सुननेको हमें बड़ी भारी उत्कंठा हो रही है।"

सूतजी बोले—"महाराज ! वह विषय तो अत्यन्त ही रहस्यका है। मेरे गुरु भगवान वेदव्यासने शपथ दिला दी है, कि इसे परम गोपनीय विषयको सब किसीके सम्मुख कभी भी प्रकट न करना। आप इतना आग्रह न करते, तो मैं तो इसकी चर्चा भी न करता, किन्तु आप अधिकारी हैं, इस विषयके ज्ञाता हैं, सरस हैं, अतः आपके सम्मुख मैं कहूँगा। यदि इसका विस्तार करने लगूँ तब तो यह कभी समाप्त होगा ही नहीं, क्योंकि संसारमें रास विलासके अतिरिक्त और जो भी कुछ दीखता है, मिथ्या है, असत्य है, भ्रम है, दुःख है। रास ही रास सत्य है, शिव है, सुन्दर है; अतः अत्यन्त संक्षेपमें इस विषयको मैं कहूँगा, आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

होवे गोपी भाव रासके दर्शन पावे।
अभिमानी नर नारी नहीं तहँ फटकन पावे॥
नारद गोपी बने बने गोपी त्रिपुरारी।
अर्जुन नर तहँ बने अर्जुनी गोपी प्यारी॥
रास रहस घनश्यामतैं, अर्जुनने पूछ्यो जबहिँ।
रस सरमहँ मज्जन करयो, पुरुष वेष बदल्यो तबहिँ॥

गोपियोंके साथ नित्यरासविलास

[१०००]

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

सरतं निकसै अंग अंगमदँ यौवन छायो।
तनुको सुन्दर वर्ण भयो मनु कनक तपायो ॥
बिछुआ नूपुर पैर चुरी कर झनझन बाजें।
बनी रँगीलो सखी कोटि रति द्युति लखि लाजें ॥
त्रिपुरसुन्दरीने कृपा, करी कामिनी तनु भयो।
जातें श्रीरासेश्वरी, राधाजी दर्शन दयो ॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! चन्द्रमाकी चाँदनीसे चर्चित तथा काव्योंमें वर्णित समस्त शरत्काल सम्बन्धिनी सामग्रियोंसे सम्पन्न उन निशाओंमें अस्खलित वीर्य तथा सत्य संकल्प श्रीश्याम सुन्दरने अपनी अनुगामिनी अबलाओंके साथ इसी प्रकार रास विलास किया !"

देवके अनुरूप होकर ही देवताकी आराधना करनी पड़ती है। जैसा देवता होता है, उसके अनुरूप ही रूप बनाना पड़ता है। भूत, प्रेत, पिशाचों तथा अन्य तामस देवोंकी उपासनाके निमित्त उन्हें स्मशान आदिमें जाकर जाग्रत करना पड़ता है, वैसी ही तामस वस्तुओंका संग्रह करना पड़ता है, तथा वैसा ही वेप भी बनाना पड़ता है। इसी प्रकार राजस् देवोंकी उपासनामें राजसी ठाठ और सात्विक देवोंकी उपासनामें सात्विक वेष भूषा तथा भावोंका अवलम्ब लेना पड़ता है। हम जैसा ध्यान करेंगे वैसे ही हो जायँगे। यह सृष्टि संकल्पसे है, जगत् भावमय है, जिसकी जैसी भावना होगी, उसे प्रभु उसी रूपमें दिखाई देंगे। शाक्तको उनके शक्ति रूपके ही दर्शन होंगे, शैवको शिव रूपमें और वैष्णवको विष्णु रूपमें। जो मधुर रसके उपासक हैं, संसारमें एक मात्र श्रीकृष्णको ही पुरुष मानते हैं और जितने भी जीव मात्र हैं सबको प्रकृति रूपा गोपी मानकर पति भावसे उनकी उपासना करते हैं, उनका भाव गोपियोंका-सा हो जाता है। शरीर स्त्रीका हो, पुरुषका हो इससे कोई प्रयोजन नहीं। जिनका भीतरसे भाव तो गोपीका होता नहीं, ऊपरसे वेप गोपीका बना लेते हैं, वे तो दम्भी हैं, मिथ्याचारी हैं, वेपको कलंकित करनेवाले हैं। इसके विरुद्ध जिनका भाव गोपिकाओं-सा है, ऊपरसे वे कुछ भी वेप न बनावें जटाजूट धारण किये बाबाजी भी बने रहें, तो भी वे उस रसका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं। व्रजमंडलमें ऐसे बहुतसे रसिक सन्त महात्मा हो चुके हैं या अब भी हैं। ऊपरसे देखनेमें तो वे बड़े विरक्त हैं। 'कर करुआ गुदरी गरे, यही उनकी सांसारिक सम्पत्ति है। मिट्टीका टोंटीदार पात्र पानी पीनेके लिये हैं और ओढ़नेको फटे पुराने चीथड़ोंकी एक गुदरी। सम्पूर्ण अंगोंमें व्रजरज लपेटे पागलोंकी भाँति घूमते रहते हैं, किन्तु मनसे वे अपनेको श्रीजीकी अनुचरी

किंकरी सखी समझते हैं।

कभी-कभी मनके भावानुसार शरीर भी वैसा ही बन जाता है। व्रजमें एक कथा प्रसिद्ध है, कि कोई सन्त विशुद्ध गोपी वेष बनाकर वृन्दावनकी गलियोंमें घूमा करते थे। कोई विदेशी पर्यटक आये। एक पुरुषको सजी सजायी स्त्रीके वेषमें देखकर परम विस्मित हुए उनके लिये यह नयी बात थी। कुतूहलवश उन्होंने उनसे प्रश्न किया—"पुरुष होकर तुमने यह स्त्रीका वेष क्यों धारण किया है ?"

संतने कहा—"अपने प्रियतमको रिझानेके लिये।"

विदेशीने पूछा—"किन्तु तुम तो पुरुष हो। पुरुष रूपमें उत्पन्न हुए हो, स्त्री वेष बनानेसे ही क्या लाभ ?"

संतने कहा—"प्राणी जैसा उत्पन्न होता है, वैसा ही तो नहीं रहता। भावानुसार उसका वेष, रूप, रङ्ग सभी बदल जाता है। उत्पन्न होते समय बालक थे, फिर बदलकर युवक वृद्ध हो गये। पैदा होते समय, दाँत, दाढ़ी मूछें नहीं थीं, बड़े होने पर ये सब हो गयीं। पैदा होते समय नंगे पैदा हुए थे, अब विविध भाँतिके वस्त्र पहिन लिये। हमारी मधुर भावना है इसलिये अपना तदनुरूप वेष बना लिया।" मनुष्य अपनी भावनासे ही वेष बनाता है।

विदेशीने कहा—"यह तो सब सत्य है, किन्तु लहँगा फरिया पहिनने ओढ़नेसे, कड़े छड़े नथ आदि आभूषण धारण करनेसे सोलह शृंगार करनेसे ही तो पुरुष स्त्री नहीं हो जाता। स्त्री पुरुषोंके स्वाभाविक चिह्न पृथक् पृथक् होते हैं, वे बदलें तब सच्चा भाव हो।"

संतने कहा—"दृढ़ धारणासे वे भी बदल जाते हैं।"

विदेशीने पूछा—"तुम्हारे बदले हैं ?"

संतने कहा—"प्रत्यक्षमें प्रमाण क्या ? परीक्षा करो। उसका

एक साथी शारीरिक शास्त्रका ज्ञाता चिकित्सक था। उसने विधिवत् परीक्षा की। संतके शरीरमें समस्त स्त्र्योचित चिन्होंको देखकर वे सब परम विस्मित हुए। कहनेका सारांश इतना ही है, कि दृढ़ भावना के अनुसार शरीरका भी परिवर्तन हो सकता है। बहुत-से पूर्व जन्मके पुरुष स्त्री बन जाते हैं और स्त्री पुरुष। साधारण नियम तो यही है स्त्री-स्त्री ही योनिमें उत्पन्न होती है पुरुष-पुरुष में ही। किन्तु दृढ़ भावनासे विपर्यय भी हो जाता है। इसीलिये शास्त्रकारोंने भावको ही भवका कारण बताया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे भगवान्के रास रहस्य तथा अर्जुनको गोपी भाव कैसे प्राप्त हुआ यह प्रश्न पूछा था, उसे ही मैं संक्षेप में कहता हूँ।

एक दिन अर्जुन श्यामसुन्दरके साथ एकान्तमें बैठे थे। दोनों अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रेमकी मीठी मीठी बातें कर रहे थे। श्यामसुन्दरको अपने अनुकूल और प्रसन्न देखकर कुन्तीनन्दन अर्जुनने पूछा—"प्रभो! हमने सुना है आप व्रजमें गोपिकाओं के साथ रास करते थे। वह रास क्या है किस प्रकार आपने किन-किनके साथ किस किस वनमें कब कब रास किया है? रास सम्बन्धी सभी बातें आप मुझे बतावें।

भगवान्ने बातको टालते हुए कहा—"अरे, भैया! ये सब तो ऐसी ही सट्ट पट्ट बातें हैं तुम इन सब बातोंको जानकर क्या करोगे कोई और चर्चा छेड़ो।

अत्यन्त अधीर होकर दीनताके स्वरमें अर्जुनने कहा—"दीनदयालु! दीनानाथ! इस दीन हीन पर दया करो। रास विलासके सम्बन्धमें जाननेकी मेरी बड़ी भारी अभिलाषा है, मेरी इस इच्छाको पूर्ण करो।"

भगवान्ने प्रेमके साथ कहा—"भैया, संसारमें कितनी गूढ़ गूढ़ बात है। उन सबको जानो। योग है, सांख्य है, वेदान्त है

कर्मकाण्ड है तथा और भी नाना प्रकारकी विद्यायें हैं, उनका रहस्य पूछो। यह रासका विषय तो अत्यन्त ही गुप्त है औरोंकी तो बात ही क्या ब्रह्मादिदेव भी इसे सुननेके अधिकारी नहीं।"

अर्जुनने गिड़गिड़ाकर कहा—"मैं आपका भक्त हूँ, अनुरक्त हूँ शिष्य और सेवक हूँ, मुझे आप इस रहस्यको अवश्य बतावें।"

भगवान‌ने कहा—"अच्छी बात है, भैया! तेरी इसे जानने की इच्छा है तो यह कहनेका विषय तो है नहीं, मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखा सकता हूँ। प्रथम इसे देखनेके अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त तुम्हें त्रिपुरसुन्दरी देवीकी उपासना करनी होगी। जब उस रसके अनुरूप तुम्हें रूप प्राप्त हो जायगा, तब तुम उस रासके दर्शन कर सकोगे। तुम प्रथम त्रिपुर सुन्दरी देवीकी उपासना करो।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर अर्जुन त्रिपुरसुन्दरी देवीकी उपासना करने लगे। कुछ ही काल में देवी प्रसन्न हुई। प्रकट होकर अर्जुनसे वर माँगनेको कहा। देवीकी विधिवत् पूजा करके अर्जुननेने उनसे रास देखनेकी योग्यताकी याचना की। देवीने उन्हें मन्त्र दीक्षा दी फिर एक दिव्य सरोवरमें स्नान करनेको कहा। उसमें स्नान करते ही अर्जुन पुरुषसे स्त्री बन गये। उनका रूप लावण्य अनुपम तथा अवर्णनीय हो गया। उसका प्राकृत भाषामें वर्णन करना असम्भव है! अर्जुन अपने ऐसे रूपको देखकर परम विस्मित हुए। जिन त्रिपुरसुन्दरी देवीने सरोवर में स्नान करनेकी आज्ञा दी थी वे भी अन्तर्धान हो गयीं थीं। अर्जुनी बने अर्जुन लज्जासे सिर नीचा किये हुए वहाँ खड़ेके खड़े ही रह गये। अपने अग्रिम कर्तव्यका वे निर्णय ही न कर सके। उसी समय उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—"हे गोपी तुम चिंता मत करो। इस मार्गमें जाकर सामनेके सरोवरमें

स्नान करो वहाँ तुम्हारी और भी बहुत-सी संगिनी सखी सहेली हैं।" इतना सुनते ही अर्जुनी देवी उस सरोवरके समीप गयी। उस सरोवरमें ज्यों ही उन्होंने स्नान आचमन किया त्यों ही उसमें से अद्भुत रूप लावण्य युक्त असंख्यों सुन्दरियाँ अपने नूपुरोंको झंकारसे दशों दिशाओंको झंकृत करती हुई वहाँ आयीं। सरोवरके निकट लज्जासे सिर नीचा किये एक अपरिचित ललना को चिन्तामग्न खड़ी देखकर उन सखियोंमेंसे एक प्रियमुदा नाम की सखी मधुरवाणीमें बोली—"हे सुन्दरी! तुम कौन हो किसकी पुत्री और पत्नी हो? तुम इतनी चिंतित क्यों हो रही हो? अपनी चिन्ताका कारण हमसे कहो।"

उसपर अर्जुनी देवीने कहा—"बहिन! मैं किसकी पुत्री हूँ किसकी पत्नी हूँ, इसे स्वयं ही नहीं जानती। इस सरोवरमें स्नान करनेसे मुझे ऐसा रूप प्राप्त हुआ है। यहाँकी एक देवी मुझे जानती हैं। मैं आप सबका परिचय प्राप्त कर सकती हूँ?"

इसपर प्रियमुदाने कहा—"हम सब ब्रजवल्लभको रमण करानेवाली रमणियाँ हैं। हममें कुछ श्रुतिरूपा हैं कुछ ऋषि रूपा हैं कुछ भगवान् के अंगोंसे निकली नित्य परिकर की हैं और कुछ हम आभीर कन्यायें हैं जो कोटि जन्मोंकी भक्तिके द्वारा प्राणवल्लभको प्राप्त हुई हैं। तुमने भी रासविहारीकी कृपा से यह रूप प्राप्त किया है। प्रथम मंत्र के प्रभावसे तुम्हें हमारा साक्षात्कार हुआ है अब तुम इस सरोवर में स्नान करो। फिर तुम्हें सिद्धि मंत्रकी दीक्षा देंगी। उससे तुम्हें सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी तब तुम रासमें हमारे साथ विहार करनेकी अधिकारिणी बन जाओगी।"

अर्जुनी देवीने उनकी आज्ञा स्वीकार की, स्नान करके विधिवत् दीक्षा ली मन्त्र जप किया तसके प्रभावसे उन्हें रासेश्वरी श्री राधाजी के दर्शन हुए। श्रीराधाजीके दर्शन पाते ही अर्जुनी

मूर्छित हो गयी। तब श्रीजीने अपनी एक प्रियंवदा सखीके द्वारा उन्हें अपने समीप बुलाया और उसीसे उन्हें मोहनी मन्त्रकी दीक्षा दिलायी जिसके प्रभावसे वे मोहनके मनको मोहित करने मे समर्थ हो सके। अर्जुनी देवीने यथा विधि उस मन्त्रको किया तब रासरसिकेश्वरने इस नूतन सखीको श्रीराधिकाजी द्वारा अपने समीप बुलाया। श्रीजीकी आज्ञासे अर्जुनी यशोदानन्दनके समीप लायी गयीं। भगवानके अद्भुत रूप लावण्यको देखकर अर्जुनी मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ीं। कुछ काल के अनन्तर जब उनकी मूर्छा भंग हुई, तो उन्होंने सम्मुख एक अत्यन्त ही दिव्य कल्पवृक्ष देखा। जिसके नीचे अमूल्य दिव्य रत्नोंसे बना एक अत्यन्त ही सुन्दर मन्दिर था। उसके चारों ओर उद्यान था, जिसमें मनको लुभानेवाली दिव्यगन्ध आ रही थी। जिसमें खग, मृग, मर्कट, मयूर तथा अन्याय दिव्य सत्व विहार कर रहे थे। उस अनुपम भवनमें प्रियाजीके साथ प्रियतम विराजमान थे। वहाँ राग भोगकी समस्त दिव्य सामग्रियाँ यथा स्थान रखी हुई थीं। समस्त सखियाँ अपनी अपनी सेवामें संलग्न थीं। श्रीजीने श्यामसुन्दरको सखीका परिचय कराया। श्यामसुन्दरने अनुराग भरी दृष्टिसे अर्जुनीकी ओर देखा। भगवान्की दृष्टि पड़ते ही उनका भाव बदल गया। भगवान्ने उनके साथ रास विलास तथा विविध भाँतिकी क्रीड़ायें कीं। रसिकशेखरके साथ क्रीड़ा करते करते अर्जुनी देवी को कुछ श्रम प्रतीत हुआ। तब श्यामसुन्दरने एक शारदा सखी को बुलाकर कहा—"इस सखीको समीप सरोवरके सलिलमें स्नान कराओ जिससे इसका श्रम दूर हो।"

आज्ञा पाते ही शारदा देवी अर्जुनीको उस सरोवरके समीप ले गयी। उसमें ज्यों ही उन्होंने स्नान किया त्यों ही वे अर्जुनीसे अर्जुन हो गये। उन्होंने ज्यों ही इधर उधर दृष्टि डाली कि

उन्हें मन्द मन्द मुसकाराते हुए माधव दिखायी दिये। मदनमोहन माधवको देखकर अर्जुन लज्जित हुए तब इनके हाथको पकड़ कर हँसते हुए श्यामसुन्दर बोले—"अर्जुन तुमने मेरे रासेश्वर रूपके दर्शन कर लिये यह बड़े आनन्दकी बात है यह मेरी अत्यन्त परम गुप्त परम रहस्यमयी लीला है तुम किसीसे भी इस बातको मत कहना। तुम्हें मेरी शपथ है।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी! जैसी कथा आपने हमें श्रीअर्जुनके सम्बन्धकी सुनायी है वैसी ही एक दिन नारद जीने हमें यहाँ आकर अपने सम्बन्धकी सुनायी थी।"

सूतजीने पूछा—"नारदजीने क्या सुनायी थी, भगवान्! कृपया हमें भी उसे बताइये।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! आपके समान कहनेका सरस ढंग तो हमें आता नहीं। संक्षेपमें सुनाते हैं। एक दिन कृपा करके देवर्षि नारद हमारे इस सत्रमें पधारे। हमने पाद्य, अर्घ्य तथा फल फूल भेंट करके उनकी विधिवत् पूजाकी। जब वे हमारी पूजा स्वीकार करके सुख पूर्वक बैठ गये तो हमने उनसे पूछा—"भगवन् इस समय आप कहाँसे पधारे हैं?"

नारदजीने कहा—"मुनियो! इस समय मैं गोलोकसे आ रहा हूँ।"

हमने बड़ी उत्सुकताके साथ कहा—"भगवन्! गोलोकके सम्बन्धमें सुननेकी हमारी बड़ी इच्छा है यदि आप हमें अधिकारी समझते हों तो इस सम्बन्धकी कुछ कथा हमें सुनावें। सुनते हैं वहाँ नित्य वृन्दावन है। भगवान् अपनी सखियोंके सहित वहाँ सदा रास विलास किया करते हैं।"

यह सुनकर वीणापाणि भगवान् नारद बोले—"मुनियो! आपने तो बहुत ही रहस्यमय प्रश्न पूछ डाला। यद्यपि यह बात सबके सम्मुख बताने योग्य नहीं है, फिर भी आप सब कथा प्रेमी

हैं, भगवद्भक्त कृतोपासक हैं आपके सम्मुख मैं इस रहस्यको कहूँगा। मैं मथुराके श्रीकृष्ण तथा द्वारकाके श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें तो जानता था। वृन्दावन और गोकुलकी गोष्ठ-लीलाओंसे भी परिचित था, किन्तु रासेश्वरकी रहस्यमयी निकुंजलीलाके सम्बन्धमें अपरिचित ही था, इसीलिये मैंने अपने पिता लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजीसे इस विषयका प्रश्न किया। मेरे प्रश्नको सुनकर वेदगर्भ भगवान् कमलासन मुझसे बोले—"वत्स! श्रीराधाकृष्णकी वृन्दावनकी लीलायें अत्यन्त ही गोपनीय हैं। मैं भी उनका रहस्य नहीं जानता। तुम महाविष्णुके समीप जाओ, सम्भव है वे कुछ बता सकें।"

मैंने कहा—"महाराज! अकेले यों मुझे जानेमें भय लगता है। आप भी मेरे साथ पधारें।"

"मेरी बात सुनकर मेरे पिता ब्रह्माजी मुझे साथ लिये हुए महाविष्णुके समीप वैकुन्ठलोक में गये।

हम दोनों पिता पुत्रने आकर वैकुन्ठाधिप भगवान् महाविष्णुके पादपद्मोंमें प्रणाम किया। तब पिताजीने मेरी जिज्ञासा महाविष्णु भगवान्के सम्मुख कही। पिताजीकी बात सुनकर हँसते हुए वैकुन्ठाधिपति भगवान् बोले—"वेदगर्भ तुम हमारी आज्ञासे नारदको ले जाकर इस अमृतकुण्डमें स्नान कराओ।"

यह सुनकर भगवान् ब्रह्मा मुझे अमृत कुण्डमें ले गये। ज्यों मैंने उसमें बुड़की लगायी त्यों ही मैं नरसे नारी बन गया। अत्यंत रूप लावण्ययुक्त रमणी बन गया। अब वहाँ न तो वैकुन्ठ था, न महाविष्णुजी और न मेरे पिता ही। नूपुरोंकी झनकारसे आकाश मन्डलको मुखरित करती हुई वहाँ बहुत-सी परमरूप लावण्यवती नवयौवना दिव्य नारियाँ आ गयीं। आते ही वे हमारा परिचय पूछने लगीं। मैं अपना परिचय क्या बताता मुझे याद तो था कि मैं नारद हूँ, किन्तु अपनेको स्त्री वेषमें

देखकर मुझे लज्जा भी आ रही थी और भीतर ही भीतर एक विचित्र प्रकारका आनन्द भी आ रहा था। मैंने कहा—"मैं तो इसे स्वप्न-सा समझ रहा हूँ, मुझे तो यह भी ज्ञात नहीं मैं किस लोकमें हूँ।"

यह सुनकर एक सखी मन्द-मन्द मुसकराती हुई बोली—"यह प्रकृतिसे परे दिव्य गोलोक है। जहाँ तुम हो, यह उसका परम रहस्यमय प्रदेश श्रीवृन्दावन है। हम श्रीकृष्णकी प्यारी सखियाँ हैं। नाम ललिता देवी है। मैं श्रीजीकी प्रिय किंकरी हूँ। तुम मेरे साथ आओ।"

मैं मन्त्रमुग्धकी भाँति श्रीललिता देवीके साथ चला गया। वे सब सखियाँ भी पीछे-पीछे चलीं। आगे एक स्थानमें जाकर श्रीमती ललिता देवीजी विधिपूर्वक हमें स्नानादि कराकर चौदह अक्षरोंवाला भगवान्का मन्त्र दिया। उस मन्त्रानुष्ठानके प्रभावसे मैं तत्क्षण उनके ही समान हो गया। मेरे हृदयमें प्रेमकी हिलोरें मारने लगीं। मन किसीसे मिलनेको छटपटाने लगा। उसी समय हमें श्रीराधाकृष्ण युगलरूपके दर्शन हुए। भगवान्ने स्नेहभरित हृदयसे कहा—"नारदीदेवी! आओ आओ आओ।" यह कहकर भगवानने मुझे आलिङ्गन प्रदान किया। एक वर्ष पर्यन्त वे हमारे साथ केलिक्रीड़ा करते रहे। भगवान्के साथ विहार करनेमें कितना सुख है, वह वर्णनातीत है। उसकी कोई सीमा नहीं, अवधि नहीं, इयत्ता नहीं। अन्तमें भगवान्ने श्रीराधाजीसे कहा—"इस नारदरूपिणी हमारी प्रकृतिसे कहो, इस अमृतसर में स्नान करे।" श्रीराधिकाजीने हमें आज्ञा दी और भगवानने विहारके अन्तमें हमसे भी यही बात कही।

भगवानने कहा—"देखो हमारा ही नाम कृष्ण है हमें ही वासुदेव कहते हैं। हम ही कामकला हैं। हम ही पुरुष हैं हम ही स्त्री हैं। सनातनी स्त्री हम ही हैं। जो हममें हमारी प्रियाओंमें

भेद मानते हैं उन्हें हमारा ज्ञान असम्भव है। तुममें और हममें भी कोई भेदभाव नहीं। जो हमारे इस अभेद संकेतको समझता है वह हमें ललिताके सदृश प्रिय होता है।" इस प्रकार भगवान् ने हमें उपदेश करके अमृतसरमें स्नान करनेकी आज्ञा दी। कृपामयी श्रीराधिका देवी हमें अमृतसरके समीप ले गयीं। हमने उसमें प्रवेश करके ज्यों ही बुड़की लगायी त्यों ही हम फिर नारद के नारद हो गये। वीणा हमारे हाथमें आ गयी और हम उसे बजाते हुए "रामकृष्ण हरि, जय जय रामकृष्ण हरि" की तान छेड़ने लगे। सामने हमें अपने पिता भगवान् ब्रह्माजी, महाविष्णुजी दिखाई दिये (गौएँ दिखायी दीं) सबको प्रणाम करके हम घूमते फिरते यहाँ नैमिषारण्यमें आगये। शौनकजी कह रहे हैं— "सूतजी! सो, जिस प्रकार अर्जुन अर्जुनी हुए थे, उसी प्रकार भगवान नारदजी भी नारदी बने थे।"

सूतजी बोले—"महाराज! आप सब रहस्यकी बातें जानते हैं। नारदजीकी क्या बात है जो भी मधुरभावकी उपासना करेगा, उसे ही गोपी बनना पड़ेगा। बिना गोपी बने कोई रास विलासके दर्शनका अधिकारी ही नहीं बन सकता। मधुर भावमें फिर यह सम्पूर्ण संसार जैसा अब दीख रहा है, वैसा दिखायी ही नहीं देता। सब मधुर ही मधुर दीखता है। लालकी लाली में रँग जानेपर सब लाल ही लाल दिखाई देता है। निरन्तर नन्द किशोर रासरसिकेश्वर की लीलायें हो भाव जगत्में दिखायी देती हैं। उपासक उन्हींमें विभोर बना रहता है। श्रीकृष्ण का विहार नित्य है। उनकी सखियों का रूप, यौवन, सौन्दर्य तथा सौकुमार्य सदा एक-सा बना रहता है। उसमें कभी ह्रास नहीं, उसकी अनुक्षण वृद्धि होती रहती है। ये सब भाव जगत्की बातें हैं। जैसे आँखें घड़ी घड़ी आँखोंको देखकर सुख पाती हैं, वैसे ही मधुर राम में श्रीकृष्णके संगम मिलनसुखका चिंतन करने से परमाह्लाद होता

है। जिनका इस दिव्यातिदिव्य अलौकिक रसमें प्रवेश हो जाता है, वे रात्रि दिन भगवानकी चर्याका ही चिन्तन करते हैं। अब श्रीजीके साथ श्यामसुन्दर यह कर रहे हैं, अब यह कर रहे हैं इन्हीं भावोंमें भावित रहनेके कारण संसारकी सभी बातें भूल जाते हैं। उनकी दृष्टिमें संसार रहता ही नहीं।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान्की लीलाओंका चिन्तन कैसे करें ? भगवान प्रातःकालसे रात्रि पर्यन्त क्या क्या कार्य करते हैं। उनकी दैनन्दिनी चर्याका ज्ञान हो जाय, तभी तो चिन्तन हो सकता है।"

सूतजी बोले—"महाराज ! यह अष्टयाम सेवका विषय इतना गहन है, कि यह सर्वसाधारणके सम्मुख कहा नहीं जाता। यह तो गुरुद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हाँ वैसे मैं जानकारीके लिये भगवानकी दैनन्दिनी लीलाओंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ।

दिव्य वृन्दावनमे दिव्य कल्पवृक्षोंकी दिव्यातिदिव्य परम रम्य सघन छायामें भगवान्की केलि कुंजें हैं। उस सम्पूर्ण वनकी अधिष्ठातृदेवि वृन्दादेवी हैं। उन्हींके नामसे इस वनका नाम वृन्दा वन है। श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका समस्त संसार ये ही वृन्दा-देवी वहन करती हैं। वे वहाँकी प्रधान व्यवस्थापिका हैं। प्यारी और प्रियतमको और तो कोई काम है नहीं। वहाँ ये आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी कंगालोंका तो प्रवेश है ही नहीं। इन सब झंझटोंको महाविष्णु निवटाते हैं। उस वनमें तो एक मात्र गोपियोंका प्रवेश है, जिनके जीवनका एक मात्र लक्ष्य कृष्णको सुख पहुँचाना है, श्रीकृष्ण को अबलायें क्या सुख पहुँचायेगी जी ? ऐसा मत कहो। वे अबलायें उनसे भिन्न नहीं आत्मरूपा हैं। अपनी आत्माके साथ ही रति करनेसे वे आत्मरति और आत्म-क्रीड़ कहाते हैं। वृन्दादेवी लीलाओंकी समय समयपर व्यवस्था

करती रहती है। प्रियाजी के साथ प्रियतम सुखपूर्वक शयन करते हैं। प्रातःकाल भोरमे वृन्दा देवीकी आज्ञासे दिव्य पक्षी अपनी मधुर मधुर वाणीसे दोनोंको जगाते हैं, किन्तु मीठी मीठी नींदमें एक दूसरेके वस्त्रोंको ओढ़े हुए ऐसे आनन्दमे विभोर हो जाते हैं कि उठना ही नहीं चाहते। बारबार अँगड़ाई लेते हैं फिर सो जाते हैं, तनिक मुख खोलते हैं, फिर मूँद लेते हैं।

तब वृन्दादेवी सिखाये हुए शुक सारिकादि मधुर-मधुर बोलनेवाले पक्षियोंको निकुंजमें भेजती हैं, इससे दोनोंकी नींद टूटती है। दोनों ही घरसे निकुंजमें छिपकर बहाना बनाकर आये थे। उठते ही दोनोंको अपनी अपनी माताओंका भय होता है, अतः शैयासे दोनों गलबैयाँ डाले उठकर निकुंजसे बाहर होते हैं। इधर दानोंकी मैया समझती हैं, कि शैयापर सो रहे हैं, अतः वे जाती नहीं। दोनों ही अँधेरेमें आँख बचाकर जाकर अपनी-अपनी शैया पर सो जाते हैं। जब सूर्य निकलने लगता है, तब मैया यशोदा कहती हैं—"अरे कनुआ! दारीके, दिन भर सोता ही रहेगा क्या? अरे, देख तेरे सब साथी उठकर नहा धोकर काजर लगाकर, कलेऊ करके आ भी गये, तू अभी सो ही रहा है। इधर कीर्ति देवी भी उसी प्रकार अपनी लाड़िली ललीको जगाती हैं—"बेटी! राधा! अरी, तू तो बड़ी सुवक्कड़ है। देख तेरी सखियाँ यमुना स्नान भी कर आयी। तू अभी तानदुपट्टा सो ही रही है। ऐसी भी क्या नींद। उठ बेटी! देख, यशोदा रानीका बुलाचा आता होगा यहाँ जाना है।" तब लाड़िलीजी अपने बड़े-बड़े कजरारे नयनोंको मलती हुई उनीदे नयनोंसे चकित चकित निहारती हुई उठती हैं।

इधर श्रीकृष्ण माताके जगानेसे उठकर अति शीघ्र नित्य कर्मोंसे निवृत्त होते हैं, दन्तधावन करते हैं। फिर मैयासे पूछकर बलदेवजीको साथ लेकर खिरकमें जाते हैं, गौओंकी देख रेख

करते हैं, गोबर नहीं उठा होता तो गोबर उठवाते हैं, स्वयं दूध दुहते हैं औरोंसे भी दुहाते हैं।

इधर कीर्ति कुमारी, उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त होती हैं, दन्तधावन मंजन करके कुल्ला करती हैं। तब परिचारिका आकर उनके अंगोंमें सुन्दर सुगन्धित चिकना उबटन लगाती हैं। स्नान वेदीपर ले जाकर विधिवत् सुन्दर स्वच्छ सुगन्धित यमुना जलसे स्नान करानी हैं। श्रीजी अपनी पतली-पतली कमलकी पंखुड़ियोंके सदृश उँगलियोंसे अपने कुटिल केशोंको सुलझाती हुई रेशमी वस्त्र पहिने सखियोंसे घिरी हुई शृङ्गार गृहमें जाती है। वहाँ सखियाँ उन्हें भाँति-भाँतिके आभूषण पहिनाती हैं। नयी गुही हुई सुगन्धित पुष्पोंकी मालायें पहिनाती हैं, उनके भाल पर वेंदी लगाती हैं; कपोलोंपर पत्रावलीको रचना करती हैं। बड़े-बड़े नेत्रोंमें अन्जन लगाती हैं। दिव्य गन्धयुक्त इलायची, कपूर, लोंग जाइफल, पुङ्गीफल आदिसे युक्त पान उन्हें देती हैं। अंगोंमें इतर फुलेल लगाती हैं। चरणोंमें महावर लगाती हैं और नखोंको रँग देती हैं। उसी समय यशोदाजीके यहाँसे सखियाँ राधाजीको भोजन बनाने के लिये बुलानेको आ जाती हैं। तब अपनी माताजीसे आज्ञा लेकर राधिकाजी नन्दभवनमें रसोई बनाने जाती हैं।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा— 'सूतजी! हमने तो सुना था, अभी तक प्रत्यक्ष विवाह नहीं हुआ था। ब्रह्माजीने श्रीराधा और श्रीकृष्णका विवाह कराया था, किन्तु वह एकान्त गुप्त स्थानमें कराया था। उसे किसीने देखा भी नहीं। बिना विवाह हुए रसोई बनानेको यशोदाजी श्रीराधिकाजीको क्यों बुला लेती हैं?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! विवाह न हुआ न सही। सगाई तो हो गयी, सगाई भी कच्ची नहीं पक्की। जहाँ वरने बहूके हाथकी पक्की रसोई पायी, कि सगाई पक्की हो गयी।

पक्की सगाईमें और विवाह् में कोई अन्तर नहीं।"

शौनकजीने कहा—"अच्छा, न सही अन्तर फिर भी रसोई बनानेको तो माता यशोदाजी थीं रोहिणीजी थीं। एकसे एक पुत्र वत्सला थीं, सुन्दरसे सुन्दर रसोई बना सकती थीं। इनके रहते हुए मैया राधाजीको नित्य रसोई बनाने क्यों बुलातीं।"

माथा ठोककर सूतजी बोले—"हे भगवन्! इन रूखे जटाधारी बाबाजियोंसे कभी किसी रसिकका पल्ला न पड़े। मुनियो! तुम लोग तो हो बाबाजी तुम्हें स्वाद फ्वादसे तो कुछ प्रयोजन नहीं। तुलसी डाले जो भी प्रसाद आ गया पा लिया। महाराज! नयी बहूके हाथकी रसोईमें जो स्वाद आता है वह बूढ़ी माताके हाथकी रसोईमें नहीं आता। यशोदा मैया तो सब समझती थीं, उन्हें तो अपने बच्चेको पेट भरके खिलाना था। जिसमें भी उसकी रुचि देखतीं उसे ही बार-बार बनातीं।

एक दिन की बात थी, कि व्रजमें दुर्वासा मुनि आये। सब उन्हें नित्य भोजन करानेको घरसे बना बनाकर ले जाते। मुनि सब प्रसाद ले लेते किन्तु बहुत खानेपर भी उन्हें डकार नहीं आती भूखे ही बने रहते। एक दिन यशोदा मैया भी बहुत सामान बनाकर दुर्वासाजीके लिए ले गयीं। श्रीकृष्णजी भी मैयाके साथ साथ गये। मैया जितना सामान ले गयीं थीं मुनि सबको खा गये, किन्तु न उनकी तृप्ति हुई न डकार आयी। संयोगकी बात कि उसी समय अपनी माताकी आज्ञासे सुवर्णके थाल में भोजन बनाकर माताजीके साथ लिये हुए राधिकाजी भी मुनि के लिये ले आयीं। श्रीराधिकाजीके बनाये हुए अन्नको मुनि बड़ी रुचि से खाने लगे। वे बारबार उस अन्नकी प्रशंसा करते हुए पेटपर हाथ फिराने लगे। भोजन करके उन्होंने लम्बी डकार ली और अत्यन्त स्नेहसे श्रीराधिकाजीको समीप बुलाकर कहा— "तुम्हारी रसोई अति उत्तम बनी। आजसे मैं तुम्हें आशीर्वाद

देता हूँ, कि तुम अपने हाथसे जो भी बनाओगी वही अमृतके समान मीठा और परम स्वादिष्ट बनेगा। तुम्हारे हाथका बना अन्न जो खा लेगा उसकी परमायु होगी।"

मैया यशोदा तो यह चाहतीं थीं, मेरे बच्चेकी आयु बढ़े। उन्होंने तुरन्त कीर्तिरानी से कहा—"रानी! मुनि तो सर्वज्ञ हैं, इनका कोई भी वचन मिथ्या नहीं हो सकता। तुम्हारी बच्ची का बनाया भोजन अवश्य ही अमृत तुल्य होगा, उससे खानेवाले की आयु बढ़ेगी। कृपा करके कल अपनी पुत्रीको मेरे घर भेज दें। यह बनावेगी तो कनुआकी भी आयु बड़ी हो जायगी।"

अत्यन्त ममता भरी वाणीमें कीर्तिरानी बोलीं—"रानीजी! आप कैसी बातें कर रही हैं। हम तो अपनी लड़कीको मनसे आपको दे ही चुकीं। इसे आपके ही घरमें रहना है। कल क्या नित्य ही यह बनाने आजाया करेगी।"

यह सुनकर यशोदा मैया प्रसन्न हुईं। सब अपने अपने घर चली गयीं। दूसरे दिन राधिकाजीको वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सजाबजाकर कीर्तिरानीने नन्दभवनमें भेज दिया। राधिकाजीने अपने हाथसे रसोई बनायी। आज जाने श्यामसुन्दर को कहाँसे इतनी भूख लग गयी, कि उनकी तृप्ति ही नहीं होती। बारबार पदार्थोंकी प्रशंसा करते। कटोरा भरवा लेते और सबको सपोट जाते फिर खालीका खाली हो जाता। माताके हर्षका ठिकाना नहीं था। माता चाहतीं हैं मेरा बच्चा अधिकसे अधिक खाय, रुचिपूर्वक खाय और वह भोजन उसके स्वास्थ्यके लिये हितकर हो।"

श्यामसुन्दरपर भोजन करते-करते नवयौवन-सा आने लगा। उनका मुखकमल परम प्रफुल्लित हो उठा। चूड़ियोंकी झनकारके साथ राधाजी जब रोटीको थालीमें डालतीं तो श्यामसुन्दरका मन मयूर नृत्य करने लगता। उनकी हृत्तंत्रीके तार अपने आप ही

झंकृत हो उठते। दूसरी रोटी आते आते उसे चट्ट कर जाते। माताने सोचा—"यह लड़की नित्य भोजन बनाने आ जाया करे, तब तो मेरे लालाका स्वास्थ्य कुछ ही दिनोंमें सुन्दर हो जाय।" उन्होंने कीर्तिरानीके सन्मुख अपना प्रस्ताव रखा। उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया अपने तथा श्रीराधाके भाग्यकी सराहना की। उसी दिनसे सखियोंको भेजकर माताजी नित्य ही श्रीराधाजीको बुलातीं और उन्हींसे श्यामसुन्दरके लिये रसोई बनवातीं।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी! तो आप दामोदरकी दैनन्दिनी लीलाका ही वर्णन करें। इधर उधरके प्रसंगोंको छोड़ें।"

सूतजीने चौंककर कहा—"महाराज! मैं तो इधर उधरकी बातें करता ही नहीं। भगवान्‌की दैनन्दिनी लीलाका ही तो वर्णन कर रहा हूँ, यह तो प्रसङ्गवश आपके पूछनेपर मैंने कथा कह दी।

हाँ, तो इधर श्रीराधिकाजी तो हाथ पैर धोकर रेशमी पटुका पहिनकर रसोई घरमें प्रवेश करती हैं श्यामसुन्दर तबतक गौओंको दुहलाते हैं, फिर तेल उबटन लगाकर सखाओंके साथ यमुनाजीमें स्नान करते हैं। कनखियोंमें वे देख लेते हैं, कि सजी बजी राधिकाजी भी आ गयीं हैं। उन्हें सजी बजी देखकर स्वयं भी वे अपना शृंगार करते है अंगोंमें सुगन्धित केशर कस्तूरीयुत चन्दन लगवाते हैं, काली काली कुटिल केशोंको झाड़कर उन्हें आकर्षक बनाते हैं। मस्तकपर चन्दनका तिलक लगाते हैं। बार बार दर्पणमें अपना मुख देखते हैं। कंकण, बाजूबन्द, अँगूठी मोतियोंकी माला तथा वनमाला आदिको धारण करते हैं। माताजी वहीं से चिल्लाती हैं—"कनुआ! आ भैया! नारायणका भोग लग गया, प्रसाद पा ले।"

आप अनसुनी कर जाते हैं। मैया बारबार बुलाती हैं। तब

आप बड़े नखरेसे जाते हैं। श्यामसुन्दर अकेले खाना तो सीखे ही नहीं, किन्तु बलदेवजीके साथ भोजन नहीं करते। उनके सम्मुख गुम्मसुम्म संकोचके साथ भोजन करना पड़ेगा, इसलिये जब वे भोजन करने जाते हैं, तो समवयस्क गोपोंके साथ आप भोजन करने बैठते हैं। भोजन करते समय स्वयं हँसते हैं सबको हँसाते एक एक व्यंजनको लेकर उसकी प्रशंसाके पुल बाँध देते हैं। कहते हैं किसीसे, हृदय प्रफुल्लित होता है किसीका। इस प्रकार बहुत देरतक हँसी विनोदके साथ भोजन होता है। भोजनोपरान्त कुछ देर शरीरसे श्यामसुन्दर विश्राम करते हैं। मन कहीं अन्यत्र अटका रहता है। सेवकोंके दिये ताम्बूल चबाते हैं. फिर गोपवेश धारण करके गौओंको खोलकर बनमें चराने ले जाते हैं।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! इतनी देर तक गौएँ भूखी ही बँधी रहती हैं।"

सूतजी बोले—"अजी" महाराज नन्दजीके यहाँ कुछ कमी थोड़े ही है। उनके यहाँ १००, ५० गौएँ तो हैं नहीं। नौ लाख गौएँ हैं। सबको तो प्रातःकाल सेवक ले जाते हैं। कुछ चुनी हुई गौओंको लेकर वनविहारके निमित्त व्रजविहारी जाते हैं। माता पिता बहुत मना करते हैं, हमारे इतने सेवक हैं, तुम्हें गौ चरानेके लिये वन जानेकी क्या आवश्यकता है?" किन्तु ये मानते ही नहीं। कहते हैं—"गोपकुमार होकर जो स्वयं गौओं को नहीं चराता, वह धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये धर्म समझकर जाते हैं। गौओंको चराना तो उपलक्षण मात्र है। वास्तवमें तो उन्हें वनविहारकी चटपटी लगी रहती है। माता-पिता को नमस्कार करके गौओंको आगे करके वनमें सखाओं के सहित जाते हैं। कुछ काल पर्यन्त सखाओंके साथ कबड्डी गुल्ली डंडा आदि खेल खेलते हैं, फिर दो चार अंतरङ्ग सखाओंको

साथ लेकर संकेतकी ओर प्यारीजोसे मिलने चल देते हैं।

इधर प्यारीजी श्यामसुन्दरके प्रसाद पा लेनेके अनन्तर यशोदा मैयाके आग्रहसे मदनमोहनके थालमेंसे कुछ प्रसादी वस्तु लेकर पा लेती हैं और तुरन्त अपने घरको चली आती हैं। घरमें उनका मन लगता नहीं। इधर उधरकी बातोंमें समय बिताती हैं, फिर मैयासे कहती हैं—"अम्मा मैं सूर्यनारायणकी पूजाके लिये फूल चुन लाऊँ। गुजरियोंको भी देखती आऊँगी, वे दधि बेचकर लौटीं या नहीं।"

माता कहती हैं—"बेटी! तुझे दही दूधकी क्या चिन्ता। भगवानका दिया हमारे यहाँ बहुत है, काम करनेको इतने दासी दास हैं। नौकरोंसे पुष्प मँगा ले। बाहर क्यों जायगी। घरमें ही सहेलियोंके साथ खेल।"

वृषभानुकुमारी कहती हैं—"नहीं, मैया! गोप-कुमारी होकर गोरसकी चिन्ता न करना अपने धर्मसे च्युत होना है। देवता की पूजाके लिये स्वयं ही पुष्प तुलसी तोड़कर लानी चाहिये। स्वयं ही मन्दिरको झाड़ना चाहिये।"

धर्मके सम्मुख माता क्या कहतीं। सखियोंको साथ लिये हुए कीर्ति कुमारी संकेतकी ओर बड़ी उत्सुकतासे जाती हैं, इधर अत्यन्त उत्सुकतासे श्यामसुन्दर भी उनकी बाट जोहते रहते हैं। नूपुरों और चूड़ियोंकी झनझनाहट सुनकर मदन-मोहनका मन मुकुर खिल जाता है वे उठकर प्रियाजी से मिलते हैं। फिर समयानुसार क्रीड़ायें होती हैं। यदि वसन्त होता है, तो आमकी मंजरियोंसे कामदेवकी पूजा करते हैं। अत्यन्त ग्रीष्मऋतु में शीतल केशर कपूरयुक्त चन्दन परस्परमें एक दूसरे के अंगोंमें मलते हैं। वर्षामें एक दूसरेको झूलेपर झूलाते हैं। दोनोंको एक हिंडोलेपर बिठाकर गोपियाँ हिंडोले गाती हुई झोटा देती हैं। आपसमें दोनों साथ साथ झूलते हैं। शार-

कार्तिकमें सांझीकी रचना करते हैं सांझी गाते हैं नाना प्रकार के वन्यपुष्पोंसे चित्रविचित्र रंगके खेल बनाते हैं। अगहन पौषमें और भी वनकी भाँति भाँतिकी क्रीड़ायें करते हैं। फागुनमें होलीका हुरंगी होता है। दोनों ओरसे पिचकारियाँ छूटती हैं। रंग गुलाल, अबीर लेकर परस्पर एक दूसरेके मुखपर मलते हैं। रंगमें सराबोर कर देते हैं। मीठी मीठी मार भी गोपोंपर पड़ती है। सखियोंके कोमल करोंके गुलचे गुलाब-जामुनसे भी अधिक मीठे लगते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंकी भिन्न भिन्न क्रीड़ायें होती हैं। दोनों मिलकर प्रेमरस का पान करते हैं। पीते पीते अघाते नहीं। अंग लड़खड़ाने लगते हैं प्रियाजी निकुञ्जों में प्रवेश कर जाती हैं। तब सखाओंको छोड़ कर सखियोंके बुलानेपर श्याम अकेले जाते हैं। सखियाँ दोनोंकी सेवा करती हैं। उनके लिये, समयोचित पुष्प शैयाकी रचना करती हैं, कोई पान खिलाती हैं, कोई पंखा झुलाती हैं कोई चरण दबाती हैं इस प्रकार गोपीजनवल्लभ· उन सबकी प्रियाके सहित सभी सेवाओंको स्वीकार करते हैं। हृदयमें अनुरागकी हिलोरें उठने लगती हैं। क्षण क्षणपर सभी दिव्य सात्विक विकार उत्पन्न होते हैं। निकुंजमें श्याम शैयापर उनीं से हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध की बातें सुननेके लोभसे वे झूठ मूठ सोनेका अभिनय करते हैं। तब सखियाँ भाँति भाँति की हँसी करती हैं। विचित्र प्रकारके विनोद होते हैं। तब श्याम सुन्दर नेत्र मलते हुए उठते हैं। शैयासे उठकर हाथ पैर धोकर आसनपर बैठते हैं। फिर चौपर होती है। उसमें पण लगता है। पण रुपये पैसका नहीं। पण लगता है प्रेमचिन्हाङ्कित करनेका। श्यामसुन्दर यदि ऐंगठ करते हैं तो प्यारीजी प्रेमके रोपमें भर कर उनके मुखपर एक चपत जड़ देती हैं उसे वे बड़ी भाग्य समझते हैं। उसे ही पानेके लिये नटखटपना करते हैं।

मारपीट में कुछ तनातनी कुछ रूठारूठी भी हो जाती है। उसी समय कलरव करते हुए विहगवृन्द इधरसे उधर जाते हुए दिखाई देते हैं। तब समझते हैं अब भगवान भुवन भास्कर अस्ताचल को प्रस्थानकर पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये अतः जो माताके भय से भयभीत सी हो जाती हैं। वे शीघ्रताके साथ निकुञ्जसे निकलना चाहती हैं। श्यामसुन्दरको भी सखाओंकी खरी खोटी सुननी पड़ती है, माता तनिक भी देर होनेपर प्रश्नोंकी झड़ियाँ लगा देती हैं। उन सब प्रश्नोंके कृत्रिम उत्तर सोचने पड़ते हैं। इसी भयसे श्यामसुन्दर भी प्यारीजीको विदा करके गोपों के समीप आते हैं। गोप भाँति भाँतिके ताने मारते हैं, श्यामसुन्दर सबकी बातें हँसते हँसते सहते हैं।

इधर श्रीजी सखियोंके साथ फूल लेकर घर गयीं और मैया से आज्ञा लेकर सूर्यनारायणके मन्दिर में पूजा करने आयीं। श्याम सुन्दरको कल कहाँ वे भी ब्राह्मण वेष बनकर सूर्यमन्दिर में पहुँच जाते हैं। या कभी लुगाई बन जाते हैं। वहाँ सखियाँ और श्रीजीके साथ सूर्यदेवका पूजन करते हैं। जब गोधूलिकी वेला हो जाती है तो गोपियाँ अपने अपने घरोंको प्रस्थान कर जाती हैं और श्यामसुन्दर गौओंके समीप आ जाते हैं अति शीघ्रताके साथ वे गौओंको एकत्रित करते हैं फिर सबको आगे करके मुरली बजाते हुए गोष्ठकी ओर चल जाते हैं। मुरलीकी ध्वनि सुनकर सभी व्रजवासी समझ जाते हैं, कि व्रजचन्द्र वनसे गौएँ चराकर आरहे हैं, सभी आबाल वृद्ध बड़ी उत्सुकतासे भगवानके दर्शनके निमित्त अपने अपने द्वारों पर खड़े हो जाते हैं। गोपिकायें अनुराग भरी दृष्टिसे उठकर प्रणयकटाक्ष छोड़ती हुई उनका स्वागत करती हैं। श्रीकृष्णजी का समस्त श्रीअंग तो धूलिसे धूसरित होता है। अलकों पर पलकोंपर कपोलोंकी झलकोंपर धूलिके कण बड़े ही भले

मालूम होते हैं। गौओंके खुरोंकी उठी धूलिसे आकाश भर जाता है। उसीके बीचमें ग्वाल बालोंसे घिरे मुरली बजाते हुए मुरलीधर सभोंको दर्शन देते हैं।

बड़े बूढ़े ब्राह्मणों और पूज्योंको देखकर नमस्कार करते हैं, पैर छूते हैं, किसीको हाथ जोड़ देते हैं, किसीको गले लगा देते हैं। छोटे छोटे बच्चे दौड़कर आजाते हैं उनका मुख चूमते हैं। गोपिकाओंको नेत्रोंके संकेतसे केवल उनकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखकर—ही अभिनन्दन करते हैं। प्यारीजीकी दृष्टि बचाकर चुपकेसे निहार लेते हैं। दोनोंकी दृष्टि मिलते ही बहुत-सी बातें हो जाती हैं। गोशालाके द्वारपर खड़ी हुई माताओंके पैरों पड़ते हैं, माताएँ उन्हें अनुराग सहित उठाकर छातीसे चिपटा लेती हैं, उनके स्तनोंसे अपने आप दुग्ध चूने लगता है, जिससे श्यामसुन्दरका पीतपट भींग जाता है। गौशालामे गौएँ चली जाती हैं। उन्हें बाँधकर तब आप भाई और ग्वालबालों सहित घर जाते हैं। जाकर ऋतुओंके अनुसार शीतल, उष्ण अथवा शीतोष्ण जलसे स्नान करते हैं। माताएँ तुरन्त जलपान लाती हैं। आप कुछ जलपान करते हैं, फिर माता पितासे पूँछकर उनके साथ दुहनी लेकर गौओंको दुहने गौशालामें जाते हैं। वहाँ जाकर बहुत-सी गौओंको स्वयं दुहते हैं, बहुतोंको दूसरेसे दुहाते हैं। बहुतोंके बछड़ोंको ही सब दूध पिला देते हैं। इस प्रकार सब गौओंको दुहकर, बछड़ाओंको पिलाकर, पिता माता तथा सेवकों से घिरकर, दूधके सहस्रों मटकोंको लिवाये हुए घरमें आते हैं। आकर सब चाचा, ताऊ, भाई बन्धु तथा सगे सम्बन्धी बैठकर इधर उधरकी बातें करते हैं। जाड़ोंमें सब मिलकर अग्नि जलाकर तापते हैं। गौओंकी व्रजकी बातें होती हैं। उसी समय घरसे भोजनका बुलावा आ जाता है। सबके साथ बैठकर रात्रिकी ब्यालू होती है। रात्रिमें कच्ची रसोई तो बनती नहीं। पूरी

पगामठे, साग भाजी, मठरी, मोहनभोग, खड़ी तथा और भी भाँति भाँतिके रसीले, चटपटे नमकीन तथा सौंधे पदार्थ बनते हैं।

शौनकजी पूछा—"सूतजी ! इस समय राधाजी रसोई बनाने नहीं आतीं ?"

सूतजी बोले—"नहीं, महाराज ! रात्रिमें भला कैसे आ सकती हैं। हाँ, अपने घरसे ही बहुतसे व्यंजन बना बनाकर—थाल सजा सजाकर—सखियोंके हाथों नित्य ही श्यामसुन्दरके भोजनके पूर्व भेज देती हैं। श्यामसुन्दर उनकी सराहना करते हुए सबके साथ उन पदार्थोंको पाते हैं। कोई ससुरालकी बात कहकर चिढ़ाते है, तो आप लज्जित हो जाते हैं।

जब भगवान् व्यालू कर लेते हैं, तो मैया यशोदाजी भाँति-भाँतिके पक्वान्न उन लानेवाली सखियोंके हाथों राधाजीके लिये भेजती हैं और श्रीकृष्णके थालके उच्छिष्ट प्रसादी अन्नको भी भेजती हैं। प्रसादी पदार्थोंके आजानेपर श्रीराधाजी अपनी मैयाके कहनेसे प्रसाद पाती हैं और शैयापर जाकर सोनेका अभिनय करती हैं। घरके सभी लोग सो जाते हैं किन्तु प्यारी-जीके नयनोंमें तो श्यामसुन्दरने घर कर लिया है। छोटेसे घरमें कोई मुरली लेकर बैठ जाय, तो वहाँ निद्रा कैसे रह सकती है। वे नेत्र बन्द तो कर लेती हैं। दूसरे समझते हैं सो रही हैं, किन्तु वे नयनोंमें बैठे नन्दलालसे बातें करती रहती हैं।

इधर श्यामसुन्दर भी शयनगृहमें जाकर खुर्राटे भरने लगते हैं। सब लोग समझते हैं, दिनभर गौएँ चरायी है, वन वन भटकता फिरा है थककर सो गया है; अब कोई बातें मत करो सब सो जाओ। गोप भी सब चुप हो जाते हैं और निद्रा देवीके अधीन हो जाते हैं।

तब आप चुपकेसे उठते हैं। वृन्दावनकी अधिष्ठात्र देवी वृन्दा

पहिलेसे ही केलिक्रीड़ाकी सभी तैयारियाँ किये रहती हैं। अपनी एक गुप्त सखी श्रीजीके समीप भेजती हैं। यदि अँधेरी रात्रि होती है, तो काला वस्त्र ओढ़कर और यदि उजियाली रात्रि होती है तो चाँदनीके समान स्वच्छ सफेद वस्त्र पहिनकर श्रीजी आती हैं। सखियाँ भी आती हैं। इधर श्यामसुन्दर भी आते हैं। दोनों का मिलाप होता है। फिर संगीत होता है। गाना बजाना तथा नृत्य सभी होता है। इस प्रकार अर्धरात्रि हो जाती है। तब दोनोंके नेत्रोंमें निद्राके डोरे दिखायी देने लगते हैं। झपकियाँ लेने लगते हैं। तब सखियाँ उन दोनोंको निभृत निकुंजोंमें पहुँचा देती हैं। वहाँ दोनों सुखपूर्वक शयन करते हैं वहाँ तो किसीका प्रवेश नहीं अतः वहाँकी लीलावर्णनातीत है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने आपके पूछनेपर भगवान्‌की दैनन्दिनी लीलाका वर्णन किया, इसे जो श्रद्धा सहित सुनते हैं, उनका भी कल्याण होता है। यह अति रहस्यमय प्रसंग है। इसे जिस किसीके समीप प्रकट न करना चाहिये। जैसे कुलीन विधवायें अपने गर्भको छिपाकर रखती हैं इसी प्रकार इस प्रसंगको छिपाकर रखना चाहिये। क्योंकि जिनको श्रद्धा नहीं वे तो इससे कुछ लाभ उठा नहीं सकते और जिनका मधुररसमें प्रवेश नहीं वे उस गहन विषयको धारण नहीं कर सकते। उनकी बुद्धिमें यह विषय बैठेगा नहीं; अतः अधिकारी के ही सम्मुख इसे प्रकट करना चाहिए।"

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी ! हम इसपर अश्रद्धा तो करते नहीं। भगवान् सर्वसमर्थ हैं, जो चाहें कर सकते हैं। किन्तु हम पूछते यह हैं, कि भगवान्‌ने ऐसी अत्यन्त मधुर रसीली लीलायें की ही क्यों ? आप कहते हैं वे स्वतन्त्र हैं, जो चाहें सो कर सकते हैं, उनके लिये कोई विधि निषेध नहीं, मर्यादा नहीं। न हो मर्यादा, फिर भी हमलोग तो संसारी जीव हैं।

समस्त स्त्रियोंकी समस्त पुरुषोंकी परस्परमें वैसे ही स्वाभाविक रति होती है। पुरुषका स्त्रीमें और स्त्रीका पुरुषमें स्वतःही आकर्षण होता है। मिथुन धर्मसे ही तो संसार चल रहा है। सृष्टिमें से स्त्रीको निकाल दिया जाय, तो सृष्टि चले ही नहीं। प्रत्येक बीजमें, फलमें, फूलमें, पशु पत्ती तथा कीट पतंगोंमें स्त्री पुरुषका भेद भाव होता है। ऐसा कोई विरला ही होगा जो स्त्री रूपी मायाके चक्करमें न फँसा हो, नहीं तो कोई भी क्यों न हो सभीका चित्त चंचल हो जाता है। उसीकी भगवान्ने भी पुष्टि की, तब तो हम सदा विषयोंमें ही फँसे रहेंगे, कभी हमारा उद्धार ही न होगा। हम भगवान्‌की इन लीलाओंसे क्या शिक्षा ग्रहण करें ?"

सूतजी बोले—"देखिये महाराज! भगवानने शिक्षा देनेको तो ये लीलायें की नहीं। वे तो इन लीलाओंको निरन्तर करते ही रहते हैं। बिना किये रह ही नहीं सकते। क्या संसारी लोग जानते नहीं कि ये संसारी सुख क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, फिर भी इनमें इतनी आसक्ति हो गयी है, कि छोड़ना चाहें तो भी नहीं छोड़ सकते। क्योंकि सभी प्राणी मायामोहित हैं। मोहमयी मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो रहे हैं। जैसे यह जगमोहिनी माया है वैसे ही एक मोहनमयी माया है। जो इस जगमोहिनी मायाको छोड़कर मोहनमोहिनी मायाकी शरण लेगा उसे नित्य सुखकी प्राप्ति होगी। संसारी सुख अनित्य है, नाशवान है, परिणाममें दुखद है। मोहनमोहिनी मायाका सुख शाश्वत है, नित्य है, अविनाशी है; अतः इन चरित्रोंसे यही सीखना है कि अनित्यको छोड़ो नित्यको पकड़ो। जगमोहिनी मायासे नाता तोड़ो मोहनमोहिनी मायासे सम्बन्ध जोड़ो। संसारी रासविलास में चित्तको मत फँसाओ। दिव्य रासमें मनको जमाओ। संसार राधामाधवकी क्रीड़ास्थली है। वृन्दावन धाममें आसक्ति हो,

युगल नाममें अनुरक्ति हो। श्यामसुन्दरके मनोहर रूपमें चित्त का खिंचाव हो और उनकी मधुररासकी सरस लीलाओंमें ही सदा मन रमा रहे। यही जीवनका चरम लक्ष्य है, यही परम-साधन है, यही प्राप्य स्थान है, यही पराकाष्ठा है यही परागति है। भगवन्! श्रीकृष्णलीलाका रहस्य समझना अत्यन्त गूढ़ है। मूढ़ लोग तो इसमें व्यभिचार तककी कल्पना करते हैं। वे तो कहते हैं, श्रीकृष्णने यह अधर्म किया। औरोंकी बात तो छोड़ दो, परम भगवद् भक्त राजर्षि परीक्षितको भी ऐसा शङ्का हो गयी? जिसका मेरे गुरुदेवने समाधान किया।"

यह सुनकर अत्यन्त आश्चय प्रकट करते हुए शौनकजी बोले—"सूतजी! परम भागवत महारज परीक्षित्‌का श्रीकृष्ण की दिव्यलीलाओंमे शङ्का कैसे हुई? वे तो ब्रह्मरात थे परम भागवत और प्रभुकृपाप्राप्त थे।"

सूतजी सरलताके साथ बोले—"अजी, महाराज! उन्हें क्या शङ्का होनी थी। उन्होंने तो लोककल्याणके निमित्त शङ्का की थी। जैसे आप सब कुछ जानते हुए भी लोगोंके हितके निमित्त शङ्का किया करते हैं, वैसी ही शङ्का महाराज परीक्षित्‌की भी थी। जिस समय भगवान् शुकदेव उन्हें कथा सुना रहे थे, उस समय ऋषि मुनियोंका बड़ा भारी समाज लगा हुआ था। उसमें ज्ञानी, ध्यानी, कर्मकाण्डी, उपासक, योगी तथा विविध साधन करनेवाले एकत्रित थे। राजाने सोचा—"यदि मैं शङ्का नहीं करता, तो लोग श्रीकृष्ण के इस दिव्य चरित्रमें व्यभिचार-का आरोप करेंगे; अतः अपनी ओरसे तो इसका समाधान करा ही दो। जो व्यभिचारी हैं, वे तो श्रीकृष्ण इस लीलाको न भी करते तो भी न मानते। वे तो अपने पापको सिद्ध करनेको भगवान्‌की आड़ लेते हैं, इसीलिये महाराजका प्रश्न अपना निजी नहीं था, पञ्चायती प्रश्न था।"

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी! महाराज परीक्षित्जीने रासलीलाके सम्बन्धमें कौन कौन-सी शङ्कायें कीं और श्रीशुकदेवजीने उनका किस प्रकार समाधान किया? कृपा करके इस प्रसंगको आप हमें अवश्य सुनावें, जिससे हमारी भी शङ्काओंका समाधान हो जाय।"

हँसकर सूतजीने कहा—"अजी, महाराज! शङ्का हो, तभी तो समाधान होगा। आपको तो शङ्का ही नहीं। आप सब रहस्यको जानते हैं। नारदजीसे आपने इस रसकी विधिवत् दीक्षा प्राप्त की है, फिर भी आपकी आज्ञासे महाराज परीक्षित्की शङ्का और श्रीशुकदेवजी द्वारा किया हुआ उसका समाधान मैं आप सबको सुनाता हूँ, आप समाहित चित्तसे श्रवण करनेकी कृपा करें।"

छप्पय

हरि सँग रास विलास करयो पुनि रससर न्हाये।
तुरत अर्जुनी रूप तज्यो प्रभु ढिँग पुनि आये॥
यों हरि कीन्हीं कृपा पार्थकूँ रास दिखायो।
नारद हू बनि सखी मनोवांछित फल पायो॥
समुझि सकें नहिँ नीच नर, रास-रहस अति गूढ़ हैं।
हरिलीला प्राकृत कहत, ते नर पापी मूढ़ हैं॥

महाराज परीक्षित्‌की राससम्बन्धी शङ्कायें

(१००१)

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

सुनी रासकी कथा परीक्षित् शंका कीन्हीं ।
गुरुवर ! हरि करि रास नरनि का शिक्षा दीन्हीं ?
परनारी संस्पर्श पाप सब शास्त्र बतावें ।
थापन करिबे धर्म अवनिपै अच्युत आवें ॥
क्यौं अधर्म कारज कर्यो, रक्षक ह्वैकें धर्मके ।
परनारिनितें रति करी, साक्षी ह्वैकें कर्मके ॥

भरतजी जब अपने पिताके और्ध्वदैहिक कृत्य करके वनसे श्रीरामचन्द्रजीको लौटाने सेनासहित चित्रकूटकी ओर चले और शृंगवेरपुरके समीप आये, तब निषादोंके राजा गुहको

* महाराज परीक्षित् रास लीलापर शंका करते हुए श्रीशुकदेवजीसे पूछ रहे हैं—"भगवन् ! यदुपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो आप्तकाम हैं, फिर उन्होंने परदाराभिमर्शन रूप निन्दनीय कार्य किया ही क्यों ? इसका अभिप्राय क्या है ? हे सुव्रत ! आप हमारा यह संदेह दूर कीजिये।"

संदेह हुआ, कि भरत कहीं श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ाई करने तो नहीं जा रहे हैं। भरतजी कभी स्वप्नमें भी श्रीरामचन्द्रजीका अनिष्ठ नहीं सोच सकते, किन्तु प्रभुता पाकर मद हो जाना स्वाभाविक है। पीछे गुहको यथार्थ बात ज्ञात हो गयी, तो उसका संदेह दूर हो गया। गुहका सन्देह तो दूर हो गया, किन्तु सन्देहके लिये स्थान तो बना ही रहा। भाईको मनाने जा रहे हैं, तो इतनी बड़ी सेनाकी क्या आवश्यकता है ? सेना लेकर तो किसीपर चढ़ाई की जाती है। राज्यके लोभसे भाई भाईकी हत्या कर ही देते हैं। अपने राज्य सुखमें अपना पिता, भाई, सगा सम्बन्धी जो भी कंटक समझा जाता है, राज्यके लोभी भूपति उसे मार देनेमें आगा पीछा नहीं करते। इसीलिये प्रत्येकको यह सन्देह हो सकता है। गुह तो मल्लाहोंका एक छोटा राजा था उसे सन्देह हुआ दूर हो गया। उससे कुछ विशेष अनिष्टकी भी सम्भावना नहीं थी, किन्तु दूसरे अन्य राजाओंको यह सन्देह हो जाय और वे सब मिलकर भरतजीपर चढ़ाई कर देते, तो बीचमें अनर्थ हो जाता। सन्देहपर ही बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं; अतः इस विषयका सार्वजनिक स्पष्टीकरण आवश्यक था।

शृंगवेरपुरसे पार होकर भरतजी ससैन्य तीर्थराज प्रयागमें भगवान् भरद्वाजजीके आश्रमपर आये। वह आश्रम एककी सम्पत्ति नहीं थी, सार्वजनिक स्थान था। बड़े बड़े राजे महाराजे आकर अपने घरकी भाँति उसमें सुखपूर्वक रहते, दरिद्रसे दरिद्र अकिंचनसे अकिंचन बिना संकोच ऋषिके आतिथ्यको ग्रहण करते। चारों दिशाओंमें घूमनेवाले ऋषियोंके ठहरने का यह केन्द्र था। इतने महान् तीर्थराजमें आकर जो भरद्वाज मुनिके आश्रममें न गया, उसकी यात्रा अधूरी ही समझी जाती थी। प्रयागमें पहुँचकर भरद्वाज मुनिके आश्रममें सबको जाना ही चाहिये। मुनि अपने तप, तेज, सदाचार और समताके कारण

दूसरे ब्रह्माके ही समान थे। शापानुग्रहमें समर्थ थे। सभी उनसे आशीर्वाद लेने आते थे। सर्वप्रथम भरतजी भी नियमानुसार मुनिके दर्शनोंको गये। पहुँचते ही मुनिने कहा—"भरत तुम इतनी भारी सेना लेकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप क्यों जा रहे हो? तुम्हारा कुछ दुष्ट विचार तो नहीं है, तुम श्रीरामचन्द्रजीका अनिष्ट करना तो नहीं चाहते?"

सर्वज्ञ मुनिके मुखसे ऐसा प्रश्न सुनकर भरतजी तो सन्न हो गये। उनके नेत्रोंसे झर झर अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे रोते रोते बोले—"प्रभो! आप सर्वज्ञ होकर भी मुझसे ऐसा प्रश्न कर रहे हैं? नाथ! मैं कभी स्वप्नमें भी—मनसे भी—श्रीरामचन्द्रजीके अनिष्टकी बात सोच सकता हूँ क्या? कोई मूर्ख अज्ञ ऐसी शङ्का करे, तो उपेक्षणीय कही जा सकती है, किन्तु आप त्रिकालज्ञ हैं, सबकी घटघटकी जाननेवाले हैं। आप शङ्का करते हैं, तो मैं समझता हूँ मैं अवश्य ही पापी हूँ। मेरे मनमें अवश्य ही कोई दूषित भावना होगी।"

यह सुनकर भगवान भरद्वाज हँस पड़े और बोले—"भरत! न तो तुम्हारे मनमें कभी स्वप्नमें भी श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें बुरा हो सकता है और न कभी मुझे ही तुम्हारे विषयमें शङ्का हो सकती है। सूर्य चाहे पश्चिममें उदय होने लगे। चन्द्रमा चाहे विष उगलने लगे किन्तु तुम्हारे मनमें श्रीरामके प्रति कभी अन्यथा भाव उदय नहीं हो सकता। मैं तो योगप्रभावसे सबके मनके भावोंको जान सकता हूँ। यह शङ्का मैंने अपनी ओरसे नहीं की। सर्वसाधारण लोगोंको यह शङ्का हो सकती है! मेरे प्रश्न करनेपर आप वक्तव्य देंगे ही। मेरे आश्रममें वक्तव्य देनेसे यह तुरन्त दशों दिशाओंमें प्रकाशित हो जायगा, सब तुम्हारे स्नेहकी सराहना करेंगे, तुम्हारे प्रति श्रद्धा प्रकट करेंगे, इसी अभिप्रायसे—तुम्हें निर्दोष सिद्ध करनेके निमित्त—मैंने यह

प्रश्न किया था। यह शङ्का मेरी अपनी नहीं थी। जनसाधारण की शङ्का थी, उसका स्पष्टीकरण आवश्यक था, इसीलिये मैंने यह प्रश्न किया।"

इस प्रसंगको कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि बड़े लोग जो शङ्का करते हैं वह जनताका प्रतिनिधित्व करते हुए—सर्वसाधारणके भावोंको व्यक्त करनेके निमित्त—करते हैं। महाराज परीक्षित्को तो रासलीलाके सम्बन्धमें कुछ शङ्का काहेको होनी थी, फिर भी सर्वसाधारण इसे धर्मविरुद्ध न समझें, इसका स्पष्टीकरण हो जाय इसी अभिप्रायसे उन्होंने श्रीशुकदेवजीके सम्मुख अपनी शङ्का प्रकट की।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! आपने मुझसे पूछा था, कि राजर्षि महाराज परीक्षित्ने भगवान्की रासलीलाके सम्बन्ध में कौनसी शङ्का की और उसका श्रीशुकने क्या उत्तर दिया, अब मैं इसी प्रसङ्गको कहता हूँ। जब रासलीला की प्रायः समाप्ति हो गयी तो राजाने श्रीशुकसे कहा—"ब्रह्मन्! मेरे मन में एक शङ्का रह ही गयी, आज्ञा हो तो मैं उसे प्रकट करूँ?"

श्रीशुकदेवजीने बड़े उल्लासके साथ कहा—"हाँ राजन्! आप अवश्य अपनी शङ्काको कहें मैं यथाशक्ति यथासामर्थ्य उसका समाधान करूँगा।"

महाराज परीक्षित् बोले—"भगवन्! शङ्का मेरी यह है, कि भगवान् तो साक्षात् धर्मके स्वरूप हैं। अवनिपर उनका अवतार धर्मकी संस्थापनाके ही निमित्त होता है। साधुओंके परित्राणके निमित्त तथा दुष्कृतियोंके विनाशके निमित्त श्रीभगवान युगयुगमें धर्म संस्थापनार्थ अवतार धारण करते हैं। अर्थात् उन्हें धर्म अत्यन्त प्रिय है। ऐसे धर्मप्राण प्रभुने धर्म विरुद्ध आचरण क्यों किया?

अधर्म भी दो प्रकारका होता है। साधारण अधर्म और

महान् अधर्म। स्मृतिकारों ने बताया है लौकी नहीं खानी चाहिये, करेले नहीं खाने चाहिये, गोभी नहीं खानी चाहिये इस प्रकार प्रायः बहुतसे साग फल खानेको मना किया है। यदि उन्हें खाले तो शास्त्र विरुद्ध आचरण तो हुआ ही, किन्तु यह साधारण अधर्म है। एक होता है महान् अधर्म जैसे चोरी करना, झूठ बोलना तथा परस्त्री गमन करना आदि। इनकी शास्त्रकारों ने बड़ी निन्दा की है। साधारण लोगोंके लिये भी ये कार्य अत्यन्त निन्दनीय हैं। समाजमें भी चोरी, जारी और मिथ्या आदि अधर्म लोग करते हैं, तो छिपकर डरकर करते हैं। जब साधारण लोग इन अधर्म कार्योंको डरते डरते करते हैं, तो जो अपने पूर्ण अंशसे एक साथ रामकृष्ण दो रूपोंसे अवतरित हुए हैं उन धर्मकी मर्यादाके वक्ता, रचयिता तथा रक्षक श्रीहरि ने परस्त्रीगमन जैसा विरुद्ध आचरण क्यों किया? यह कार्य अवतारविरुद्ध लोकविरुद्ध और प्रमेयविरुद्ध तीनों ही प्रकारसे विरुद्ध है।

भगवान्‌का कथन है—"मेरे लिये तीनों लोकोंमें कोई कर्तव्य कर्म नहीं है। मैं विधिवाक्योंमें बँधा न रहनेपर भी धर्मानुकूल कार्य करता ही रहता हूँ। इसलिये करता रहता हूँ, कि मैं यदि कार्य न करूँगा तो मेरी देखादेखी सभी लोग अकर्मण्य बन जायँ। तब इस संसारकी मर्यादा ही छिन्न भिन्न हो जाय, सब मनमानी करने लगें। इसीलिये मैं समय समयपर अवतार धारण करके अपने आचरणोंसे लोगोंको धर्मकी शिक्षा देता हूँ, और स्वयं आदर्श उपस्थित करता हूँ। रामावतारमें नृसिंहावतारमें परशु-रामावतारमें जो भी कुछ किया धर्मकी रक्षा के लिये, दुष्टों के नाशके निमित्त किया। किन्तु यह कहाँका धर्म है, कि दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ रात्रिमें—एकान्त वनमें—विहार करना, रास विलास करना यह तो प्रत्यक्ष धर्मके विरुद्ध आचरण है।

लोकमें भी जो पुरुष परस्त्रीगामी होते हैं, उनकी सर्वत्र निन्दा होती है इससे उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये यह कार्य लोकके भी विरुद्ध है।

फिर तर्कसे भी तो सोचिये, किसीकी बहिन बेटी या स्त्री की ओर कोई कुदृष्टिसे देखता है, तो उसे कितना क्रोध आता है। जब तुम दूसरोंकी बहिन बेटी तथा पत्नीको कुदृष्टिसे देखोगे, तो उसे क्रोध नहीं आवेगा? धर्मका सार शास्त्रकारों ने यही बताया है कि दूसरों के साथ आत्मप्रतिकूल आचरण न करे। जो बात तुम्हें बुरी लगती हो, उसका आचरण तुम दूसरों के साथ भी मत करो। इस प्रकार परनारी सेवन सर्वथा निन्दनीय है गर्ह्य है, धर्म विरुद्ध है।

अच्छा, यह कहो कि जब कामका वेग होता है तो प्राणी अंधा हो जाता है, उसे कर्तव्याकर्तव्यका विवेक रह नहीं जाता वह विवश हो जाता है और एकान्तमें दोनोंके मनमें कामभाव की प्रबलवासना उठ गयी हो, तो उस समय तो अपने आपको रोकना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इस न्यायसे रात्रिमें एकान्त पाकर काम संतप्त गोपियोंको देखकर भगवान् कामके वशीभूत हो गये हों, सो भी बात नहीं मानी जा सकती। क्योंकि भगवान् तो आप्तकाम हैं। पूर्णकाम होनेसे उन्हें कोई स्पृहा ही नहीं वे कभी कामके अधीन हो ही नहीं सकते। फिर ऐसा निन्दनीय कार्य उन्होंने क्यों किया? आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। आपका ब्रह्मचर्य व्रत भली-भाँति चल रहा है, आप जितेन्द्रिय हैं यदि भगवान्ने अधर्म किया होता, तो आप जैसे सदाचारी इतने अनुरागसे उनकी रासलीलाका वर्णन कभी नहीं करते। इससे प्रतीत होता है कि भगवान्ने अधर्म तो किया न होगा। फिर भी हमें जो सन्देह हुआ है उसका समाधान तो होना ही चाहिये। हमारी शङ्कायें ये हैं।

१—ईश्वर होकर भगवान्‌ने अधर्म क्यों किया ?

२—अधर्म भी मनसे नहीं वचनसे नहीं प्रत्यक्ष शरीरसे किया और परस्त्रीगमन जैसा निन्दनीय पाप किया ?

३—भगवान्‌के ऐसे धर्मविरुद्ध आचरणसे हमलोग क्या शिक्षा लें ?

४—कर्मका सिद्धान्त है, जो जैसा आचरण करेगा उसे वैसा फल मिलेगा, फिर इस निंदित कर्मसे भगवान्‌को दोष क्यों नहीं लगा, उन्हें इसका फल क्यों नहीं भोगना पड़ा ?

५—उन्हें लीला ही करनी थी तो और लीला करते, यह धर्म विरुद्ध लीला किस अभिप्राय से की ?

६—रात्रिमें अपनी स्त्रियोंको घरमें न देखकर गोप उन्हें ढूँढ़ने वनमें क्यों नहीं गये ? पाप तो कितना भी गुप्त स्थानमें किया जाय। छिपता नहीं है, फिर वे गोप ऐसे अन्याय करनेवाले श्रीकृष्णके विरुद्ध क्यों नहीं हो गये ? उनका जाति बहिष्कार क्यों नहीं कर दिया ?

हमारी इन छै शंकाओंका आप उत्तर दें ?"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! राजापरीक्षित्‌के इन प्रश्नोंको सुनकर भगवान् शुकदेव हँस पड़े और फिर मंद मंद मुसकराते हुए राजाके प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए।"

छप्पय

हँसि बोले शुकदेव—कृष्णकूँ पाप न परसे।
रवि रस खचतें लेइ शुद्ध करि सब थल बरसे॥
नालो गंगा मिलत नाम गुन अपनो खोवै।
चाहें जो कछु परे अग्निमहँ स्वाहा होवै॥
सब कछु समरथ करि सकें, विधि निषेध तिनिकूँ नहीं।
अनल अशुचि नितप्रति भखत, खाइ मलिन होवै कहीं॥

भगवान्‌को धर्माधर्म स्पर्श नहीं करते

(१००२)

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

समरथको प्रतिकूल आचरण करिहैं प्रानी ।
पावैं दुख इहलोक होहि परलोकहु हानी ॥
कियो शम्भु विषपान हलाहल हमहूँ करिहैं ।
सोचि करैं अनुकरन मौतिके बिनु ते मरिहैं ॥
वेद शास्त्र गुरुवाक्यकूँ, धर्म समुझिकैं जे करहिं ।
सुखी होहिं, विपरीत करि, दुख पावैं नरकनि परहिं ॥

जन्मका कारण है पाप और पुण्य। पाप पुण्य न हों तो शरीर धारण ही न करना पड़े। जिन पदार्थोंको संसारमें हम अपने अपने कहकर एकत्रित करते हैं, उनकी प्राप्तिके लिये लड़ाई झगड़ा करते हैं, झूठ सच बोलते हैं। वे सबके सब यहाँ के यहाँ रह जाते हैं। केवल उनके संस्कार साथ जाते हैं। वे

---

*श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कह रहे हैं—"राजन्! समर्थपुरुषों द्वारा धर्मका व्यतिक्रम तथा साहसपूर्ण कार्य देखे गये हैं, किन्तु समर्थ तेजस्वियोंके लिये वे दोष नहीं होते। जैसे सबको स्वाहा करनेवाली अग्नि अच्छे बुरे सभीको जलाकर भस्म कर देती है।"

संस्कार ही संचित होकर प्रारब्ध कर्मोंको बनाते हैं और प्रारब्ध कर्मोंसे ही शरीर प्राप्त होता है। शरीर प्राप्त होने पर भोग्य वस्तुएँ प्रारब्धानुसार ही मिलती हैं, किन्तु उनके उपभोग के समय जो मनमें आसक्ति अनासक्ति हो जाती है यही विशेष है, उसीका नाम क्रियमाण कर्म है, वह संचित कर्मोंकी वृद्धि करता है और उसीसे संसारचक्र सुदृढ़ होता जाता है।

नाना प्रकारके जप, तप, अनुष्ठान सत्कर्म करना वापी, कूप, तड़ाग, खुदवाना धर्मशाला, पाठशाला, गौशाला, औषधालय आदि बनवाना तथा अन्य भी जनोपयोगी कार्योंको करना यह पुण्यके कार्य हैं। हमने जो कुँआ तालाब बनवाया उसके लिये मिट्टी किसी दूसरे लोकसे नहीं लाये, यहींसे ली बनानेवाले किसी अन्य लोकसे आये हों सो बात नहीं, यहींके लोगोंने उन्हें बनाया। द्रव्य भी यहींका लगा। केवल उसमें हमारा संस्कार जम गया, कि यह धर्म कार्य हमारे द्वारा हुआ। मरनेपर कुँआ तालाब साथ नहीं जायगा, यहीं रह जायगा केवल उसका शुभ संस्कार साथ जायगा और उन संस्कारोंके फलस्वरूप स्वर्गके सुखोंकी प्राप्ति होगी।

कोई परस्त्री है उसे देखकर किसीका चित्त चंचल हुआ मन में यह समझते हुए भी कि यह पाप है, वासनाके वशीभूत होकर विपरीत कर्म कर डाला। तो वह कर्म तो यहाँ कुछ क्षणोंमें ही हो गया, किन्तु उसकी वासना बनी रही। उसका फल नरकोंमें जाकर करोड़ों वर्षों तक भोगना पड़ेगा। जिस शरीरसे पाप किया था, स्त्री तथा पुरुषोंके दोनों शरीर तो यहीं रह जाते हैं, केवल संस्कार साथ जाते हैं और परलोकमें वैसा ही एक 'यातना शरीर' प्राप्त होता है, उसीसे पाप पुण्य भोगने पड़ते हैं, क्योंकि मनमें संस्कार तो शेष रह ही जाते हैं, अतः संसारचक्रको चलानेका काम पाप, पुण्य, धर्म, अधर्मका है। बड़ेसे बड़ा

पुण्य करो, बड़ेसे बड़ा लोक प्राप्त होगा, बड़ेसे बड़ा पाप करो घोरसे घोर नरक प्राप्त होगा। धर्म क्या है अधर्म क्या है यह किसी वस्तु पर लिखा नहीं रहता। जो काम एकके लिये धर्म है वही दूसरेके लिये अधर्म है। अतः धर्माधर्म निर्णयमें शास्त्र ही एक मात्र प्रमाण है। शास्त्र जिसे धर्म कहे वह धर्म है, जिसे अधर्म कहे वह अधर्म है। भगवान् धर्म अधर्म दोनोंसे परे हैं अतः वे धर्माधर्मके बन्धनमें नहीं हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब महाराज परीक्षितने ये शंकाये मेरे गुरुदेवसे कीं, तो वे उनका क्रमशः उत्तर देने लगे। राजाने प्रथम शङ्का यह की थी, कि भगवान्ने धर्म विरुद्ध आचरण क्यों किया?" इसीका उत्तर सर्वप्रथम भगवान् शुकदेवने दिया।"

श्रीशुकदेवजी बोले—"राजन्! भगवान्की बात तो तुम अभी छोड़ दो। पहिले भगवान्की बनायी सृष्टिके ही सम्बन्ध में विचार करो। शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिये किन नियमोंका पालन करना चाहिए इसके लिए आयुर्वेदकी रचना हुई। आयुर्वेद शास्त्रमें पथ्यापथ्यका विवेचन है। यह वस्तु स्वास्थके लिए हितकर है या अहितकर इसका विस्तार के साथ विचार किया गया है, जैसे शरीर वात, पित्त और कफ के आधार पर स्थित हैं, वैसे ही यह संसार सत्व, रज और तम इन तीनों गुणोंके आधारपर अवस्थित है। आयुर्वेदमें सबके लिये एक-सी वस्तु हितकर नहीं है। सामान्यतया भोजनका नियम है कि हलका, पौष्टिक, हृदयको प्रिय लगनेवाला सात्विक भोजन सबको हितकर होता है। उदर में रहनेवाली अग्नि चार प्रकारकी बतायी है मंदाग्नि, समाग्नि, तीव्राग्नि और वड़वाग्नि। जिनकी अग्नि मन्द है उन्हें बड़े यत्नसे भोजन करना चाहिए। तनिक भी इधर उधरकी गरिष्ठ वस्तु खा ली तो उनका स्वास्थ बिगड़ जायगा, उन्हें क्लेश होगा; अतः उन्हें

अत्यन्त संयमसे पथ्य भोजन करना चाहिए। जो दिन भर परिश्रम करते हैं ऐसे कृषक आदिकी अग्नि तीव्र होती है। वे कुछ इधर उधर का अपथ्य कर भी लें। भोजन करनेके अनंतर भी पेट भर के फिर भोजन कर लें, तो उन्हें कोई विशेष हानि नहीं होती संयमसे रहना तो उनके लिए भी हितकर ही है, किन्तु उनका संयम मंदाग्निवालेके संयमसे पृथक् है। उनकी पाचनशक्ति तीव्र है। इसलिए उन्हें गरिष्ठ भोजन करना चाहिए। उसकी देखा-देखी मंदाग्नि वाला भी उसी भोजनको करे, तो वह एक दिनमें ही अस्वस्थ हो जायगा। एक रोग होता है, उसमें चाहे जितना खा लो सब भस्म हो जाता है। उसकी चिकित्सा वैद्य लोग खीर हलुआ भैंसका दूध दही आदि गरिष्ठ और बहुत कालमें पचने वाले पदार्थोंसे करते हैं। उसे दिनभर खिलाते ही रहते हैं। खाकर तुरन्त सोना निषेध है, किन्तु वैद्य उसे खिलाकर तुरन्त सुलाते हैं। क्योंकि उसकी अग्निमें पचानेकी सामर्थ्य है।

इसी प्रकार संसारमें भी धर्म अधर्मकी व्याख्या है। एक आश्रमवालोंके लिये जो धर्म है, वही दूसरे आश्रमवालोंके लिये अधर्म है। एक देशमें जो धर्म है दूसरे देशमें वह अधर्म है। सामान्य नियम यह है, कि अच्छे स्थानका जल पीना चाहिए। यदि गंगाजल भी है और वह गंगाजीकी धारासे पृथक् हो गया है और फिर गंगाजीमें मिला भी नहीं है, तो ऐसे जलको पीना भी अधर्म है। सुराके पात्रमें गंगाजल भी है तो वह भी अपेय है। इस प्रकार जलके पीनेकी भी मर्यादा है। किन्तु सूर्यनारायण समुद्रमेंसे, नदियोंमेंसे, कूप तालाबोंमेंसे सब प्राणियोंके रक्त मांस आदि शरीरकी धातुओंसे, विष्ठा तथा मूत्र आदि सभी स्थानोंसे जलको अपनी किरणों द्वारा पीते हैं; विष्ठा मूत्रमें से जल खींचनेके कारण उन्हें कोई दोषी नहीं ठहराता। उसी जल-को वे बरसाते हैं, उस वर्षाके जलको सभी बड़े प्रेमसे पीते हैं।

अब आप कहें, कि सूर्य नारायण अशुद्ध स्थानोंसे जल पीकर उस अशुद्ध जलको हमें दे रहे हैं, अतः यह जल नहीं पीना चाहिए। अथवा जब तीनों लोकोंके सर्वश्रेष्ठदेव सूर्यनारायण मूत्रके जलको पीते हैं, तो हम भी पीवें, ये दोनों बातें उचित नहीं। सूर्य देव सामर्थ्यवान् हैं वे अशुचिको भी अपनी सामर्थ्यसे शुचि बना सकते हैं। न तो उनके इस आचरणका अनुकरण करो और न उनके इस सब स्थानोंसे जल पीनेकी निन्दा ही करो। बड़ोंकी पवित्र करनेकी शक्ति भी बड़ी होती है।

इसी प्रकार भोजन का भी नियम है, अमुक वस्तुको खाना चाहिए अमुक वस्तुको न खाना चाहिए। जो अखाद्य वस्तुको खाते हैं, वे धर्म भ्रष्ट हो जाते हैं। किन्तु देवताओंके मुख रूप अग्निमें जो भी डाल दो उसे ही वे खा जाते हैं वेद मंत्रोंसे पवित्र हविष्यान्नकी आहुति दो; तो उसे भी खा जाते हैं और विष्ठा डाल दो, तो उसे भी स्वाहा कर जाते हैं। सर्वभक्षी होनेपर भी अग्नि पवित्रके पवित्र ही बने रहते हैं।

यदि साधारण पुरुष अपनेमें किसी अन्य जातिके पुरुष को स्वार्थवश मिलाता है, तो सब उसका तिरस्कार करते हैं। बड़े लोग—आचार्य समर्थ पुरुष—शिक्षा दीक्षा देकर किसीको अपने समान बना लेते हैं, तो वह जगत्पूज्य बन जाता है। सभी उसका आदर करते हैं। जैसे जब तक गंदे नालेमें जल रहता है, तब तक उसे कोई छूता भी नहीं जब वह गंगाजीमें मिल जाता है, तो उसका नाम बदल जाता है, सभी उसे श्रद्धासहित मस्तकपर चढ़ाते हैं, नहाते हैं, आचमन करते हैं।

इन सिद्धान्तोंसे यही सिद्ध हुआ कि सामर्थ्यवान् बड़े लोगों के कोई आचरण धर्मविरुद्ध भी दिखायी दें, तो उनकी निन्दा न करनी चाहिए, उनके तेजके प्रभावसे—उनके संसर्गसे बुरा भी अच्छा हो जाता है।"

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! देखिये, बड़े लोग जो जो कार्य करते हैं, दूसरे लोग इन्हीं कामोंका अनुकरण करते हैं। यह प्राणी अनुकरणप्रिय है। बालक माता पिताको जो करते देखते हैं, वही खेलमें करने लगते हैं। फिर जिन कामोंमें लोगोंकी स्वाभाविक रुचि है, उन्हें ही बड़ोंको करते देखें, तो उन्हें प्रमाण मिल जाता है और उनको देखा देखी वे भी उन्हें कर्तव्य समझकर करने लगते हैं।"

सूतजीने कहा—"महाराज! यह भूल है। ऐसा नहीं करना चाहिए। श्रुतियोंने तो स्पष्ट कर दिया है—जो हमारे सुचरित हों; उन्हींका तुम अनुकरण करो। जो धर्मके विपरीतसे कर्म दिखाई दें; उनका कभी अनुकरण न करो।" समर्थ पुरुषोंके विधि वाक्य ही मानने योग्य हैं। जिन बातोंको करनेकी वे आज्ञा दें, उन्हें तो करना ही चाहिए और जो धर्मानुकूल आचरण करें उनका अनुकरण भी करना चाहिए, किन्तु उनका कोई कार्य धर्म-विरुद्ध-सा दिखाई दे और उसे करनेको वे आज्ञा न दें, तो उसे कभी न करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते वे धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। जो सामर्थ्यवान् तो हैं नहीं और सामर्थ्यवान् पुरुषोंका सा आचरण करते हैं, उनका परलोक नष्ट हो जाता है और इस लोकमें भी वे अपयशके भागी बनते हैं। इस विषयका मैं कोई दृष्टान्त देकर समझाता हूँ।

एक ढोंगी साधु था। उसने देखा एक परमहंस नंगे रहते हैं, सबका दिया हुआ सब कुछ खा लेते हैं। चाहे जहाँ मलमूत्र त्याग देते हैं। बड़े-बड़े विद्वान् पंडित उनका आदर करते हैं। यह देखकर मान प्रतिष्ठा पानेके लिये वह भी तितिक्षा करने लगा। नङ्गा हो गया। तितिक्षामें आकर्षण होता ही है। नरनारी उसकी तितिक्षाको देखकर उसकी ओर आकर्षित हुए। बहुत-से लोग उसके दर्शनोंको आते, भाँति-भाँतिके पदार्थ खिलाते। वह अपने हाथों-

से खाता भी नहीं था, दूसरे उसे खिलाते थे, वह सब यह कार्य मानप्रतिष्ठाके लिये करता था, उसे परमहंसोंकी स्थिति प्राप्त नहीं हुई थी। सर्वत्र उसके त्याग और तितिक्षाकी प्रसिद्धि हो गयी। एक बुद्धिमती रानी उसकी प्रशंसा सुनकर आयीं। वह देखते ही समझ गया यह रानी है; अतः आकर रानीकी गोदीमें लेट गया। रानीने कुछ नहीं कहा। वह साथमें पेड़ा लायी थीं. उसे खिलाने लगीं। वह खाता रहा। खाते-खाते उसने रानीकी गोदीमें पड़े ही पड़े मलत्याग कर दिया। रानीके सब वस्त्र अपवित्र हो गये। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं। उसे पेड़ा खिलाती रहीं। एक पेड़ाको उसने विष्ठामें मिलाकर उस ढोंगी साधुके मुख ज्यों ही देना चाहा, त्यों ही उसकी दुर्गंधसे उसने मुख फेर लिया तब तो रानीने उसे अपनी गोदसे हटाते हुए कहा—"चल ढोंगी कहींका? तुझे इतना ज्ञान तो है नहीं कि यह रानीकी गोदी है. खाते समय मलत्याग न करना चाहिए, किन्तु इतना ज्ञान है कि यह पेडा है यह विष्ठा है। तेरा ज्ञान परिपक्व नहीं है, तू किसी ज्ञानीके आचरणका मूर्खतावश अनुकरण कर रहा है।" रानीकी यह बात सुनकर उसे अपनी भूल मालूम हुई और उसने उस ढोंगको छोड़ दिया।

(२)

ऐसी ही एक खानेके सम्बन्धकी और कथा है। कोई महन्त अपने १०५ शिष्यों सहित पूर्वके देशोंमें विचरण कर रहे थे। सबको भूख लग रही थी, गुरुजी आगे थे, शिष्य पीछे थे। नदी किनारे कुछ मल्लाह मछली बना रहे थे। गुरुजीने उनसे भिक्षा माँगी। उन्होंने कहा—"महाराज! मछली है।" गुरु बोले—"मछली ही दे दो।" मल्लाहोंने दे दी। गुरु उन्हें खाकर जल पीकर चल दिये।

पीछेसे शिष्य आये। वे भी भूखे थे। पहिले वे मछली खाते

ये जब वे दीक्षित हुए तो गुरुजीने प्रतिज्ञा करा ली थी, कि कभी मछली मत खाना। आज भूखमें मसालेदार मछलियोंको बनते देखकर उनके मुखमें पानी भर आया। मल्लाहोंसे पूछा—"हमारे गुरुजी इधरसे गये हैं।"

मल्लाहोंने कहा—"हाँ, महाराज! अभी गये हैं हमसे मछली लेकर खा गये हैं।"

यह सुनकर उनके हर्षका ठिकाना नहीं रहा वे बोले—"भाई! हमें भी बड़ी भूख लग रही है, हमें भी मछली दो।"

उनमेंसे एकने कहा—"गुरुजीकी तो आज्ञा है, कभी मछली न खाना।"

तब वे क्रुद्ध होकर बोले—"अरे, भाई! आज्ञासे क्या होता है। जब उन्होंने स्वयं खा ली तो हमें भी खानी चाहिए। जो गुरु करें वही चेलेको करना चाहिए।" यह कहकर उन्होंने भी मछलियाँ भर पेट स्वादपूर्वक खायीं।

आगे गुरुजी मिले। उन्होंने पूछा—"तुम लोगोंने कुछ खाया या नहीं?"

शिष्योंने कहा—"महाराज! हमने उन्हीं मल्लाहोंसे माँगकर मछली खायी हैं जिनसे आपने खायीं थीं।"

गुरुजीने कहा—"हमने तो मछली खानेको मना किया था?"

शिष्योंने कहा—"महाराज! मना करनेसे क्या होता है, जिस कामको आप करेंगे उसे हमें करना ही चाहिए।"

गुरुने कहा—"अच्छी बात है यही सही।" यह कहकर उन्होंने वमन की। वमनमें जीवित मछलियाँ निकलीं उनपर हरी तुलसी थी। मछलियाँ भगकर जलमें चली गयीं। गुरु बोले—"तुम सब भी निकालो इसी तरह।"

तब तो वे चक्करमें पड़े और गुरुके पैरों पड़ गये। तब गुरु

बोले—"गुरु जो कहे उसे करना चाहिए। उसके धर्म संगत कार्योंका अनुसरण भी करे, किन्तु जिसके लिये उसने मना किया है और जो धर्मविरुद्ध आचरण हैं, उसे गुरु करता भी हो, तो भी उसे न करना चाहिए।"

(३)

ऐसी ही एक पीनेके सम्बन्धकी कथा है। एक आचार्य अपने कुछ शिष्योंके साथ जा रहे थे। मार्गमें उन्हें एक मद्यकी भट्टी मिली। आचार्यने मद्य माँगी। लोगोंने श्रद्धासहित उनके कमंडलुमें मद्य दे दी। आचार्य उसे पी गये। उनके पीछे शिष्य थे, उन्होंने भी गुरुकी देखादेखी मद्य माँगकर पी ली। आगे बढ़कर एक काँचकी भट्टी मिली। उसमें काँच गल रहा था। आचार्यने गला हुआ काँच माँगा। लोगोंने दे दिया, उसे भी वे पी गये। फिर उन्होंने शिष्योंसे कहा—"तुम भी पीओ।" उन्होंने कहा—"महाराज! इसे पचानेकी हममें सामर्थ्य नहीं।" तब गुरुने कहा—"तुमने हमारे धर्मविरुद्ध आचरणका अनुकरण क्यों किया? तुम्हें तो हमारी आज्ञा माननी चाहिए। हमारे धर्मके विरुद्ध आचरणोंका अनुकरण न करना चाहिए।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! पृथिवी फूलको मलको सबको अपने में मिला लेती है, गंगाजी सब जलको अपनेमें मिलाकर—गंगाजल बना लेती हैं। सूर्यनारायण सब स्थानोंके जल को खींचकर शुद्ध कर लेते हैं, अग्नि सबको जलाकर भस्म कर देती है। यद्यपि वे सब भी किसी नियममें बँधे हैं इनका भी कोई नियामक है, फिर भी सामर्थ्यवान् होनेसे ये गुण दोषोंमें लिप्त नहीं होते, सदा निर्मल ही बने रहते हैं। जब इनमें इतनी सामर्थ्य है, तो जो प्रभु सम्पूर्ण जगत्के नियामक हैं, जो अनंत कोटि ब्रह्माण्डोंके एक मात्र अधीश्वर हैं। उन्हें अधर्म कैसे स्पर्श कर सकता है। वे तो धर्म अधर्म दोनोंसे परे हैं।

यह कार्य देखनेमें अधर्म भी प्रतीत हो, तो भगवान्‌को इससे क्या हानि लाभ हो सकता है। जब मेरे गुरुदेवने यह बात कही तब महाराज परीक्षित्‌जीने उनसे फिर पूछा।"

राजा बोले—"ब्रह्मन्! भगवान् चाहे धर्म अधर्म सबसे परे भले ही हों फिर भी लोकमें पाप तो पाप ही है। जब उन्होंने मनुष्य रूप धारण किया, तो उन्हे मनुष्योंकी मर्यादाका पालन करना ही चाहिये। कुछ पाप तो ऐसे होते हैं, जो अपने मनमें ही आते हैं दूसरे लोग उसे प्रायः नहीं समझ सकते। दूसरे युगोंमें मानसिक पापोंका भी फल भोगना पड़ता है किन्तु कलियुगमें उन्हे इन्द्रियों द्वारा व्यक्त न किया जाय, मनके मनमें ही उठकर शांत हो जायँ, तो उनका फल प्रायः नहीं होता। कुछ पाप वचनसे होते हैं उनका फल भोगना ही पड़ता है किन्तु मन, वचन और शरीर तीनोंसे किया पाप तो घोर पाप है। ऐसे पापको भगवान् ने किया ही क्यों?"

यह सुनकर श्रीशुकदेवजी इसका भी उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए।

छप्पय

है सब दुखको मूल अहंता ममता जगमहँ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो जीव भटकै भवमगमहँ॥
बुद्धि न होवे लिप्त अहंता जाकूँ नाहीं।
चाहैं सो यह करै बधे नहिं बन्धन माहीं॥
अर्थ अनर्थ न विज्ञकूँ, करे अशुभ वा शुभ करम।
अहंकारतैं होत है, यह अधर्म यह है धरम॥

भगवान्‌का कोई पर नहीं

[१००३]

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

करिके शुभ अरु अशुभ कर्मफल भोगहिँ मानी ।
अनल गग रवि सरिस रहैं निरमल नित ज्ञानी ॥
ज्ञानीहू जग रहैं कमलदल जलमहँ जैसे ।
तब हरि सर्वसमर्थ बँधे बन्धनमहँ कैसे ॥
सबके साक्षी सर्वगत, अखिल जगतपति अज अमल ।
तिनकूँ पर अरु अपर का, घट घटवासी विभु विमल ॥

संसारमें अपना क्या, पराया क्या ? मन जिसे अपना मानले वह अपना, मन जिसे पराया मानले वह पराया । यह मेरा है, यह मेरा नहीं है । यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ । यह द्वैत बुद्धि अहङ्कारसे होती है । सभी शरीर पञ्चभूतोंसे निर्मित हैं जिन भूतोंके

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जो भगवान् गोपियोंके, उन गोपियोंके पतियोंके तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणोंमें व्याप्त हैं, उन्हीं सर्वसाक्षी सर्वेश्वरने लीलासे ही इस लोकमें शरीर धारण किया था ।"

संमिश्रणसे पशुपत्ती कीट पतङ्गोंका शरीर बना है, उन्हींसे मनुष्यों और देवताओं का बना है। सूक्ष्म और स्थूलका भेद भले ही हो, किन्तु वस्तु एक ही है। यह सम्पूर्ण जगत् पञ्चभूतों से निर्मित है। स्त्री हो, पुरुष हो, नपुन्सक हो, अंडज, स्वेदज उद्भिज अथवा जरायुज कोई शरीर क्यों न हो, सबकी रचना पञ्चभूतोंसे है, अतः शरीर सबके समान हैं, उनमें कोई भेद नहीं। अब रही आत्माकी बात। सभी जानते हैं एक ही परमात्मा सब प्राणियोंके हृदयमें वास करके चैतन्यता प्रदान करते हैं। यह जो जीवोंको चेतना मिल रही है यह एकमात्र आत्माके द्वारा ही अतः आत्मबुद्धिसे भी कोई भेदभाववाली बात नहीं। जिस समय जब ज्ञानी सबको अपनी आत्मामें ही देखता है और अपनी आत्माको ही सबमें व्याप्त अनुभव करता है, तो फिर वह किसीकी निन्दा नहीं करता। निन्दा तो द्वैतमें होती है। जहाँ प्रगाढ़ आत्मीयता है वहाँ निंदाका क्या काम? प्रेममें-एकत्वमें तो दोष रहते ही नहीं गुण ही गुण दिखायी देते है। इससे सिद्ध हुआ कि स्वपराभिनिवेश अज्ञानकृत है और अज्ञान होता है मिथ्याभिमानसे। जो अहङ्कारसे शून्य है उसके लिये कोई शुभ नहीं कोई अशुभ नहीं। कोई अपना नहीं कोई पराया नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! जब महाराज परीक्षित्ने पर-नारी निसेवन पापके सम्बन्धमें प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेव राजासे उत्तर देने लगे।"

श्रीशुकदेवजीने कहा—"राजन्! मैं पहिले ही बता चुका हूँ। कि कर्म बन्धन अहंकरसे होता है। मनुष्य जब शरीरको ही आत्मा मान लेता है तब उसे शरीरमें मिथ्याभिमान हो जाता है। मैं राजा हूँ, मैं पंडित हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ, दूसरे मुझसे निकृष्ट हैं। यह मेरा घर है, यह मेरी भूमि है। दूसरा इसपर अधिकार करेगा तो वह मेरा शत्रु है। अहंता ममताके कारण जब ऐसी

बुद्धि हो जाती है और स्वार्थके वशीभूत होकर शुभ या अशुभ कर्म करता है, तो उनका अच्छा या बुरा फल भोगना ही पड़ेगा। स्वर्गकी इच्छासे यज्ञयागादि करेगा, तो उसे स्वर्गादि लोकोंमें सुख मिलेंगे, यदि संसारी स्वार्थोंके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या सुरापान आदि अशुभ कर्म करेगा, तो उसे नरकादि लोकोंमें जाकर दुःख उठाना पड़ेगा। सुख दुःख ये सब अहंकारके ही कारण होते हैं। जिसे अहंभाव नहीं है, जिसकी बुद्धि शुभ अशुभ कर्मोंमें लिप्त नहीं होती, वह चाहे असंख्यों राजसूय अश्वमेधादि यज्ञ करे तो उनका फल भोगने स्वर्ग नहीं जाना पड़ता और यदि शस्त्र लेकर सम्पूर्ण संसारका संहार करदे तो उसे उनका फल भोगने नरक नहीं जाना पड़ता। क्योंकि अहंकारहीन समर्थ पुरुषोंका शुभकर्म करने में अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं इसी प्रकार अशुभ कर्म करनेसे उनका कोई अनर्थ नहीं।

अब आप सोचें जब जिन ज्ञानियोंकी जीवसंज्ञा है, वे जीव भी जब शुभ और अशुभ कर्मोंमें लिप्त नहीं होते तो अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको शुभअशुभ कर्म कैसे व्याप्त हो सकते हैं ? भगवान् तो पशु, पक्षी, कीट, पतंग, देवता, मनुष्य तथा यावत् प्राणी हैं सभीके एक मात्र शासक हैं। सबके स्वामी हैं, प्रभु हैं, शासक हैं, नियामक हैं तथा संचालक हैं, उन्हें पाप पुण्य कैसे स्पर्श कर सकता है ? उनकी बात तो पृथक् रही। जिन्होंने भक्ति आदि साधनों द्वारा उनकी कृपाको प्राप्त कर लिया है। जो श्रीहरिकी चरणधूलिके सेवनसे सन्तुष्ट हो चुके हैं ऐसे नित्यतृप्त भक्तजन तथा योग साधनके प्रभावसे समस्त कर्म बन्धनोंसे विमुक्त योगिजन भी समस्त विधिनिषेध रूप बन्धनोंसे विमुक्त होकर स्वच्छन्द विहार करते हैं तो जो स्वभावसे ही स्वच्छन्द हैं, जिन्हें साधनोंद्वारा सिद्धि लाभ नहीं करनी पड़ती जो स्वतःसिद्ध हैं उन सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर श्रीहरिका पाप

पुरुषोंके साथ किस प्रकार संसर्ग हो सकता है। वे किस प्रकार दोषके भागी हो सकते हैं ?

महाराज परीक्षित्‌ने कहा—"अच्छा, हम मानते हैं, भगवान्‌को दोष नहीं लगा। भगवान् निर्दोष हैं। उन्हें पुण्य करनेसे स्वर्गादिलोकोंकी इच्छा नहीं पाप करने मे नरकादिका भय नहीं। फिर उन्होंने रूप तो मनुष्यों जैसा ही धारण किया था न ? मनुष्य रूप धारण करके मनुष्योंके अनुरूप ही चेष्टायें करनी चाहिये। यदि उन्हें ऐसी ही गोलमाल करनी थी, तो पशुपक्षीका रूप रख लेते। पशु पक्षियोंमें तो यह विवेक रहता नहीं कि यह मेरी स्त्री न, यह दूसरे की स्त्री है, यह माता है या बहिन है। यह विवेक तो मनुष्यको ही होता है। मनुष्योंमें भी धर्मात्मा वर्णाश्रमी पुरुष इस बातका बड़ा विचार करते हैं, कि यह स्त्री गम्या है यह अगम्या है। विवाह भी बहुत देख भालकर अपना गोत्र मातृगोत्र बचाकर विवाह करते हैं। परस्त्री गमन तो अत्यन्त निषेध समझा जाता है। मनुष्योंमें रहकर मनुष्य शरीर धारण करके मनुष्योंकी मर्यादाको पालन करना ही चाहिये। परस्त्रीका एकान्तमें काम भावसे स्पर्श सर्वथा पाप है।"

श्रीशुकदेवजी यह सुनकर गम्भीर हो गये और बोले—"राजन् ! भगवान्‌ने रासलीला की, यह बात आपको कैसे मालूम हुई, अपने तो अपनी आँखोंसे लीला देखी नहीं ?"

राजाने कहा—"महाराज ! सब बात देखने ही से थोड़े ही प्रमाण मानी जाती है। हमारे जन्मके पूर्व ही हमारे पिताजी मर गये, उन्हें हमने देखा नहीं। तो इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि हमारे पिता हैं ही नहीं। गर्भाधानके समय हमने अपने पिताको तो देखा नहीं। फिर हम कैसे मान लेते हैं कि ये ही हमारे पिता हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण कोई प्रमाण थोड़े ही है। आकाशमें हम प्रत्यक्ष इन्द्र धनुषको देखते हैं, किन्तु वास्तवमें इन्द्रधनुष कोई

वस्तु नहीं। आकाशको नीला कहते हैं, किन्तु आकाश नीला नहीं है दूरसे प्रत्यक्ष यमुनाजी का जल नीला दिखाई देता है, किन्तु वह नीला थोड़े ही है। इस प्रकार प्रत्यक्ष ही प्रमाण थोड़े हैं। मुख्य प्रमाण तो शब्दप्रमाण है। ज्ञानी लोग ऋषिगण जिसे कह गये हैं वही मुख्य प्रमाण है। कार्य और अकार्यकी व्यवस्थिति में शास्त्र ही प्रमाण है। आप ऋषि हैं सर्वज्ञ हैं आप कह रहे हैं, कि भगवान्ने रासलीला की, यही हमारे लिये सबसे बड़ा प्रमाण है। पुराणोंमें सर्वत्र भगवान्की रासलीलाका वर्णन है।

प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीशुकने कहा—"हाँ, राजन् ! यही बात तो मैं आपके मुखसे कहलाना चाहता था, कि रास होने में शास्त्र ही प्रमाण है। जो शास्त्र रासका वर्णन करता है वही यह भी कहता है, कि सर्वसाक्षी सर्वगत सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीहरिने ही मानवस्वरूप लीलासे धारण कर लिया था। अच्छा तो जो सर्वगत हैं सबमें समान रूपसे व्याप्त हैं, उनके लिये अपनी नारी और परनारीका भेदभाव कैसे हुआ ? आप स्वयं विचारो वायु सब प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त है, वह हमारे खुले हुए हाथ मुख आदि अंगोंको भी छूती है और छिपे गुह्य अंगोंको भी छूती है। उससे बिना जीवन नहीं। जिस प्रकार वे सर्वान्तर्यामी प्रभु गोपियोंके अंगोंमें व्याप्त थे उसी प्रकार उनके पतियोंके अंगों में भी तो व्याप्त थे। उनके पतियोंकी स्थिति भी तो आत्मरूप श्रीकृष्णके ही कारण थी। उनके पति भी जो उनका स्पर्श करते थे, तो क्या उस स्पर्शमें श्रीकृष्ण नहीं थे। सम्पूर्ण अंगोंमें जहाँ भी खुजली होगी हाथ ही जाकर खुजावेगा। आप विद्युत्के पंखेसे करो, ताड़के पंखेसे करो, वस्त्रके पंखेसे करो वायु तो वही आवेगी। चाहें गोपी किसीको स्पर्श करें चाहें उन्हें कोई स्पर्श करे श्रीकृष्णके बिना स्पर्श हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्राणि मात्रके हृदयमें वे ही स्थित होकर चेष्टा करा रहे हैं। ऐसे

सर्वान्तर्यामी प्रभुने उन्हें एकान्तमें छू ही लिया तो इसमें पापकी कौन-सी बात है।

महाराज परीक्षित्ने कहा—"महाराज! हम इस बातको मानते हैं, भगवान्को कोई दोष नहीं लगा। वे घट-घटव्यापी हैं, फिर भी यह बात लोकमें निन्दित ही मानी जाती है। परस्त्री-संस्पर्श लोकविरुद्ध है।

दृढ़ताके स्वरोंमें श्रीशुकदेवजीने कहा—"नहीं राजन्! लोक-विरुद्ध तो नहीं है। लोकमें हम नित्य देखते हैं। सभाओंमें सम्मेलनोंमें, कथा कीर्तन और पर्वोत्सवोंमें स्त्रियाँ पृथक् बैठती हैं, पुरुष पृथक् बैठते हैं। किन्तु बच्चे की जब इच्छा होती है आकर पुरुषोंमें बैठ जाते हैं। जब इच्छा होती है स्त्रियोंमें चले जाते हैं। लड़कोंको कोई स्त्री अछूत नहीं मानती। सब उन्हें उठाकर प्यार करती हैं, छाती से चिपकाती हैं, मुँह चूम लेती हैं। लोकमें इसे तो कोई दोष मानता नहीं। श्रीकृष्णने भी और क्या किया?"

हँसकर महाराज परीक्षित् बोले—"महाराज! बच्चोंकी बात तो दूसरी है। बच्चे तो सभी एकसे हैं। बच्चोंसे स्त्रियाँ परदा थोड़े ही करती हैं। पर पुरुषका कामभाव से स्पर्श निषेध है।

हँसकर श्रीशुकदेवजी बोले—"राजन् आप बच्चा किसे कहेंगे। एक दिन सभी बच्चे रहे हैं। सभी बच्चे बनकर ही पैदा हुए हैं। दाढ़ी मूँछ लगाये तो कोई पैदा होता नहीं। सब बच्चे ही हैं।

हँसकर राजाने कहा—"अजी, महाराज! सब बच्चे कैसे हो जायँगे। पैदा होने की बात दूसरी है। जो बच्चेसे युवक या वृद्ध हो गया उसे बच्चा कौन कहेगा? उन्हें देखकर स्त्रियाँ लज्जा से सिर झुका लेती हैं घूँघट मारलेती हैं।"

श्रीशुकने पूछा—"अच्छा तो आप बच्चा कितने वर्ष तकके बालक को कहेंगे।

राजाने कहा—"यही महाराज १०-११ वर्ष तक के बालक को बच्चा कहते हैं। जहाँ वह १४-१५ का हो जाता है फिर उसकी बच्चा संज्ञा नहीं होती स्त्रियाँ नौ दस वर्षके बच्चेसे संकोच नहीं करतीं। उन्हे सभी स्त्रियाँ समान रूपसे अपने बच्चेकी भाँति प्यार कर सकती हैं।

हँसकर श्रीशुकदेवजी बोले—"तो राजन्! रासलीलाके समय श्रीकृष्णजीकी अवस्था तो दश वर्षकी भी नही थी। व्रजमें वे प्रकट रूप से ग्यारह वर्षकी अवस्था तक ही तो रहे ऐसी अवस्था में तो कोई अनुचित बात भी नहीं हुई।"

हँसकर राजा बोले—"अब महाराज! अब इस प्रकार तो हमें युक्तियोंसे अपने शब्दजालमें बाँधना चाहते हैं। पीछे तो आप कैसे स्पष्ट शब्दोंमें कामक्रीड़ाका वर्णन कर आये हैं। अब निकलनेके लिये बात बदल रहे हैं। यदि बालक भावसे ही छूना था, तो रात्रिमें एकान्तमें रास क्यों रचा? आपने तो मूर्तिमान शृंङ्गार रसका वर्णन किया है।"

शीघ्रतासे श्रीशुकदेवजी बोले—"राजन्! मैं मना थोड़े ही करता हूँ, कि भगवान्ने रास नहीं किया। किया, अवश्य किया, भली भाँति किया, गोपियोंको रसमें डुबा दिया, उन्हें प्रेममें छका दिया, गाना, बजाना, नाचना, परस्परमें सट जाना, कुञ्ज, केलि जलकेलि तथा और भी विविध भाँतिकी क्रीड़ायें हुईं, किन्तु वे प्राकृत नहीं थीं दिव्य थीं, भौतिक नहीं थीं चिन्मय थीं। इस साधारण शरीरसे नहीं की थीं दिव्यातिदिव्य शरीरसे की थीं। अपनी भगवत्ताको स्थिर रखकर की थीं। किसी स्वार्थके वशीभूत न होकर केवल गोपियोंको सुख देनेके लिये की थीं गोपियोंके सम्बन्धमें जहाँ 'काम' शब्द आता है उसका अर्थ दिव्यातिदिव्य प्रेम समझना चाहिये। जहाँ 'जार भाव' 'औपपत्य' ये शब्द आते हैं वहाँ दिव्य रसास्वादनकी प्रक्रिया

समझनी चाहिये। वास्तवमें श्रीकृष्ण गोपियोंके पर नहीं हैं। वे उनके अपने हैं आत्मस्वरूप हैं प्रेष्ठ हैं, पति हैं, स्वामी हैं, सर्वस्व हैं। गोपियाँ उनकी आत्मा हैं। आत्मामें रमणका ही नाम आत्मक्रीड़ा है। स्वयं ही वे रस हैं, स्वयं ही आस्वाद्य हैं, स्वयं ही आस्वादक हैं, लीला, धाम, आलम्बन, अवलम्बन, उद्दीपन तथा और भी काम सम्बन्धी जितने भाव हैं सब वे ही हैं। ये सब मिलकर जहाँ क्रीड़ा करते हैं वही रास है। राजन्! ऐसे ही गोलमाल है सट्टपट्ट है। कुछ कहने सुननेकी बात नहीं। माया है, क्रीड़ा है, खेल है, लीला है और जो है सो है।"

हँसकर राजा बोले—"महाराज! जो हो, पर यह सब प्रपंच भगवान्‌ने किया क्यों? इस इतनी सरस लीलासे हम संसारी प्राणी शिक्षा क्या ग्रहण करें?"

सूतजी कहते हैं—राजन्! जब महाराज परीक्षित्‌जीने यह प्रश्न किया तब मेरे गुरुदेव कुछ देरके लिये मौन हो गये, उनके नेत्रोंमें प्रेमके अश्रु छलकने लगे। अश्रुओंको पोंछकर वे स्वस्थ हुये और फिर राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको प्रस्तुत हुये।

छप्पय

जग है दुखकी खानि दुखी सब जगके प्रानी।
पावें दुख अरु मृत्यु जरा ज्ञानी अज्ञानी॥
अज्ञानी जग सत्य समुझि बन्धन बँधि जावें।
ज्ञानी समुझें सत्य कृष्णलीलासुख पावें॥
अज अच्युत हू अवनिपै, मानुषतनुतें अवतरें।
करन अनुग्रह सबनिपै, श्याम सरस लीला करें॥

भगवान्‌की समस्त लीलायें श्रेयस्कर ही हैं।

(१००४)

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

जीव जगत अरु मनुज बात मनु लगति अलौनी।
तातें क्रीड़ा करें कृष्ण अति सरस सलौनी॥
गोपी अरु श्रीकृष्ण मिलन सुनि हिय सरसावे।
सुनिकें प्रेम प्रसंग देह पुलकित ह्वै जावे॥
जो गँभिरणी झीलमें, फैसे हू परि जाइगो।
तौ फिर अपनों रूप तजि, तुरत नौन बनि जाइगो॥

दृष्टान्त सदा एकदेशी होता है। संसारमें ऐसा एक भी दृष्टान्त न होगा जो सर्वाङ्गपूर्ण है। मुखको कहते हैं चन्द्र मुख। तो क्या मुख चन्द्रमाकी भाँति है। यहाँ इतना ही तात्पर्य है कि चन्द्रमा जितना सुखद शीतल और आह्लाद देने वाला है वैसा ही मुख भी है। चरणोंको, करोंको, मुखको तथा नेत्रोंको कमलकी उपमा देते हैं। जहाँ चरणकमल कहते हैं, वहाँ इतना

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त ही नररूप रखकर उससे ऐसी ऐसी सरस क्रीडायें करते हैं, जिन्हें सुनकर लोग भगवत् परायण हो जायँ।

ही तात्पर्य है जैसे कमल कोमल और मृदु है वैसे ही चरण भी कोमल मृदु हैं। जहाँ करकमल कहते हैं, वहाँ, भी मृदुता और कोमलतासे ही तात्पर्य है। जहाँ कमलनयन कहते हैं, वहाँ समझना चाहिये जैसे कमल प्रसन्न होकर खिल जाता है वैसे ही खिले खिले बड़े नेत्र। जहाँ मुखकमल कहा जाता है, वहाँ कमलकी जैसी सुगन्ध, सौरभ सरसता और सुन्दरतासे अभिप्राय है।

भगवान् परिपूर्ण हैं, जब अपूर्ण वस्तुओंमें ही सर्वथा समता नहीं, तब भगवान्‌की बराबरीकी वस्तु कौन हो सकती है, उन्हें किसकी उपमा दी जा सकती है, उनकी लीलासे किसकी तुलना की जा सकती है। जब परात्पर प्रभु अवनिपर अवतार धारण करते हैं, तब उनकी सर्वव्यापकता और परिपूर्णतामें तो अन्तर आता नहीं। एक राजा है, वह चाहे राजसी वस्त्र पहिन ले या दरिद्रकासा वेप बना ले, उसके स्वरूपमें तो बाह्य वेपसे कोई त्रुटि पड़ती नहीं, फिर भी वह जैसा वेप बना लेता है, वैसे ही कार्य भी करने लगता है। इसी प्रकार भगवान् मानुप रूप रखकर मानवीय क्रीड़ाओंको करते हैं। उनकी सर्वाङ्ग उपमा न ढूँढ़नी चाहिये। केवल यही सोचना चाहिये, कि इस लीलाके करनेका प्रयोजन क्या है, उससे हम क्या शिक्षा ग्रहण करें। सर्वाङ्ग अनुकरण करनेसे तो अनर्थकी संभावना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मेरे गुरुदेव भगवान् शुकसे महाराज परीक्षित्‌ने फिर पूछा—"भगवन् ! भगवान्‌ने ऐसी अत्यन्त सरस लीलायें की ही क्यों, कोई वीर रसकी क्रीड़ा करते। हम लोग इन अत्यन्त शृंगार रसकी लीलाओंसे क्या शिक्षा ग्रहण करें ?"

यह सुनकर मेरे गुरुदेवने जो कुछ कहा उसीके आधार पर मैं कहता हूँ—"मुनियो ! भगवान्‌की लीलायें अचिन्त्य

हैं। उनके विषयमें जीव 'इदमित्थम' यह ऐसी ही है, इसका यही अभिप्राय है, ऐसा दृढ़ताके साथ नहीं कह सकता। भगवान्ने ऐसी सरस लीला क्यों की? इसका यथार्थ भाव तो भगवान् ही समझ सकते हैं। शास्त्रकारोंने तो इनका एक ही कारण बताया है जीवोंके ऊपर कृपा करनेके ही निमित्त भगवान् ऐसी ऐसी कमनीय क्रीड़ायें करते हैं। जीव जबसे भगवान्से बिछुड़ा है तभीसे वह उनसे मिलना चाहता है। संसारमें जितनी व्याकुलता है, जितनी तड़फड़ाहट है, जितनी अधीरता है सब मिलनेके लिये, सम्मिलित सुख पानेके लिये ही समस्त जीव घबड़ा रहे हैं व्याकुल हो रहे हैं। अपना प्यार प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिलता, उसके दर्शन नहीं होते उसका स्पर्श सुख नहीं मिलता तभी प्राणी दुखी होता है, रोता है। कृपण धनसे मिलनेको व्याकुल होकर देश विदेश भटकता रहता है। उसे सोते जागते यही चिन्ता बनी रहती है, कैसे धन प्राप्त हो, धनके लिये वह शरीर, सुख यहाँ तक कि धर्मको भी कुछ नहीं समझता। बुभुक्षित अन्न पानेके लिये व्याकुल रहता है, पिपासित पानी पीनेको विह्वल बना रहता है। शीतार्त उष्णता पानेको अधीर बना रहता है और कामी कामिनीकी निरन्तर चिन्ता करता रहता है। इन सब इच्छाओंमें काम इच्छा बड़ी प्रबल है। कामका वेग महान् है। यदि जीवके मनमें वही काम भाव कृष्ण के प्रति उदय हो जाय, तो उसके सब दुःख दारिद्र दूर हो जायें, वह सदाके लिये सुखी हो जाय। अब प्रश्न यह है, कि काम भाव तो स्त्री पुरुष दोनोंके ही हृदयमें उत्पन्न होता है। दोनों ही परस्परमें एक दूसरेको पाना चाहते हैं, तो जीवको किसका अनुकरण करना चाहिये। पुरुष जैसे स्त्रीको चाहता है वैसे, या स्त्री जैसे पुरुषको चाहती है वैसे।

आप ध्यान पूर्वक विचार करें, तो पता चलेगा दोनों ओरसे

आकर्षण अत्यन्त ही प्रबल होता है। पुरुष स्त्रीको जितना चाहता है, स्त्री पुरुषको भी उतना ही चाहती है। दोनों ओरसे समान आकर्षण न हो, तो संसारमें यह आकर्षण सर्वश्रेष्ठ न माना जाता। लोभीको धनके प्रति बड़ा आकर्षण होता है, धनके पीछे वह प्राणोंका पण लगा देता है, किन्तु जितना वह धनको चाहता है धन उतना उसे नहीं चाहता। वह धनको प्यार करता है, किन्तु धन उसे प्यार नहीं करता। इसलिये यह आकर्षण अधूरा है। स्त्री पुरुषोंमें आकर्षण दोनों ही ओरसे होता है और वह अत्यन्त प्रबल होता है। खींचनेकी शक्ति स्त्रीमें अधिक है और खिच जानेकी शक्ति पुरुषमें अधिक है। स्त्री आकर्षक न होगी तो पुरुष खिंच नहीं सकता। अब यहाँ जीवका काम है भगवान्को अपनी ओर खींचना। "अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ भगवान्को अपनी ओर कैसे खींच सकता है जी ?" उन्हींकी दी हुई शक्तिसे खींच सकता है। स्त्री कितनी भी सुन्दरी हो कितनी भी आकर्षक हो। पाषाण या मिट्टीकी बनी पुरुष मूर्तिको अपनी ओर नहीं खींच सकती। क्योंकि उसमें खिंच आने की शक्ति नहीं। इसी प्रकार जीव कितना ही जप, तप, विद्या और अनेक गुणोंसे सम्पन्न क्यों न हो जब तक भगवान् कृपा न करें, वह उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे जीवका खिंच जाना स्वभाव है, वैसे ही परमात्माका कृपा करना स्वभाव है। जीव उन्हें आर्त होकर पुकारे फिर वे न आ सकें यह कठिन है असम्भव है। ऐसा हो नहीं सकता, कि भगवान् न आवें। वे तो प्रेमके अधीन हैं। सच्चे हृदयसे पुकारनेपर वे न भी आना चाहें तो भी उन्हें आना ही पड़ेगा, उनकी कृपा उन्हें विवश कर देती है वे रह नहीं सकते। अतः जीवके हृदयमें कामपीड़ित कामिनीका सराह प्रियतमके मिलनेकी जब तक तड़प न होगी। तब तक प्रभुकी कठिन है, असम्भव है। यही सब बतानेको भगवान्ने

सरस लीला रची।

यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृति पुरुषकी क्रीड़ा है। इस संसारमें दो ही वस्तु हैं एक खेलनेवाला एक खिलाने वाला उसे माया ब्रह्म कह लो, प्रकृति पुरुष कह लो, ईश्वर जीव कह लो। बात एक ही है। पुरुष एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं शेष सब प्रकृति है। भगवान्ने जीवको भी अपनी 'प्रकृति' कहा है। जब पुरुष एक मात्रपर ब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं और समस्त जीव प्रकृतिके अन्तर्गत ही हैं, तो, फिर पुरुषका भेदभाव मिथ्या है भगवान्के अतिरिक्त जो भी प्राकृत जगत है सभी स्त्री रूप है सभी गोपियाँ हैं, सभी सखियाँ हैं सभी रस बेचनेवाली गूजरियाँ हैं। सभी श्यामको सुख देनेवाली ब्रजाङ्गनायें हैं।

वृंदावनमें एक संत स्त्रियोंसे नहीं मिलते थे। एक गोपीरूपा परम भगवद्भक्ता महिला उनसे मिलने गयी। उन्होंने कहला दिया—"स्त्रियोंसे हम नहीं मिलते।" तब भगवद्भक्ता महिला ने कहला दिया—"हम तो अब तक समझतीं थीं वृन्दावनमें एक ही पुरुष नन्दनन्दन हैं, अब उनके ये दूसरे पट्टीदार पुरुष और कौन उत्पन्न हो गये ?" संत उन गोपीके भावको समझ गये और तुरन्त बाहर आकर उनसे मिले। कहनेका सारांश यह है कि योनि चाहें पुरुषकी हो, स्त्री अथवा नपुंसककी सभी प्रकृति के अन्तर्गत हैं। सभी उन परात्पर पुरुषोत्तम प्रभुसे मिलने को व्यग्र हैं। अधीर हैं। भगवान्को अपना परमश्रेष्ठ समझ कर उन्हींकी प्रसन्नताके निमित्त—उन्हें ही प्राप्त करने के हेतु—जीवकी सभी चेष्टायें होनी चाहिये। इसीकी शिक्षा देनेको भगवानने रासलीला की।

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी! यह तो रोगीको जान बूझकर अपथ्य भोजन देना हुआ। महाभाग! लोग संसारमें वैसे ही कामपीड़ित हैं। कामके अधीन होकर वैसे ही नित्य

नये नये पाप करते हैं। फिर भगवान् भी वैसे ही काम क्रीड़ा करें तब तो लोग और भी दुखी हो जायँगे। कामियोंके सम्मुख काम क्रीड़ा करना तो कामभावनाको और उत्तेजना देना है। इससे जीवोंका कल्याण क्या हुआ। और अनर्थको उत्पन्न करना है।"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! विषकी ओषधि विष ही होती हैं। जंगम विषसे स्थावर विष नाश हो जाता है। दिव्य कामसे प्रकृति काम सर्वथा नष्ट हो जाता हैं। इसी भक्ति मार्गमें रागानुगा भक्तिको जीवके अनुकूल साधन बताया गया है।"

शौनकजीने कहा—"सूतजी कामको उत्तेजना देनेकी अपेक्षा वैराग्य विवेकके द्वारा कामको नष्ट ही क्यों न कर दिया जाय।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! कामको नष्ट कर दिया जाय तो और भी उत्तम है। कामारि शंकर आदिने कामको नष्ट किया भी है, किन्तु भगवन्! प्रवाहके विरुद्ध जलको ले जानेमें बड़ा श्रम करना पड़ता है। युक्तियों द्वारा चला तो जाता ही है, किन्तु अवसर पाते ही फिर नीचेकी ओर ढुलक आता है। स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति सहज आकर्षण है। इसी आकर्षणको बदल लेनेके लिये मनुष्य भगवान्‌की शक्ति रूप से जगज्जननी रूपसे उपासना करते हैं। जो लोग वैराग्यके द्वारा कामको नष्ट करना चाहते हैं। घृणा उत्पन्न कराके विषयोंसे विराग करते हैं। वे कहते हैं—"स्त्री या पुरुषका मुख क्या है। थूक खकार, लारका घर है, दाँतोंसे दुर्गन्ध आती है। छाती क्या है, माँस पिंडोंसे उभरा एक चर्म मांस रक्तका स्थान है। जघन क्या है मूत्रके भीगे अशुचि अपवित्र स्थान है। इनमें जो आसक्ति करते हैं सुखका अनुभव करते हैं वे अज्ञ हैं मूर्ख हैं।" ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो इस कथनमें भी आसक्ति है। कहनेवाला जो मुख, हृदय तथा जघन आदिकी निंदा करता है, उसके मनमें भीतर उनकी मोहकता छिपी हुई है। वह उनके

स्वाभाविक आकर्षण को स्वीकार करता है, किन्तु मनको बहलानेको वह उनसे घृणा उत्पन्न करता है। अनुकूल भावसे इन आकर्षक स्थलोंका चिंतन तो करता ही है और चिंतन करके उनका अनुभव भी करता है, एक प्रकारकी अनुभूति दृष्टिका भी आन्तरिक अनुभव करती ही है। इस प्रतिकूल भावनासे उसे सन्तोष है। तब तो उत्तम ही है, किन्तु यह मार्ग सबको अनुकूल नहीं पड़ता।

एक व्यक्ति है। उसे गुड़के सेवनका व्यसन पड़ गया है। उसके हितैषी चाहते हैं, कि वह गुड़ खाना छोड़ दे, गुड़के प्रति उसकी जो इतनी आसक्ति है वह निवृत्त हो जाय। एक तो गुड़ छुड़ानेका उपाय यह है, कि उसे समझाया जाय, कि देखो, गुड़ क्या है खेतमें मलमूल विष्ठा, गोबर अपवित्र वस्तुओंकी खाद पड़ती है, उस अशुद्ध खादसे रस लेकर ईख बढ़ती है। उसे काटकर कोल्हूमें पेरते हैं। बहुत से जीव जन्तु मरते हैं। सभी छूते छाते हैं। जाने कौन कौन लोग उसे बुरे गंदे हाथोंसे बनाते हैं। बनाते समय बहुत से चींटा चींटी मक्खी आदि जीव मर जाते हैं। ऐसे अपवित्र गुड़को खानेसे क्या लाभ ? खाकर हानि करता है। क्षणभरका स्वाद है, फिर मल बन जाता है। इस प्रकार गुड़की ओरसे विराग कराते हैं।

दूसरा मार्ग यह है, कि उसे सुन्दर सुगन्धित कंदकी एक कली खानेको दे देते हैं। जहाँ जिह्वाको कंदका स्वाद मिला, तहाँ गुड़की ओरसे अनुराग अपने आप कम हो जाता है। फिर तो जिह्वा कंदके लिये ही लपलपाती रहती है। यह साधन स्वाभाविक है, प्रकृतिके अनुकूल है, मधुर है। जीभको गुड़से प्रेम नहीं उसे तो मीठा चाहिये। यदि दिव्य मीठा मिले तो साधारण मीठे की वह इच्छा क्यों करेगी। इसी प्रकार प्रकृतिको पुरुषसे सम्मिलनकी इच्छा स्वाभाविक है। उसे प्रकृतिसे हठपूर्वक हटाकर

पुरुषमें लगाओ तो लग तो जायगा किन्तु वे सुखे सत्तू हैं, कठिनता से कंठके नीचे उतरेंगे। तृप्ति हो जायगी पेट भर जायगा, किन्तु साधारण प्रकृतिको छोड़कर दिव्य प्रकृतिकी शरण ली जाय। विषय गुड़को छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्दमें मनको मग्न कर दिया जाय, तो अत्यंत सरसताके साथ उस दिव्य रसकी प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है। इसीलिये इस मार्गका नाम रस मार्ग है। रस शास्त्रोंमें इसकी विस्तारसे प्रक्रिया वर्णन की है। इन सरस लीलाओंको सुननेमें सभीको सुखानुभूति होती है। कैसा भी काव्य हो, कैसी भी कहानी हो, यदि उसमें नायिका नहीं तो वह नीरस है। नायक नायिकाके संसर्गसे ही रसकी अभिवृद्धि होती है। नायक एक मात्र श्रीकृष्ण हैं और नायिका मुकुट मणि श्रीराधिकाजी हैं। इस दोनोंके हास विलास तथा क्रीड़ाका नाम रास है। जो इन लीलाओंसे घृणा करेंगे इन्हें सुनना ही न चाहेंगे उनकी बात दूसरी है। जो श्रीकृष्णको प्राकृत पुरुप समझकर उनकी क्रीड़ाओंमें प्राकृत बुद्धि करेंगे उन्हें प्रकृतिकी प्राप्ति होगी और जो इन्हें अप्राकृत लीला मानकर, श्रीकृष्णको परात्पर प्रभु मानकर श्रद्धा सहित इन लीलाओंका मनन चिन्तन करेंगे, उन्हें प्रकृतिसे परे अप्राकृत दिव्य गोलोककी प्राप्ति होगी, जहाँ नित्य ही भगवानका रास होता रहता है। जो रासका ही लोक है। यदि भगवान मानव रूपके इस अवनिपर अवतरित होकर ऐसी रसमयी दिव्य लीलायें न करते, तो संसारसे सरसताका लोप ही हो जाता। कवि किस विषयपर कविता करता। गायक क्या गाते, लेखक क्या लिखते और संसार किनके चरित्रोंको गागाकर रसविभोर होता। आज भगवानकी बाँसुरीकी तानके विषयके गीत पठित से पठित और मूर्खसे मूर्ख गाकर एक दिव्यानन्दका अनुभव करते हैं, अतः लोककल्याणार्थ ही भगवानने ये लीलायें की ? इनसे हमें यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कि प्रबल प्रेमके साथ प्रभुको पानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। सब कुछ उन्हींकी प्रसन्नताके निमित्त करना चाहिये। एक दिन वे स्वयं बाँसुरी बजाकर बुला लेंगे और रासके सुखमें हमें निमग्न कर देंगे।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! मैंने तो इतना ही समझा है, किन्तु भगवान्की लीलाओंका इतना ही प्रयोजन नहीं है, जिन्हें शास्त्र निरन्तर कहते रहें तो भी नहीं कह सकते।"

छप्पय

चिदानंद घनश्याम देह प्राकृत नहिं तिनकी।
गोपी शक्ति अनंत दिव्य चिन्मय हैं उनकी॥
शक्तिमान्तैं शक्ति विलग होवे नहिं ऐसे।
ज्यों श्रीशिवतैं शिवा विष्णुतैं कमला जैसे॥
अपनेतैं अपनो मिलै, कितनों सरस प्रसंग है।
मनमोहनतें मन मिल्यो, पुनि नहीं दुसर अंग है॥

रास दिव्य देहसे होता है

(१००५)

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥*
(श्रीभा० १० स्क० ३३ अ० ३८ श्लो०)

छप्पय

ऊँच नीच, निज अङ्ग हाथ सबहीकूँ परसे।
पावे प्रियको परस हृदय तन मन अति सरसे॥
विषयनिमहँ फँसि जीव दुखी तिनितें ह्वै जावे।
दिव्य देहतें होहिं दिव्य सुख सब नहिँ पावें॥
जब तक प्राकृत भावना, तब तक होवे रास नहिँ।
दिव्य देह होवे जबहिँ, गोपी बनि नाचे तबहिँ॥

सम्मिलन समान शीलोंमें ही होता है। दूधमें पानी ही मिल सकता है, लोहा नहीं। प्राकृत नेत्र प्राकृत पदार्थोंको ही देख सकते हैं। दिव्य वस्तुको देखनेको दृष्टि भी दिव्य ही चाहिये। प्रकृति मिलनेसे ही मन मिलता है। दोनोंका शील स्वभाव एक-सा हो तभी रसकी अभिवृद्धि होती है। श्रीकृष्ण जगमोहिनी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी व्रजवासियोंने कुछ भी निन्दा नहीं की। वे भगवान्की मायासे मोहित हो गये थे। उन्होंने अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने समीप ही समझा।"

मायासे परे हैं, अतः उन्हें ये मायिक पदार्थ मोह नहीं सकते। वे तो इनसे निर्लिप्त हैं, दिव्यातिदिव्य हैं; अतः उन्हें मोहनेके लिये दिव्यातिदिव्य माया चाहिये। मोहनको मोहनेवाली माया भी मोहनमोहिनी चाहिये। भगवान्का श्रीविग्रह प्रकृतिसे परे हैं। उसमें प्राकृत शरीरोंकी भाँति स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणका भेद भाव नहीं। वह तो चिन्मय है। उनके साथ रासक्रीड़ा प्राकृत शरीरसे कैसे हो सकती है जैसे वे हैं वैसे ही उनके साथ रास करनेवाली हो तब लीला साङ्गोपाङ्ग उतरे। तब उसमें सरसताका संचार हो, इसीलिये रास प्राकृत शरीरसे नहीं किया जाता। करनेकी बात तो पृथक् है, प्राकृत देहाभिमानीको तो रासदर्शनका भी अधिकार नहीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मेरे गुरुदेवने महाराज परीक्षित्की रास सम्बन्धी शंकाओंका समाधान किया?"

इसपर शौनकजी बोले—"सूतजी एक शंका महाराज परीक्षित्की रह ही गयी। उसके सम्बन्धमें आपने कुछ नहीं बताया। महाराजने शंका की थी, कि जब गोपोंने रात्रिमें अपनी स्त्रियोंको घरमें नहीं देखा तो वे उन्हें ढूँढ़ने वनोंमें क्यों नहीं गये? पुण्य और पाप कितने भी एकान्तमें छिपकर किये जायँ, वे छिप नहीं सकते। रासकी बात तो छिपनेवाली थी नहीं। एक दो गोपीकी बात होती तो छिप भी जाती। घर घरसे गोपियाँ गयीं और अपने माता, पिता, भाई, बन्धु सगे सम्बन्धियोंके सामने खुल्लम खुल्ला गयीं और रात्रिभर क्रीड़ा करती रहीं, तो गोपोंने श्रीकृष्णके इस अनुचित कार्यका विरोध क्यों नहीं किया, उनकी निन्दा क्यों नहीं की? जातिसे उनका बहिष्कार क्यों नहीं कर दिया?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! गोप निन्दा तो तब करते, जब भगवान् निन्दाका अवसर देते। भगवान् भी तो

बड़े काँइयाँ हैं। जो चोरी करता है वह भागनेके लिये मोरी भी तो रखता है। भगवान्ने गोपियोंके इस बाह्य दीखनेवाले शरीरसे रास किया ही नहीं। उन्होंने तो गोपियोंके दिव्य चिन्मय अप्राकृत शरीरसे क्रीड़ा की, उनका बाह्य शरीर तो उनके घरवालोंके समीप ही रहा। पतियोंने देखा मेरी पत्नी मेरे समीप शयन कर रही है। भाइयोंने देखा हमारी बहिन तो यहीं है। पिताओंने देखा हमारी लड़कियाँ तो भोजनके बर्तनोंको मलकर सुखसे सो रही हैं, फिर कोई वनमें ढूँढ़ने क्यों जाता और क्यों श्रीकृष्ण पर व्यर्थकी शंका करता ?"

शौनकजीने कहा—"सूतजी ! जैसा प्रसङ्ग होता है आप वैसे ही बात बना देते हैं। वहाँ जब बाँसुरी सुनकर गोपियोंके रासमें जानेका प्रसंग था, वहाँ तो आपने कैसा विस्तारसे वर्णन किया था कोई दूध दुह रही थी, वह दूधको ही छोड़कर चल दी, कोई भोजन बना रही थी, कोई आँखोंमें अंजन आँज रही थी, कोई यह कह रही थी, कोई वह कर रही थी, जो जैसी बैठी थी, वैसी ही चल दी। उनके पति, पिता, भ्राता और बन्धुओंने बहुत कुछ रोका, किन्तु वे नहीं रुकीं, नहीं रुकी। वे सबकी अवहेलना करके चली ही गयीं क्योंकि गोविन्दने उनके चित्तको बलात्कार अपनी ओर खींच लिया था। कुछ गोपियाँ अपने घरके ही भीतर थीं। घरवालोंने उन्हें जाने नहीं दिया, बाहरसे ताला बन्द करके उन्हें घरमें ही रोक लिया, तब वे श्रीकृष्णकी भावनामें तन्मय होकर वहीं बैठे बैठे उनका ध्यान करने लगीं। वहीं बैठे बैठे श्रीकृष्णका मानसिक संस्पर्श करके उन्होंने त्रिगुण मय शरीर त्याग दिया।

इन वर्णनोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोपिकायें स्थूल शरीरसे गयी थीं। यदि वे अपने दिव्य शरीरसे ही रास करने जातीं, तो पति, पिता तथा बन्धु बान्धवोंको

प्रसङ्ग ही क्यों आता। उन्होंने रोका और वे नहीं रुकीं चली ही गयीं तो यहाँ दिव्य शरीर कहाँ रहा ? फिर जब घरमें रहनेवाला शरीर पृथक् था, रासमें क्रीड़ा करनेवाला शरीर पृथक था, तो फिर जो गोपियाँ रोक ली गयी थीं उन्हें शरीर त्यागकी क्या आवश्यकता थी। यहाँ नहीं आतीं दिव्य शरीरसे रास रचातीं। शरीरके रोक लेनेपर उन्हें अपने त्रिगुणमय शरीरको त्यागना पड़ा इससे तो यही सिद्ध होता है कि वे इसी शरीरसे सबके सामने गयी थीं और इसीसे रास रचा था। जो न जा सकीं वे तड़प तड़प कर मर गयीं। ऐसी घटना तो अब भी देखनेमें आती हैं। अपने प्यारेके अत्यन्त वियोगमें अब भी बहुतसे शरीरको तुरन्त त्याग देते हैं। फिर अब आप दो शरीरोंकी कल्पना क्यों कर रहे हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! गोपियोंका शरीर भी प्राकृत त्रिगुणमय नहीं था। उनपर तो यह त्रिगुणात्मक खोल चढ़ा हुआ था। देह तो उनका भी श्रीकृष्णकी भाँति अप्राकृत दिव्य चिन्मय ही था। किन्तु भगवानकी मायासे वे अपने इस दिव्य रूपको भूले हुए थीं। भगवान्की मोहिनी वंशी सुनकर उनके रोमरोमसे मिलनकी उत्कंठा तीव्र हो उठीं। उनका हृदय हिलोरें मारने लगा। वे अपने आवेगको रोक न सकीं। जैसे वर्षा ऋतुमें समुद्रगामिनी नदियाँ अपने वेगको रोक नहीं सकतीं। वे रोकनेसे भी नहीं रुक सकतीं समुद्रकी ओर दौड़ी ही जाती हैं, उसी प्रकार वे गयीं तो इस त्रिगुणमय स्थूल शरीरसे ही, किन्तु श्रीकृष्ण तो दिव्य चिन्मय थे। वे गुणमय शरीरसे क्रीड़ा कैसे करते। इसीलिये जैसे सर्प केंचुलीमेंसे निकलकर नया हो जाता है वैसे ही वे गोपिकायें श्रीकृष्णके दर्शन करते ही उनकी इच्छासे दिव्य बन गयीं। उनके उस त्रिगुणमय केंचुलीके समान शरीरोंको भगवानने अपनी योगमायाके प्रभावसे उन उनके घर पहुँचा दिया ; अतः जाते समय तो उन्होंने इन सबको देखा था, किन्तु

कब लौटकर आगयीं इसे कोई नहीं समझ सका। सब भगवान्की मायासे मोहित हो गये हैं। वे यह भी न समझ सके कि ये केंचुलीके समान है। वे उनके जानेकी बातको भी भूल गये और उन्हें ही अपनी पत्नी, बहिन तथा पुत्री आदि समझकर व्यवहार करने लगे।

जिन्होंने शरीर त्यागा था, उन्होंने तो विरहकी तीव्रताके कारण त्यागा था। उनका प्रेम अत्युत्कट था रासमें सम्मिलित वे भी हुईं। देह उनका भी चिन्मय हो गया था। अन्तर इतना ही रहा, कि उन्होंने अपने इस स्थूल त्रिगुणमय शरीरको सदाके लिये छोड़ दिया था। ये जानेवाली गोपियाँ इच्छा न होनेपर भी भगवान्की आज्ञासे अपने इन शरीरोंमें लौट आयीं। उन घरमें तनु त्यागनेवाली गोपियोंको एक बड़ा लाभ हुआ। वे शरीर त्यागतेही तुरंत श्रीकृष्णके समीप पहुँच गईं। ये सब पैदल चलके बहुत पीछे पहुँचीं। इस प्रकार गोपियोंका श्रीकृष्णके रास करनेका प्रसङ्ग प्राकृत नहीं दिव्य है। उसमें श्रीकृष्णकी निंदा करनेका अवसर ही नहीं। जो शास्त्र एक बार इस बातको बताता है, कि भगवान्ने गोपियोंके साथ रास किया। वही बार बार चिल्ला चिल्लाकर डंकेकी चोट कहता है कि भगवान् प्राकृत नहीं चिन्मय हैं, दिव्य हैं। अस्खलित वीर्य हैं। अच्युत हैं। प्रकृतिके गुणोंसे परे हैं। उसकी बार बारकी इस बातको न मानकर केवल रासपर ही दोष देना यह तो व्यर्थका छिद्रान्वेषण है। चलनीका सा स्वभाव है। कि अच्छे अच्छे आटेको निकालकर फेंक देना कुछ थोड़ी बहुत भूसी हो, उसे अपने पास रख लेना। इसलिये महाभाग! रासमें शंकाके लिये तो कोई स्थान ही नहीं। जो हठी हैं निन्दक हैं शुष्क आलोचक हैं उनके सामने तो तुम कितनी भी युक्तियाँ दो अपने हठपर अड़े ही रहेंगे, किन्तु जो भगवद्भक्त हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको भगवान् समझते हैं

उनको तो उनकी किसी भी लीलाके सम्बन्धमें शंका न होगी। इस प्रकार मैंने अत्यन्त संक्षेपमें अपने गुरुके मुखसे जो बात सुनी थी। उसीके आधारपर रासके सम्बन्धमें जो महाराजने छै शंकायें की थीं उनका समाधान किया। अब संक्षेपमे फिर उनका समाधान सुन लें।

१—भगवान्ने अधर्म नहीं किया। जीवधर्म और भगवद्-धर्म अन्तर है। जीव मायाके बन्धनमें बद्ध है। भगवान् प्रेमके बन्धनमें बँधे हैं। उनकी सब चेष्टायें प्रेमकी अभिवृद्धिके ही निमित्त होती हैं।

२—भगवान्का कोई पर नहीं। सभी उनके हैं। वे जो मनसे सोचते हैं उसे ही वचनसे कहते हैं उसे ही करते हैं। उनका सोचना सृष्टिकी उत्पत्ति है। कथन शास्त्र है और कर्म लीला है। ये सब अप्राकृत हैं।

३—भगवान् शिक्षा देनेकी लीलामें नहीं करते हैं। लीलाधारी होनेसे लीला करना उनका स्वभाव है। अपनी प्रकृतिके अनुसार उनकी लीलाओंसे जो जैसी चाहें शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। उनकी समस्त लीलायें प्रेमके ही निमित्त होती हैं।

४—भगवान् कर्मोंके अधीन होकर शरीर धारण नहीं करते अतः उन्हें किसी भी कर्मसे बन्धन नहीं होता। उन्हें न पाप लगता है न पुण्य।

५—भगवान् रसरूप हैं, अतः रसीली लीला करना ही उनका स्वभाव है। मिश्री मिठास ही देगी।

६—श्रीकृष्णके विरुद्ध तो वह हो जो उनके अधीन न हो। सबको तो वे ही नचा रहे हैं। जब जिसको जैसी बुद्धि करना चाहें कर दें। वे मायाके अधीश्वर हैं, सबके नियामक हैं। फिर उनके विरुद्ध कर ही कौन सकता है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यंत ही संक्षेपमें

रासलीलाके सम्बन्धमें जो शंकायें उठ सकती थीं, जिन्हें महा-राज परीक्षित्ने उठाया था और जिनका समाधान भगवान् शुकने किया था, उन्हें ही मैंने आप सबके सम्मुख, यथामति प्रकट किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?

श्रीशौनकजीने पूछा—"सूतजी ! हमारी शंकाओंका भी समाधान हो गया। सर्वेश्वर सर्वसमर्थ हैं। प्रेम ही जिनका एक मात्र आहार है उन श्रीकृष्णके सम्बन्धमें शङ्का करना शङ्काको भी कलंकित करना है। स्थलक्रीड़ा, निकुंज लीला, जलकेलि तथा वनविहारके अनन्तर क्या हुआ कृपा करके इसे हमें और बतलाइये।

सूतजी बोले—अब महाराज ! बतानेकी बात कुछ रही नहीं। लौकिक दृष्टिसे रासलीलाका अवसान हुआ। वास्तविक दृष्टिसे तो रासका कभी अवसान होता ही नहीं। वह अव्याहत गतिसे निरन्तर होता ही रहता है।"

छप्पय

दिव्य देहतें रास रच्यो गोपी प्रभुके सँग।
पतिशैयापै परे रहे प्राकृत तिनके अँग॥
तातें निंदा नहीं करी काहूने उनकी।
समुझि सकै को दिव्य रहसमय लीला तिनकी॥
हरिके रास विलासमहँ दोषारोपन जे करहिँ।
कहैं जाहि व्यभिचार जे, ते पापी नरकनि परहिँ॥

आगे की कथा चौवालीसवें खण्ड में पढ़िये।